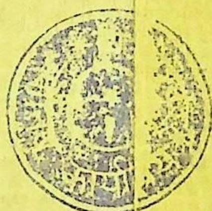




सत्य साईं वचनामृत

खण्ड पाँच

भगवान श्री सत्य साईं बाबा के प्रवचन
(७-१२-६४ से ३-४-६७ तक)

श्री एन. कस्तूरी द्वारा संपादित अंग्रेजी संस्करण
के
हिन्दी अनुवाद कर्त्ता
कपूरीलाल अग्निहोत्री एम. ए.
राजकीय सेवा निवृत्त अध्यापक ग० इ० कालेज, फर्रुखाबाद

प्रकाशक
भगवान् श्री सत्यसाई सेवा समिति, दिल्ली
६, बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-१

सम्पादक : एन० कस्तूरी एम० ए०, बी० एल०
प्रकाशक : श्री सत्यसाई न्यास की ओर से श्री सत्यसाई सेवा समिति,
गुलाब भवन, ६ बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली
मुद्रक : लखेरवाल प्रेस, १८ बीडनपुरा, करोलबाग, दिल्ली-५

भगवान् श्री सत्य साई

के चरण-कमलों में

समर्पण

सब में व्यापक सबके त्राता ! जड़ चेतन के मूलाधार ।
सेवा, प्रेम, शान्ति के गायक हे प्रभु ! करुणा के आगार ।
तेरी ही वाणी का तेरे, चरणों में अर्पित उपहार,
हाथ पकड़ पहुँचा दो मुझको, इस भव-सागर के उसपार ।।

—कपूरीलाल अग्निहोत्री

अपने सहतीर्थ-यात्रियों से

सुना आपने बाबा को ?

सुना आपने बाबा को ? भरी सभा में कहीं, कभी ?
इसे 'भाषण' कहते; कहते हम सब कोई नहीं।
उतार चढ़ाव कहीं पर, वाणी में स्वर-फेर नहीं।
ा जन को ताव दिलाना, खण्डन-मण्डन पाठ पढ़ाना,
कहीं रुकते, थकते, जोड़-तोड़ कर बात बनाते;
क-नाटक, भाव-भङ्गिमा, से न हँसाते, कभी रुलाते।
सोचना, सर खुजलाना, तथ्यों टीपों पर हकलाना—
ण को उत्फुल्ल बनाना, व्यर्थ समय को नहीं गँवाना,
ान, कविता और चुटकुलों, से प्रवचन का साज सजाना,
नहीं वक्तृत्व कला का, लोभ प्रशंसा भीड़-घोष का,
घुमाव फिराव बात का, स्वर लहरी नहिं भाव भंगिमा।
न-प्रद जल धार ! धरा के, जीवों के सन्तप्त हृदय को,
ज़न का व्यामोह दूर कर, हर 'अर्जुन' को संबोधन कर,
न-पथ के संघर्षों में, उनके जीवन-रथ के सारथि।
जो नव-नव प्राण फूंकते, हम सब के नित कर्ण कुहर में।
ी दिव्य शान्त आंखें जब, वृत्ताकार कक्ष में लोड़ित,
ख़ोजतीं मृदु मुस्कानें, धन्य बनाकर तुम्हें मोहती,
फेर पाते हो दृग मन, उनके दिव्य मुखारविन्द से।
कभी छूटा है कोई, उनकी शीतल शान्त पकड़ से।
असीम जन-पारावार ! मार पलोथी मंत्र मुग्ध सा,
काल के शान्त क्षणों सा, गिरि-पति की निस्तब्ध निशासा,
ं सुनता नीरव रहकर, प्रेम स्वरूप सुधा संकीर्तन।

स्वर्णिम वेला आज आ गयी, स्वर्ग द्वार है खुला हुआ ।
यह मधु-बाणी पारिजात के नव पुष्पों से मधु संचयकर,
तूर्यनादवत् रोमांचित कर आत्मा में उल्लास प्लवन से
बन्ध मोक्ष भव-भेद तटों से बहती निर्मल गङ्गा धारा ।
ब्रह्म-ज्ञान कृषि का संवर्धन, सिंचन-साधन, स्वल्प सहज ही,
जो जंरसोंपा[1] के निर्झर सम शक्ति असीम प्रवाहित करके,
कर, कर को संचालित करती, जो झरने की कल-कल वाणी ।
संशय ग्रन्थि भेद जन मन की, हमें सिखाती; नहीं भ्रमाती ।
मन के सकल प्रश्न उठने से, पूर्व शान्त हों श्रोतागण के
सभी विषाद कुतर्क नष्ट कर दुखियों का दुख दूर भगाती ।
अहंकार का त्याग मांगती; विनम्रता का पाठ पढ़ाती,
नहीं किसी को झिड़की, चुटकी शासक शासित भेद मिटाती,
जो परिहास विनोद प्रेम से, अज्ञानी पाखण्डी को भी
कभी प्रतारण, कभी प्रलोभन, कभी भक्ति की चाटुकारिता,
का उन्मुक्त हास्य बन कर जो हमें हँसाती, कभी झिपाती,
युग-युग के अवतारों की जो, शाश्वत वाणी हमें सुनाती ।
जो अतीन्द्रिय सत्य अगोचर, उसे चित्रवत् चित्रित करके,
प्रखर दिव्य स्वच्छन्द काव्यमय, लोक उक्ति सम पावन सरगम
ज्योतित् कण, मृदु मन्जु तानवत्, तेलगु सौरभ सुमन विकीरण ।
घन्टा, मिनट, सेकिन्ड प्रतिक्षण, शब्द, मन्त्र, पद सूत्र उचारण
गायत्री सम वाक्य बोलते, 'वार्ता' में उपनिषद खोलते;
ऐसे दिव्य ज्ञान के आकर, आत्म सुधा-सन्दोह महोदधि,
जीवों को स्वप्निल तन्द्रा से शीतल ओस बिन्दु करुणा के
बरसा प्रातःकाल जगाते ! उन्हें प्रेम पथ पर हैं लाते ।
जीवन मूल सींच वाणी से, जीवन-रस संचार बढ़ाकर
कलिका पुहुप खिलाकर उसमें पावन मधु मकरन्द सुरभि से

---

१ एक झरने का नाम

फल, प्रसून परिपक्व मधुर रस, शब्द ओजमय जब बरसाते
चमत्कार कर कुलिश हृदय को, भी ये उर्वर भूमि बनाते।
उनकी वाणी शीतल शशिसम, नहीं कठोर शीत हिमनद सम
ऊष्म, नहीं दाहक किञ्चित भी, वर्षा है, पर बाढ़ नहीं है
वह संतप्त हृदय को सुखकर, दीन जनों के अश्रु निवारण,
तपन, टीस, नाशक औषधि सम; नहीं विषाद विकार बढ़ाती।
जिनके वाक्य मोद बरसाते; जन मानस अवसाद भगाते।
बरबस करते ध्यानाकर्षण, भाव मग्न जन मस्तक दोलन
अलस, निराशा दूर भगाकर, भव बन्धन की ग्रन्थि खोलकर,
नव साहस संचार जीव को, अपने निकट बुलाकर रखते
सत्पथ पर संचालित करके, नहीं अनोखा मार्ग दिखाते।
सत्य सनातन धर्म वेद का, शुभ सन्देश प्रेरणा देते।
नाम, रूप, निजमन्त्र साधना, रुचि जन मन की कभी न हरते।
सर्वभाव रुचि सम्मत दीक्षा, नहीं वितण्डावाद तितिक्षा।
निर्बल को बल दे, उन्मुख को निर्भय प्रेम भक्ति संबल से
साधन पथ पर द्रुत गति देकर, सद्जीवन, व्यवहार कर्म का
पांठ पढ़ाकर त्रिविधि[1] एकता, का हैं जो आदर्श सिखाते।
अपने सभी भक्त, श्रोतागण को षट् निम्न निषेध बताते।
झूठ-प्रदर्शन, नीरस तर्कन, अन्धानुकरण, निजकुल वर्णन,
धन-बल, पद-बल, स्वर्गारोहण, शान्ति लाभमिस आमद खर्चन
धनाभाव प्रति सतत् चिन्तवन, संचित धन का रक्षण पोषण।
उनकी अमृत वाणी सुन-सुन, दृढ़ निश्चय कर बहु श्रोतागण।
साधन-पथ पर कदम बढ़ाते, पंख खोल नभ में उड़ जाते।
नहीं मेमने रहते क्षण भर, सिंह भाव से हैं भर जाते।
निर्मल हीरक जड़ा लौह में, नहीं शत्रु से झगड़े में रत।
ऐसे सभी साधकों का वे स्वागत करते आगे बढ़कर।

---

१ मन, वाणी, कर्म की।

आत्म-बोध के भूखे प्यासे, लंगड़े लूले जो चुंधियाते।
गिरते पड़ते उन्हें उठाते, स्वच्छ स्नेह से गले लगाते
दुख दूर कर कृपादृष्टि से, उनको सत्पथ पुनः सुझाते
लक्ष्य लाभ आनन्द बताकर, नेत्र खोल, बल देकर हमको
प्रभु पथ खोज मग्न भटकों को, साहस दे निजमार्ग दिखाते।
सोने वाले जग जाते हैं, बैठे हुए खड़े हो जाते
खड़े हुए गतिमान् मार्ग में, चलते हुए पहुँचते घर पर;
यह अवतारी पुरुष घोषणा, कर विश्वस्त तुम्हें करता
तेरे दुःखों की गठरी को, ले निज शीश, भार हरता—
पथभ्रष्टों दलितों का त्राता, दीनों का रक्षक सुखदाता
सत्य प्रेम का पोषण कर्त्ता, हरता असत् और अविचार
यह सौभाग्य सूर्य का उदयन ! अद्भुत कृपावारि ! भवमोचन।
सहज सुहावन प्रवचन गायन, कमल खिलाता जन मन तोषन
यह मन मोहन की वंशी सम, साधन पथ पर ठेल पठाता।
सब अशान्त भीषण लहरों का, शमन एक संकेत मात्र से
करके सुदृढ़ मनोबल सबका, और हृदय मस्तिष्क उठाता।
शान्ति प्रेम और सत्य धर्म, से हृत्तन्त्री को झंकृत करके,
मानव की माधव से क्रम क्रम नर-नारायण भेंट कराता।
प्रवचन अन्त सजल लोचन जब, उन्हें खोजते मंच दिशा में।
रिक्तासन लख पड़ा दृष्टि में विह्वल पड़ोसी विलख बाल वत्।
अहोभाग्य है धन्य आज का, अवसर पा कृत कृत्य हुये।
आज इसी क्षण साधन पथ पर हम सब हैं गतिशील हुये।
अर्जुन ने गाण्डीव उठाया, माधव ने रथ को दौड़ाया।
सबको जीवन सार सुनाकर, बाबा ने निज प्यार लुटाया॥

श्री एन० कस्तूरी की अंग्रेजी कविता का हिन्दी में पद्यानुवाद कर्ता
कपूरीलाल अग्निहोत्री

विषय-सूची

१

अंधकार में प्रकाश की किरण

यह देश आज विभिन्न प्रकार के संकटों से क्यों घिरा हुआ है; इसका कारण हमें अपने कार्यों, व्यवहार और अन्य लोगों से सम्बन्धों, जोकि हमारे अन्दर स्थिति दैवत्व की उपेक्षा करके चलाये जाते हैं, में खोजना चाहिये। जब बीमार पड़ ही गये तो फिर हाय-तोबा से क्या लाभ ? स्वास्थ्य को गिराने वाले प्रथम गलत पग के ही समय सावधान हो जाना चाहिए, पश्चाताप करना चाहिये। स्वास्थ्य के नियमों की, जोकि भारत ने अनेकों पीढ़ियों के अनुभव के पश्चात् स्थिर किये हैं, उपेक्षा अथवा अज्ञान ने ही भारत को आज इतना नीचे गिरा दिया है। प्राचीन ऋषियों ने मृत्यु-जन्म, जोकि एक दूसरे के साथ ही साथ जुड़े हुए हैं, का इलाज भी खोज निकाला था। वे मृत्युञ्जय के उपासक थे, अर्थात् उन्होंने मृत्यु के ऊपर विजय पा ली थी; नकि आज के वैभव लोलुप राष्ट्रों की तरह मृत्यु की उपासना करते थे।

हम अपने प्राचीन ऋषियों की प्रशंसा करते नहीं अघाते; परन्तु उनसे प्राप्त उत्तराधिकार को स्वीकार नहीं करते। हम उनके द्वारा संग्रहीत अलभ्य ज्ञान, वेद, शास्त्र का सम्मान करते हैं, परन्तु उनकी शिक्षाओं की अवहेलना करते हैं। उनके सिद्धान्तों और अन्वेषण की व्याख्या और पुष्टि करते हैं; परन्तु उन पर अमल नहीं करते हैं। हम स्वर्ण महलों में निवास करने वाले भिक्षुकों के समान हैं। हम बहुमूल्य धातु से आवृत हैं परन्तु यह तथ्य हमें अज्ञात है। इसे खोज लेने से ही हमारी सुरक्षा है।

इसे 'प्राप्त-प्राप्ति' अर्थात् पहले से ही विद्यमान को प्राप्त करना है। इस ध्वनि-विस्तारक को एक दूकान से खरीदा गया था। जिसे आवश्यकता थी यह उसके पास पहले नहीं था। परन्तु शान्ति और आनन्द तो इस ध्वनि बिस्तारक की तरह दूकानों से खरीदे नहीं जा सकते। वे तो प्रत्येक के अन्दर ही विद्यमान हैं जो उन्हें खोज रहा हो। जिस समय आपको धन की नितांत आवश्यकता हो उसी समय एक मित्र आपके कक्ष में प्रवेश करे और आप उससे कुछ धन उधार माँगें, परन्तु उसी समय घटनाक्रम से आपकी किसी पुस्तक के बीच में रखे हुए विस्मृत एक दस रुपये के नोट को निकाल कर वह आपको दे दे। आपने ही कभी इस नोट को पुस्तक में रक्खा था जो विस्मृत हो गया था। यह तो आप ही का धन था जिसे आप भूले हुए थे। उसने केवल आपका ध्यान इधर आकर्षित कर दिया और आपको ऋण की लज्जा से बचा दिया। यही 'प्राप्त-प्राप्ति' का उदाहरण है। गुरु ही इस आन्तरिक धन को प्रकार कर देते हैं।

गुरु से अधिक गुरी, (तेलगू में) अर्थात् लक्ष्य ही इस दैवत्व की प्राप्ति में आवश्यक होता है। लक्ष्य की वेदी ही सतोगुण को प्रबल कर देती है और तमोगुण तथा रजोगुण को, जो आपके अन्दर हैं, निर्बल कर देती है। तमोगुण के द्वारा आसुरी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं, और रजोगुण के द्वारा मानवी वृत्तियों को बल मिलता है परन्तु सतोगुण ही केवल ऐसा है जिसके द्वारा मानव ऊपर उठकर दैवत्व में अनिवार्यत: प्रतिष्ठित होता है। सतोगुण मनुष्य की ऊर्ध्वगामी वृत्तियों की वृद्धि कर उसके मस्तिष्क में से दुष्टता की घास को निकाल कर, मन को परिष्कृत कर देता है। सत्य ही सतोगुण का आधार है। सत्य और सत्कर्म, मनसावाचा कर्मणा, दूसरों का परोपकार ही सत्कर्म होते हैं।

मत, मज़हब, या धर्म, जहां कहीं जिस किसी के द्वारा अभ्यास में लाये जाते हैं, कुछ ऐसे नियमों और उपनियमों को निर्धारित करते हैं

जिनसे सतोगुण की वृद्धि और अन्य दो शेष गुणों का ह्रास होता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि धर्मारूढ़ व्यक्ति इन नियमों साधनाओं का ज्ञान, अपने आचार और उपदेश द्वारा अन्य लोगों में भी प्रसार करें। ईसाई और मुसलमान इस कार्य को बड़े उत्साह से करते हैं। परन्तु सनातन धर्म के अनुयायियों में अपने धर्म के प्रति वह विश्वास अथवा निष्ठा ही नहीं है कि उनका धर्म श्रेष्ठ है। यह निष्ठा ही तो मनुष्य को अपने धर्म के बारे में दूसरों से वार्ता के लिए प्रेरणा देती है और उन लोगों को अपनी वार्ता सुनने को वाध्य करती है। मुझे ज्ञात है कि बहुत से लोग सनातन धर्म के मूल तत्व, वर्णाश्रम-धर्म, मूर्ति-पूजा आदि में विश्वास प्रकट करते हुए लजाते हैं; जबकि पाश्चात्य साधक हमारे प्राचीन सनातन धर्म के शास्त्रों से बहुमूल्य प्रेरणायें ग्रहण कर आगे बढ़ते हैं। वे भारत को इस अंधकार में एक प्रकाश स्तंभ मान कर श्रद्धा करते हैं। जबकि भारत की सन्तानें भौतिक जगत की चमक-दमक और भौतिकता की उपलब्धियों से, जो अन्य देशों ने इस क्षेत्र में प्राप्त की हैं, चमत्कृत हो रही हैं। वेद और शास्त्र भारत माता के दो नेत्र हैं, इनकी उपेक्षा करने से उसकी दृष्टि कम और धूमिल हो गयी है। यदि वेद शास्त्र को पुनः भारत की सन्तान अपने जीवन में उतार लेती है तो इन नेत्रों की ज्योति पुनः प्रखर और प्रभावशाली होकर कार्य करने लगेगी।

तब भारत की, तथा शेष विश्व की संतानें परब्रह्म में, और अन्त में उसी में लीन होने के, विश्वास में दृढ़ हो सकेंगे। इसी से वे सच्चे भक्त बन सकेंगे। क्योंकि तभी तो वे अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान् होंगे। एक बार नारद जी ने भगवान् से कहा कि आपकी सृष्टि में पृथ्वी सर्वश्रेष्ठ और भव्य है। इस पर विचार किया गया तब यह विचार आगे आया कि पृथ्वी से तो महासागर ही बढ़ कर है जो विस्तार में इससे ३ गुना और इसे चारों ओर से घेरे हुये है। परन्तु महासागर को खारा बताया गया और उसकी क्षुद्रता इसी से प्रकट है कि अगस्त मुनि ने

इसे आचमन करके सुखा दिया था; और स्वयं अगस्त इस अनन्त आकाश में एक क्षुद्र तारा ही मात्र हैं। तब क्या आकाश को ही भगवान् की सृष्टि में सर्वोत्तम माने ? नहीं, क्योंकि भगवान त्रिविक्रम ने तो इसे एक ही चरण में पूरा नाप लिया था। फिर ऐसा महान् भगवान्, जो त्रिलोकी को अपने तीन कदमों में ही नाप जावे, भक्तों के द्वारा अपने हृदय में कैद कर लिये गये हैं। अन्त में यही निर्णय हुआ कि भक्त ही इस सृष्टि में भगवान की सर्वश्रेष्ठ कृति है। भक्त की ऐसी ही महिमा है, यह महिमा भक्तों की शास्त्रों के अध्ययन, अनुशीलन से ही प्राप्त होती है।

शास्त्रों को तो लोग एक ओर रखते हैं क्योंकि लोग इनकी मधुरता और ज्ञान के प्रकाश से अपरिचित हैं। उन शास्त्रों की प्रतिक्रियावादी, आनन्द नाशक, दकियानूसी और रूढ़िवादी कह कर निन्दा की जाती है। परन्तु यह तो रोगी के उस प्रलाप के समान है जो डाक्टर की और औषधि की कटुता के विरुद्ध होता ही है भले ही वही डाक्टर और वही औषधि उसे जीवनदायिनी सिद्ध होवे। रोगी तो निराशा, चिन्ता, भय, भीरुता, लोभ, ईर्ष्या और शरीर तथा मस्तिष्क के स्नायुदौर्बल्य से पीड़ित है। शास्त्र उसे शान्ति, साहस, विश्वास, सन्तोष और मैत्रीभाव तभी प्रदान कर सकते हैं यदि वह शास्त्रों की आज्ञा मानने का प्रथम सोपान लांघ सके। क्योंकि वे पहला पाठ ही भगवान की सर्वव्यापकता का पढ़ाते हैं। चूंकि प्रत्येक के हृदय में भगवान का वास है अतः हमें प्रत्येक को भगवान की तरह प्यार करना चाहिये। चूँकि प्रत्येक के हृदय में भगवान का वास है अतः भयभीत अथवा निराश होने का कोई कारण नहीं है। आप किसी से घृणा कैसे कर सकते हैं, जबकि वह ईश्वर, जिसकी आप पूजा करते हैं, उसके अन्दर भी है ? अथवा उसकी प्रार्थना अनसुनी कैसे कर सकते हैं ?

शरीर तो भगवान का मन्दिर है, यह वह रथ है जिस पर भगवान अपनी सम्पूर्ण महिमा से आसीन हैं। आप आत्मा को शरीर का पर्याय

न समझें और न इन शारीरिक परिवर्तनों को आत्मा का परिवर्तन ही समझें। आप आत्मस्वरूप होने के कारण इन सब परिवर्तनों से ऊपर हैं जो शरीर को प्रभावित करते हैं। अपने मन को प्रलोभनों और अज्ञान से रहित कर लो, इसे धूलि से रहित कर लो; तब भगवान का प्रतिबिम्ब स्पष्ट होगा। ईश्वर कार्य के पीछे उद्देश्य का विशेष मूल्यांकन करता है कि जिस आदर्श के कारण कार्य किया गया है—भाव, न कि बाह्य आचरण। सुनार जब सोना खरीदता है तो तोले के हिसाब से दाम चुकाता है फिर वह स्वर्ण खण्ड किसी भी आकार या मूर्ति के रूप में क्यों न हो, वह चाहे मुकुट हो, किसी मूर्ति का सर हो, अथवा चरण। ईश्वर भी यही कहता है, "मैं केवल इस पर ध्यान देता हूँ कि तुम्हें कितनी मेरी प्यास है, आप किस आकार या रूप में मेरी पूजा करते हैं, इसकी मैं चिन्ता नहीं करता।"

प्रशान्ति विद्वान महासभा लोगों को यही सब सिखाने बताने के लिए संगठित की गयी है साथ ही में यह भी उद्देश्य है कि ऐसा प्रयत्न किया जावे कि लोग इस तीर्थ यात्रा पर, जोकि शुष्क पाश्चात्य मरुस्थल की चकाचौंध से विस्मृत की जा रही है, पुनः चल पड़ें। विद्वानों की संख्या और प्रभाव में शीघ्रता से ह्रास हो रहा है। उनको सम्मान् और पोषण दिया जाना चाहिए। इसे असम्भव कार्य मत बतलाओ। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप उनके रहन-सहन के भौतिक स्तर को ऊँचा उठा दें। मैं आपसे केवल इतना ही आग्रह करता हूँ कि आप उनके अन्दर यह भावना अथवा भय न रहने दें कि विद्वत्ता एक भार है। आप उनसे सनातन धर्म का सार ज्ञान प्राप्त कर लाभान्वित होइये और वे इतने से ही प्रसन्न और संतुष्ट हो जावेंगे। वे स्वयं अपनी दृष्टि में भी ऊँचे उठ जावेंगे और ऐसा अनुभव भी करेंगे। वे समृद्ध न सही, शान्तिपूर्वक तो रह सकेंगे।

सच्चाई के साथ जो भी सत् कार्य किया जाता है पुरस्कृत होता है। जब आप कोई ऐसा कार्य करें तो आपकी दृष्टि पुरस्कार पर नहीं होनी चाहिए, इतना ही पर्याप्त है। भारतीय आकाश आज मेघाच्छन्न है इसलिए आपका चिन्तित होना स्वाभाविक है। परन्तु ईश्वर से प्रार्थना और उसकी कृपा की सतत् स्मृति सभी चिन्ताओं को दूर कर देगी। घोर आवश्यकता और विपत्ति में ईश्वर से बढ़कर अन्य कोई सहायक नहीं होता है। भगवान को जानना, सदा संयुक्त रहना, उसकी अपार महिमा में लीन हो जाना ही मनुष्य का अन्तिम ध्येय होता है। राज्य-पाल, मुख्यमंत्री और अन्य अधिकारीगण जो यहां पर उपस्थित हैं, योजना बनाते हैं और उन्हें इसलिये कार्यान्वित करते हैं कि शरीर निरोग रहे, मस्तिष्क दक्ष और प्रशिक्षित होवे, परन्तु मन की देखरेख तो हमीं लोगों को करनी है।

प्रशान्ति विद्वान सभा—पहला दिन
हैदराबाद ७-१२-६४

———

२

कम से कम बोझा लेकर यात्रा करो

रसपूर्ण वार्ता करने वाले तो हजारों मिलते हैं, क्योंकि उन्हें तो मनुष्य की सुखेच्छा की चर्चा करनी होती है; परन्तु कल्याण-वार्ता करने वाले, श्रेय की चर्चा करने वाले, लाभप्रद प्रसंग उठाने वाले कम ही होते हैं। क्योंकि 'क्या लाभप्रद है' इसका ज्ञान तो बहुत कम लोगों को ही होता है। कुछ लोग तो सदा 'छोटे से छोटा मार्ग' खोजते रहते हैं। जो डाक्टर दवा के साथ-साथ पथ्य और कुपथ्य भी निर्धारित करता है उसे लोग कम ही पसंद करते हैं। ऐसे डाक्टरों से वह सदा दांत पीसते रहते हैं। परन्तु डाक्टर को तो ऐसे प्रतिरोधों की चिन्ता न करके अपना कर्त्तव्य ही निभाना चाहिये। उसे तो पथ्य और कुपथ्य के विचार पर आग्रह करना ही चाहिये, चाहे वह अलोकप्रिय ही क्यों न हो जावे।

आजकल विद्वान और पंडितजन प्रत्येक क्षेत्र में एक प्रचण्ड रोग से आक्रान्त पाए जाते हैं; यह रोग "नैतिक स्नायु के अविकसित" रह जाने के कारण है। राष्ट्रीय विकास की योजनाओं में कहीं पर भी नैतिक विकास का कार्यक्रम नहीं रक्खा गया है। उलटे सदाचारी और धार्मिक व्यक्तियों की खिल्ली "निरस्त अथवा रद्दी" कह कर उड़ायी जाती है, जिन्हें दुनिया में रहने का भी शऊर नहीं है। परन्तु, जैसा कि वेद के कर्मकाण्ड में घोषित किया गया है, सभी कृत्यों के द्वारा मनुष्य को अपने चरित्र को ऊँचा उठाना चाहिये, भावों की शुद्धि होनी चाहिये, उन लालसाओं और भावोद्रेकों से, जिनसे मन पीड़ित है, मस्तिष्क को परिष्कृत करना चाहिये, दृष्टिकोण की विशालता आनी

चाहिये। जिस विश्वात्मा का मनुष्य एक ग्रंश है उससे सम्बन्ध दृढ़ से दृढ़तर होते चले जावें। गीता में ग्रर्जु न को "कुरुनन्दन" कह कर सम्बोधित किया गया है। कुरु का ग्रर्थ होता है 'कर्म'। इसका ग्रर्थ हुग्रा कि मनुष्य अपने कर्मों का ही फल है। जैसा वह सोचता है, कहता है ग्रौर करता है उसी के प्रतिफल स्वरूप अनिवार्यरूप से ग्रागे उसे होना पड़ता है। जब तक ग्रज्ञान की एक रेखा भी विद्यमान रहती है, मनुष्य 'कुरुनन्दन' रहता है। कृष्ण इसीलिये ग्रर्जुन को भक्तिमार्ग पर, ज्ञानक्षेत्र में लाने के लिए समझाते हैं।

मनुष्य को स्वस्थ तभी समझा जा सकता है जब वह ग्रपने वास्तविक रूप को जाने ग्रौर उसी की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील भी देखा जावे। वह तो ग्रमृतपुत्र होकर भी मृत्यु की ग्रोर चकरघिन्नी खाता हुग्रा ढकिल रहा है। यह कैसे दयनीय दुर्भाग्य की विडम्बना है? उसके अन्दर अहंकार की चिनगारी को मस्तिष्क ग्रौर इन्द्रियों ने वृहदाकार देकर दुःख की ग्रग्नि की भट्टी में बदल दिया है। इसी ग्रहंकार के कारण मनुष्य क्षुद्र सफलताग्रों को महान उपलब्धियां, ग्रल्पमूल्य वाले क्षणिक लाभों को ग्रानन्दप्रद ग्रौर दूसरों पर कुछ अधिकार दिखाने के ग्रवसरों को ग्रपना वैभव मान वैठता है; परन्तु मनुष्य के ग्रन्दर स्थित दैवत्व उसे जन्म-मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाले ग्रवसर की खोज की प्रतीक्षा में है।

उस ग्रमर ज्योति की खोज की सुनिश्चित प्रक्रिया होती है। यद्यपि यह कार्य प्रारंभ में दुष्कर प्रतीत होता है परन्तु प्रत्येक पग के बाद ग्रगला पग ग्रपेक्षाकृत सरल प्रतीत होता है यदि मन को ग्रनुशासन पूर्वक रखा जावे तो दैवत्व की खोज, और सृष्टि के उद्भव का ज्ञान एक झपाके में ही विदित हो जाता है। इस पूर्णाहुति के लिये कोई सुगम ग्रथवा 'छोटे से छोटा मार्ग' नहीं होता है। व्यक्ति को ग्रभी तक संजोये

हुये सभी रोड़ों को फेंक कर यात्रा के लिये हल्का होना पड़ता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर, ईर्ष्या और घृणा—इन सभी चिरपोषित वृत्तियों को दूर फेंकना ही होगा। साई बाबा के प्रवचनों को सुन लेना और इस पर गर्व करना कि इतने प्रवचन सुने हैं, पर्याप्त नहीं है। मेरे सामने यहाँ हजारों की भीड़ बैठी है, परन्तु मैं इन श्रोताओं को गिनता ही नहीं। मेरी गणना में वे ही आते हैं जो उन बातों में से एक दो पर अमल भी करते हैं।

महाभारत युद्ध के पश्चात् भीष्म को भगवान ने दर्शन दिये। भीष्म इस दुनियाँ से प्रस्थान करने से पूर्व उनके दर्शनों के लिये प्रार्थना कर रहे थे। भक्त भगवान के लिये साधना करता है, आकांक्षा रखता है; परन्तु आप यकीन कीजिये भगवान् भी भक्त के लिये आकांक्षा रखते हैं। यही कारण है कि वे मानवाकार धारण कर उनके मध्य विचरते हैं। भक्त को भगवान् के सम्पर्क में जितना आनन्द आता है भगवान् को भी भक्त के सम्पर्क से उतना ही आनन्द प्राप्त होता है। वास्तविकता तो है कि जब भक्त भगवान् की ओर एक कदम बढ़ाता है तो भगवान् भक्त की ओर दस कदम आगे बढ़ आते हैं। उसके आनन्द और कृपा की यही नाप है। वैसे भगवान् तो सर्वत्र ही हैं, घर में, बाहर, आगे, पीछे भक्त के सभी ओर हैं; परन्तु मनुष्य उन्हें पहचानने अथवा अनुभव करने में असमर्थ होता है।

भगवान आपके जीवन की अदृश्य (पृथ्वी के नीचे छिपी हुयी) नींव हैं। वही तो मूल उद्गम, आधार और शक्ति हैं। उनकी इच्छा के बिना पत्ता तक नहीं हिल सकता, घास का अंकुर भी नहीं इधर-उधर गति कर पाता है। इससे अधिक सुदृढ़ और कौन से आधार की आप इच्छा करते हैं ? एक बार आप निश्चय कर लो कि सर्वशक्तिमान भगवान् ही आपके जीवन के मुख्य प्रेरक हैं फिर तो आपके लिये कोई

कारण रहता ही नहीं है। यदि आपको मकान की नींव के सुदृढ़ होने में संदेह है तो आपको भवन में प्रवेश करने में भय लगेगा ही। यदि आपको कार के निर्माता की दक्षता में अविश्वास है तो कार में बैठने पर आपको मानसिक व्याकुलता अवश्य होगी। भीष्म तथा अन्य भक्त-गणों और शंकर आदि ज्ञानियों को विश्वास था कि भगवान ही 'आधार' है इसीलिये वे निर्भय रहते थे। परन्तु आज के मानव में वह विश्वास नहीं है इसीलिये आज भय, चिन्ता और अशान्ति का युग है।

गांधी ने भगवान् की कृपा और शक्ति पर विश्वास किया था इसी से उन्हें विजय प्राप्त हुई। परमाणु बम अपनी सभी विनाशकारी क्षमताओं के साथ उन्हीं राष्ट्रों को ले डूबेंगे जो इन बमों पर विश्वास रखते हैं। आपको भस्मासुर की कथा तो याद ही होगी; किस प्रकार उसने देवताओं से भयंकर वरदान, कि जिसके सर पर वह हाथ रख दे वही भस्म हो जावे, प्राप्त कर लिया था। असावधानी के एक क्षण में उसने अपने ही सर पर हाथ रख लिया और वह वरदान ही उसके नाश का साधन बन गया था।

आपके अन्दर की आत्मा ही इस विश्वात्मा की एक चिंनगारी है। आपकी बुद्धि इस सत्य को हृदयंगम कर ले। अपना विश्लेषण करके चेतना के स्तरों—भौतिक, ऐन्द्रिक, स्नावयिक, मानसिक, बौद्धिक—को पार करते हुये आप अंतिम स्तर आनन्द तक पहुँचो। इन पंच कोषों को पार करने पर ही आपको उस सत्य के दर्शन होते हैं जो आपकी आत्मा कही जाती है।

इस आत्मा को प्रखर बुद्धि और निर्मल मन से ही प्राप्त किया जा सकता है। मन को निर्मल कैसे बनाया जावे ? जिस कुत्सित खाद्य के पीछे यह दौड़ता रहता है उसी से इसको दूर रखा जावे अर्थात् वस्तु गत

सुखानुभूति से दूर रक्खा जावे और भगवत्सम्बन्धी विचारों, जो कि एक पौष्टिक भोजन है, से इसे संयुक्त रखा जावे। यदि बुद्धि स्थायी और नाशवान् पर विचार करती रहे तो वह भी प्रखर हो जाती है। अपने विचारों को ईश्वर पर केन्द्रित करो, उसके नाम रूप का ध्यान करो आपको अनुभव होगा कि आप सदा और सर्वत्र ही उस भगवान् से संयुक्त रहते हैं। यही कारण है कि मैं नामस्मरण को साधना बनाना क्यों महत्वपूर्ण मानता हूँ।

प्रशान्ति विद्वान सभा—द्वितीय दिन
हैदराबाद ८-१२-६४

——

३

अन्न और अमृत

इस लम्बे अधिवेशन से आप सभी लोग ऊब उठे होंगे और थक गए होंगे, यद्यपि मैं जानता हूँ कि आप तीन दिन से इन प्रवचनों से लाभान्वित हो रहे हैं। लक्ष्य पर पहुँचने से पूर्व लक्ष्य की स्थिति का ज्ञान भी होना जरूरी है। यह कितना भव्य है और इसकी प्राप्ति में क्या-क्या बाधायें हैं और इसे प्राप्त करने के लिये किस अनुशासन का पालन करना चाहिये ? थोड़ी सी थकान तो इस सब ज्ञान को प्राप्त करने में अनिवार्य होती है। इन पंडितों ने वेद-शास्त्रों के पाठों की व्याख्या की है और आपको उनके सिद्धान्तों को समझाया है। आपको उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये उस सावधानी के लिये कि जिसके द्वारा उन्होंने इस बहुमूल्य ज्ञान को आप लोगों के लिये सुरक्षित रखते हुये सुलभ किया है।

साधक के लिये पहली आवश्यकता तो श्रेष्ठ निर्लिप्त भाव की है, वैराग्य की है जोकि इन्द्रियों तथा उनके गुण कर्म, मन, बुद्धि और अपने चतुर्दिक भौतिक पदार्थों के संबंध में उनकी प्रकृति और विशिष्टताओं के गंभीर विवेचन से उत्पन्न होता है। जाग्रत अवस्था में जो जो अनुभव होते हैं उनकी सापेक्ष सत्यता और स्वप्न जगत के अनुभव, सुषुप्ति अवस्था के सम्बन्ध में गंभीर विवेचन से 'मैं' अथवा आत्मा के संबंध में जो इन सबका साक्षी अथवा दृष्टा होता है, गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिये।

विश्वात्मा, शाश्वत, की एक चिनगारी ही आप हैं। वही आपकी आत्मा है जो वास्तव में इन सबका साक्षी है। इतना महान उत्तरा-

धिकार प्राप्त कर और महान लक्ष्य रखते हुये आप क्षुद्र सुखों और क्षणिक सफलताओं के पीछे कैसे दौड़ सकते हो ? इसी विवेचन के द्वारा आप निर्लिप्त स्थिति में दृढ़ हो सकेंगे । जब आपको यह ज्ञात हो जाय कि 'हीरा' समझ कर आप एक काँच का टुकड़ा पकड़े हुये हैं तो आपको फिर समझाना नहीं पड़ेगा और आप उसे फेंक ही देंगे । लाभप्रद कार्यों में संलग्न होइये । कमाओ, परन्तु धन से इतनी कठोरतापूर्वक चिपके न रहो । ईश्वर के द्वारा नियुक्त संरक्षक की भाँति अपने को समझो और उन्हीं उद्देश्यों के लिये तथा ईश्वर को स्वीकार्य कामों में इस धन-सम्पत्ति का प्रयोग करो । एक प्रधानाचार्य जब एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय को स्थानांतरित कर दिया जाता है तो वह निर्लिप्त भाव से पुराना स्थान छोड़कर नये स्थान पर निश्चित होकर पद भार ग्रहण कर लेता है । उसे त्यागे हुये विद्यालय की प्रयोगशाला, पुस्तकालय, फर्नीचर आदि, जिनकी उपादेयता की छाप उसके मस्तिष्क पर थी और दीर्घकालीन संपर्क के कारण जिनसे उसे अनुराग भी था, उनको वह अपने सामयिक संरक्षण में मानता था और भली प्रकार जानता था कि देर या सवेर उसे इन सबको एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा । उसे यह परिवर्तन दुखद नहीं प्रतीत होता है । आप भी अपनी संपत्ति और विलास की वस्तुओं से इसी प्रकार का भाव रखिये । तभी आप संतोष का जीवन बिताकर शान्ति से प्राण त्याग कर सकेंगे ।

आजकल दुर्बल मस्तिष्क वालों के लिये आत्म-विज्ञापन एक बड़ा प्रलोभन सिद्ध हो रहा है । किसी दातव्य संस्था को ५ रुपये का दान भी मोटे-मोटे शीर्षकों में प्रकाशित और घोषित किया जाता है । इस प्रकार प्रवंचना को प्रोत्साहन दिया जाता है और मनुष्य तुच्छ दिखावे में फंस जाता है । उदारता तो मनुष्य के शान्त मष्तिस्क में पोषित की जानी चाहिये । बीज को चट्टान की पथरीली सतह पर तो नहीं फेंका जाना

चाहिये। इसे तो मिट्टी में दबाकर, चुगने वाली चिड़ियों से बचाकर अंकुरित होने के लिए सुरक्षित रखना है।

भगवान के मार्ग के पथिक के जीवन में अनेकों विघ्न बाधायें आती हैं। उसके चारों ओर, दुष्ट शक्तियाँ घात में छिपी रहती हैं और अवसर मिलते ही उसे धूलि में घसीट लेती हैं। ईश्वर और उसकी सर्वव्यापकता में अडिग विश्वास रखने से मनुष्य विजयी होता है। उपेक्षा और तिरस्कार वृत्ति से बात-बात में जो लोग यह कहते हैं कि "कला में क्या रक्खा है ? विज्ञान ने क्या दिया है ? साहसिकता के कार्यों से और साधना से क्या होता है ?" वे कहते हैं, "यदि आप एक स्थान में बैठ कर भगवान का नाम राम, कृष्ण, गोविन्द आदि कुछ भी लें तो क्या इससे आपकी अन्न, वस्त्र की आवश्यकता की पूर्ति हो जावेगी ?" वे नहीं जानते हैं कि भगवान ऐसे लोगों को न केवल अन्न, बल्कि अमृत भी दे सकता है। एक हल्की सी ठंडी सांस, एक ही पुकार, कष्ट में पड़े हुये का एक चीत्कार, ईश्वर की कृपा और उसका प्रत्युत्तर प्रत्यक्ष करने में समर्थ होती है।

अहंभाव को भगवान के अर्पण कर दो। प्रत्येक क्षण और प्रत्येक गति को भगवान् के प्रति लगा दो। उसने मानवमात्र को आश्वासन दे रक्खा है कि वह (भगवान) उन्हें कष्ट और बुराई से मुक्त रक्खेगा। पूछने पर कि ईश्वर है कहाँ, तो लोग आकाश की ओर उंगली उठा देते हैं अथवा सुदूर प्रदेश की ओर संकेत कर देते हैं, इसी कारण तो वह प्रत्यक्ष नहीं होता है। अनुभव कीजिये कि वह तुममें है, तुम्हारे साथ है, तुम्हारे आगे, पीछे और सभी ओर है और उसे सर्वत्र सदैव देखा जा सकता है और अनुभव किया जा सकता है। यह भी अनुभव करो कि वह दयासिन्धु है; वह आपकी प्रार्थना और पुकार, यदि वे सच्चे हृदय से की गई हैं, को सुनने और पूरा करने को आतुर भी है।

जो आपको ईश्वर के इस सर्वव्यापक रूप को बतलाता है वही आपका सच्चा गुरू है। न कि वह ठग जो आपकी थैली अर्पण से प्रसन्न होकर आपको मुक्ति देने का वायदा करता है। ऐसे लालची और अहंकारी सांसारिक मनुष्यों से सदा सावधान रहो। ईश्वर से प्रार्थना करो वे आपके मन में प्रकाश दें, आपकी बुद्धि को जागृत करें और आपके गुरु भी हो जावें। आपके हृदय की वेदी पर आसीन भगवान आपको निश्चय ही सही मार्गदर्शन देंगे। आजकल अनेकों गुरुओं के विचार से फसल से अधिक बिरवाही का महत्त्व हो गया है। इसीलिये वे कड़ेकड़े नियम-संयमों की व्यवस्था करते हैं परिणाम में इनसे साधना को हानि ही क्यों न पहुँच जावे, कि कभी साधना की रक्षा के लिये इस कठोर अनुशासन की व्यवस्था की गई थी। इसलिये वे उन प्राचीन कालीन नियमों पर आज के युग में भी धर्मान्धतापूर्वक चिपके हुये हैं; परिणाम में वह उद्देश्य ही नष्ट हो रहा है कि जिसकी रक्षा के लिये इन नियमों की व्यवस्था की गई थी। वे भाग्य का कार्यक्षेत्र और कर्म के परिणामों का बड़ा भयावह चित्र खींचते हैं और मनुष्य को भगवान की कृपा और असीम शक्ति के संबंध में आश्वासन देने की उपेक्षा कर जाते हैं।

यदि कर्म का लौह बन्धन मनुष्य के हाथ पैरों को इतना जकड़े हुये है तो फिर श्रुतियों और स्मृतियों में साधकों से तपस्या और हार्दिक प्रयत्नों के लिये इतना आग्रह किस लिये किया गया है? इन हार्दिक आकांक्षाओं और तपस्या से निश्चय ही कर्म का दुष्प्रभाव नष्ट हो जाता है और मनुष्य अपने भाग्य के जाल में फंसने से बच जाता है। भाग्य से मार्कण्डेय ऋषि को अल्पायु में ही शरीर छोड़ने का विधान किया था, परन्तु उनसा दीर्घजीवी शरीर बहुत ही कम को मिल पाया है; इस उदाहरण से क्या परिणाम निकलता है? उनकी तपस्या ने भगवान् की कृपा से अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। सभी अवतारों के प्रारंभिक

चरित्रों में अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जब कि संचित कर्मों के ऊपर भगवान् की महती कृपा से भावी उलट गयी है। ईश्वर जो भी करता है, आपके उद्धार और कल्याण के लिये करता है; नाकि आपको बाँधने और पतन के गर्त में गिराने के लिये करता है। जो ईश्वर ऐसा अशुभ करे वह ईश्वर ही नहीं है। ईश्वर की अपनी कोई पसंद या नापसंदगी नहीं होती है; वह सभी विशिष्टताओं और गुणों से ऊपर गुणातीत होता है। इसलिये वह घृणा करने वाला या बदला लेने वाला कैसे हो सकता है ? वह तो प्रेम, दया, कल्याण और बुद्धि स्वरूप है। वही शक्ति स्वरूप भी है। जो आप याचना करते हैं वही पाते हैं इसलिये याचना सोच-समझ कर ही करना चाहिये। सदा अच्छे-अच्छे वरदानों की ही याचना करनी सीखो। कल्प वृक्ष के पास जाकर केवल तौलिया साबुन पाकर इठलाते हुए मत लौटो।

मैं आपके लिये प्रभु कृपा प्राप्त करने के लिये विस्तारपूर्वक जप ध्यान नहीं निर्धारित करता हूँ। अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखकर इसे मृदुभाषी और कोमल बनाये रक्खो। इन्द्रियों के पीछे मत भागो। सदा भगवान का चिन्तवन करो और उसकी महिमा का, शक्तिमत्ता का ध्यान करो—आपके लिये इतना धार्मिक अनुशासन पर्याप्त है। जितना हो सके भगवन्नाम लेते रहो आपके लिये इतनी साधना पर्याप्त है।

हैदराबाद प्रशान्ति महासभा तृतीय दिन १६-१२-६४

———

४

पप्पू और उप्पू

गरुड़ पुराण में श्रीहरि ने गरुड़ को उपदेश दिया है कि मृत्यु अपनी सेना—बीमारियों, दुर्घटनाओं और प्राकृतिक विपत्तियों, से मानव जीवन पर प्रतिदिन आक्रमण कर रही है। तुमने अनेक जन्मों के निम्नयोनियों में किये गये सत्कर्मों के फलस्वरूप इस मानव शरीर को पाया है। यह वास्तव में बड़ी मूर्खता की बात होगी यदि इस स्वर्ण अवसर का दुरुपयोग कर इसे निम्नयोनियों के पशुजीवन की पुनरावृत्ति में गँवा दिया जावे। जीवन-चक्र इतनी द्रुतगति से चालू है कि लोग प्रायः आश्चर्य करते हैं कि वे इतने शीघ्र कैसे बुड्ढ़े हो गये। अपने गलियों में खेलने, या कालेज में अध्ययन करने की बातें कल की सी प्रतीत होती हैं, फिर भी उनके आसपास नाती-पोतों के खेलते हुए दृश्य कठोर सत्य से परिचित कराते रहते हैं। जबकि मृत्यु लोगों को इतनी शीघ्रता से अंत की ओर ठेल रही है, घमंड मनुष्य को प्रेरित करता है कि वह दूसरों को अपने चरणों पर झुकावे। विनम्रता उन्हें सर्व शक्तिमान् के चरणों में शरणागत होने के लिये प्रेरित ही नहीं करती!

प्रतिपदा से ही समस्त देश रामजन्म का उत्सव मना रहा है; और आज तो रामनवमी ही है कि जिस दिन भगवान् ने अवतार लिया था। राम ही धर्म है और धर्म ही राम हैं। वेदों में मनुष्य के चार आदर्श पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बतलाये गये हैं। धर्म इन सबका प्रथम आधार है। यदि धर्म की अवहेलना अथवा त्याग किया जाता है तो दुःख और शोक ही परिणाम होगा। राम ने तो धर्म को ही सर्वोपरि

माना था। जब भरत ने, पितृशोक, माता के लोभ और भाई के निर्वासन से व्याकुल होकर वन में, चित्रकूट में, रामचन्द्र जी के चरणों में लोटते हुये अपनी पीड़ा व्यक्त की तो श्रीराम ने उनको प्रेमपूर्वक उठा कर पूछा, "क्या तुम सोचते हो कि तुमने अयोध्या में धर्म का पालन किया है? क्या प्रजा, निर्धन लोग, वृद्धजन, विद्वानों, सन्तों तथा मुनियों का नियमानुसार आदर मान हो रहा है? घोर से घोर विपत्तियों में भी पड़कर मनुष्य को न्याय और नैतिकता के मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिये।" राम तो भरत को अज्ञान की निद्रा से जगा रहे थे। बेचारे भरत अपने ही शोक और दुख से अभिभूत थे; मानो कि पिता, माता, भाई, राज्य, शक्ति और सिंहासन कोई महत्त्व रखने वाली वास्तविकतायें हों, मानो वे शाश्वत सत्य हों। राम ने स्मरण कराया कि सभी व्यक्ति धर्म-आचरण और धर्म-पालन करने के लिये यंत्र मात्र हैं!

जिस प्रकार सर्कस में एक तिपाई पर सधकर बैठने के लिये जंगल के बड़े परिवार वाले हाथियों के यूथपति को फंसाकर शिक्षित कर लिया जाता है, इसी प्रकार मनुष्य के मन को भी क्रमानुसार अनुशासन (सम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) के द्वारा अनुशासित और प्रशिक्षित किया जाना चाहिये, जिससे कि वह मनुष्य के वास्तविक हित का साधन बन सके। किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष वकालत करने के पूर्व व्यक्ति को एलएल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती है। रोगी को नुस्खा लिखने का अधिकार प्राप्त करने के पूर्व चिकित्सक को एम. बी., बी. एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है। आपको लाइसेन्स लेकर अपना नाम बाकायदा पंजीकृत चिकित्सकों के रजिस्टर में अंकित कराना पड़ता है। हर जगह, हर पेशे के लिये लोग आपकी योग्यता के संबंध में पूछ-ताछ करते हैं। भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक-क्षेत्र में भी इसी प्रकार से वास्तविक योग्यता की

आवश्यकता होती है। आप प्राय: आदर्श और लक्ष्य तो बहुत ऊँचा रखते हैं परन्तु प्रयास शून्य मात्र करते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में, निष्ठा, और विश्वास ही सार हैं। संदेह श्रद्धा की जड़ों को हिला देता है, इसीलिए संदेह से रहित हो जाना चाहिए। प्राचीन ऋषियों में विश्वास रखो, अपने नन्हें से मस्तिष्क को संतों के आत्मानुभव और उनकी खोजों के विरोध में मत रक्खो। उदाहरण के लिए माता-पिता की मृत्योपरान्त वर्षी पर पिन्डदान के लिए अग्नि में अन्न की आहुति दी जाती है। आजकल के शिक्षित और भ्रमित अशिक्षित लोग इसके प्रति व्यंग और घृणापूर्वक मुस्कराहटें बखेरते हैं जब कि इस पिन्डदान की चर्चा होती है। "मृतात्मा ने तो पहले ही कहीं न कहीं अपने कर्मानुसार जन्म ले ही लिया है और उसका वर्तमान पता अज्ञात है तो फिर वार्षिक श्राद्ध पर मृतात्मा की स्मृति में उसके लिए किया गया पिन्डदान किस प्रकार उसकी ३६५ दिन की संचित भूख को मिटा पावेगा?" यही सब कुछ तो वे पूछते हैं। "अपने पिताजी को मुड़ेर पर बिठादो और नीचे आंगन में भोज्य सामग्री रख दो तो वे कैसे उस तक पहुँच सकते हैं? अथवा वह भोज्य सामग्री ही स्वत: उन तक कैसे पहुँच सकती है? आप चाहे जितना मंत्र पाठ कर देखें," कह कर वे ठठाकर हंस देते हैं। उनका तर्क होता है कि "जब जीवित मनुष्य भूख से बिलाबिलाते हों तो मृतात्मा के प्रति भोजन क्यों अर्पण किया जाता है?"

आप एक पत्र लेटरबक्स में छोड़ते हैं वह सीधा पाने वाले के घर पहुँचाया जाता है, चाहे पाने वाले का घर कितनी ही दूर क्यों न हो। क्या इसका कारण आपकी और पोस्ट मास्टर की मित्रता है? अथवा वह आपकी चिन्ता से सहानुभूति रखने के कारण पाने वाले से संपर्क स्थापित करता है? यदि पता स्वच्छ और सही लिखा गया है, तत्का-

लीन वैध प्रचलित टिकटों को चिपका कर आवश्यक पोस्टेज चुका दिया गया है, तो चाहे आदमी ले जावे, अथवा ट्रेन, कार, बस, हवाई जहाज या स्टीमर, आपका पत्र पाने वाले के द्वार तक ले जाया जाता है। कृत्य की अग्नि ही अधिकृत लेटरबक्स है, अग्निदेव ही इस आदान-प्रदान के अधिकारी हैं और विभिन्न मंत्र ही पोस्टेज स्टाम्प हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान, विभिन्न जड़ पदार्थों का विज्ञान है उसी प्रकार आत्मा का भी एक आध्यात्मिक-विज्ञान है। इसकी अपनी ही श्रेणियाँ हैं, अपनी कार्य पद्धति है, अपने ही अधिकारी और सिद्धान्त हैं।

केवल साधना के द्वारा ही पदार्थ अथवा मन के रहस्य अपने लाभ के लिए जाने, समझे और प्रयोग किये जा सकते हैं। शंकर ने विवेक चूड़ामणि में कहा है, "यदि पृथ्वी के निक्षिप्त अथवा उसके अन्तराल की निधि को ऊपरी सतह पर लाना है तो उसे नाम ले ले कर पुकारने से कुछ लाभ नहीं होगा। आपको उसकी स्थिति का ठीक-ठीक बोध होवे इसके लिए इस विद्या के दक्ष लोगों से परामर्श लो, उस स्थान को उस गहराई तक खोदो, मार्ग में पड़ने वाली मिट्टी, चट्टान, बालू सभी को हटाकर अलग करो, तब उस निधि को उठाकर ऊपर तक पृथ्वी तल पर ला सकोगे।" इसी प्रकार किसी ब्रह्मज्ञ से आत्म-तत्व का ज्ञान प्राप्त कर उसके निर्देशानुसार आचरण, मनन, ध्यान, निदिध्यासन करो। अन्त में जब सत्य के दर्शन होवें तो आत्मा को आनन्दानुभूति के क्षणों में स्थिर भाव से रक्खो।

ब्रह्मसूत्र "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" से प्रारम्भ ही होता है। इसका अर्थ यह कि अब यहाँ से ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। तो अभी तक इससे पूर्व क्या होता रहा है? किस के बाद? और इसके प्रारम्भिक कदम क्या हैं? मनुष्य ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार करने का, अथवा इस विचार-विमर्श में भाग लेने का कब अधिकारी हो पाता है?

इसके पूर्व हमें दो अध्ययन और कर लेने होते हैं, "अथातो कर्म जिज्ञासा" अर्थात इसके बाद कर्म के सम्बन्ध में विचार किया जावेगा। और अगला अध्ययन कहता है "अथातो धर्म-जिज्ञासा" अर्थात् इसके पश्चात् धर्म के सम्बन्ध में विचार किया जायेगा। इस प्रकार मनुष्य सार्वभौम सिद्धान्त, जो प्रत्येक वस्तु का अनादि कारण है, जानने का अधिकारी होता है जबकि उसका मन कर्म और धर्म के समुचित निर्वाह से शुद्ध हो चुका होता है।

मुख में पहला ग्रास जिह्वा तक पहुंचाने के पश्चात् ही आप भोज्य पदार्थ का स्वाद खट्टा, मीठा, नमकीन आदि जान पाते हैं, अथवा यह कि इसमें नमक नहीं पड़ा है। पप्पू को तो उप्पू चाहिए ही। अर्थात् उबली दाल में स्वाद के लिए नमक होना ही चाहिए। इसी प्रकार जब आप इस संसार में जीवन बिता कर, एक नैतिक मापदण्ड से आचरण कर जान पाते हैं कि ज्ञान रूप नमक के बिना जीवन निस्वाद है। इसलिए कुछ ज्ञान का पुट जीवन में अवश्य ले लो; कम से कम इतना तो जान लो कि आप शरीर नहीं हैं, शरीर के निवासी हो। और यह कि निरन्तर परिवर्तनशील प्रकृति की दृश्यावली के आप साक्षी मात्र हैं, आप तो शान्त, आनन्दमय और चिन्मय हैं। धीरे-धीरे सर्वं खल्विद ब्रह्म की धारणा को पुष्ट बनाओ। तब तो बिना किसी प्रार्थना और अनुनय विनय के ही जो तुम्हें प्राप्त होना चाहिए, बिना किसी की सिफारिश से ही मिल जावेगा। इसलिए तो त्यागराज गाते हैं, "आडिगी सुखभूले व्ननुं मावि-न्यिरी" तुम्हारी प्रार्थना के द्वारा किसने आनन्द और प्रसन्नता प्राप्त की है ?" उसी पर छोड़ो, उसकी इच्छा पूर्ण होने दो; इस, उस किसी वस्तु की कामना ही मत करो। वह तो सर्वज्ञ है। शबरी ने किसी वस्तु की याचना की ? क्या जटायू ने भगवान के दर्शन चाहे ? क्या निषादराज गुह ने यह चाहा कि राम उस तक आवे ?

जिस व्यवसाय में आप संलग्न हैं उसका जो भी नैतिक आचरण का सिद्धान्त होवे आप उसका पालन करें। जिस आयु और स्थिति में आप पहुँच चुके हैं उसके अनुकूल धर्माचरण करें। एक बार एक बड़े राज्य के राजा ने एक सन्यासी से पूछा कि उच्च सिद्धान्तों के अनुसार जीवन यापन करना संभव है? कुछ समय बाद राजा के दिवंगत होने पर, जैसा कि उस राज्य की परम्परा थी, शाही हाथी एक माला लेकर राजा का उत्तराधिकारी खोजने निकला। हाथी ने वह माला एक संन्यासी के गले में डाल दी, परन्तु वह सन्यासी लोगों की विनय प्रार्थना का विरोध करते हुए जंगल को भागा। सघन, अगम्य वन-स्थली पहुँच कर उसने चैन की साँस ली, कि वह एक महान विपत्ति से बच गया।

नैतिकता के यह सिद्धान्त और नियम शास्त्रों में वर्णित हैं। लोगों को उनका कर्तव्य साधारण भाषा में बतलाने के लिए ही प्रशान्ति विद्वान्महासभा का संगठन किया गया है। सीमित लक्ष्य वाले कुछ सीमित संख्या में विद्वानों का यह संगठन नहीं है। यह प्रत्येक का अधिकार है कि वह इन विद्वानों की विद्वत्ता का लाभ अपने हित के लिए उठावे। इस सभा के संगठन का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। यह आप सभी के लिए और सभी स्थानों के लिए है। इसी सभा के कार्य-कलाप के सम्बन्ध में मैंने अभी हाल में पूर्व और पश्चिमी गोदावरी के जिलों की तथा अनेक स्थानों की यात्रा की थी। लाखों लोग, जो इन सभाओं में उपस्थित होते थे उनके विजयोल्लास और भक्ति से सराबोर होकर यह आनन्द की यात्रा के समान थी। जो लोग मुझे सुनने आते थे उनका सनातन धर्म के संदेश को सुनने का उत्साह, मेरे साथ गये हुए लोगों के लिए एक प्रेरणा का महान स्रोत सिद्ध हो रहा था। वे दृश्य, कृतयुग, त्रेता और द्वापर के से लग रहे थे, कम से कम कलियुग में तो ऐसी कभी आशा भी नहीं की जा सकती थी। हम लोगों के सामने श्रीमद्भागवत के दृश्य सजीव हो उठे थे। एक स्थान

पर एकत्रित भीड़ को बिठाने के लिए १२ एकड़ भूमि का टुकड़ा भी अपर्याप्त था। एक दूसरे स्थान पर प्रत्येक वृक्ष की शाखें और तना साहसी स्रोताओं का आश्रम बन गये थे। यह सभी चिह्न संकेत करते हैं कि धर्म की पुनरस्थापना की घड़ी सन्निकट है।

इस अवसर का पूर्ण सदुपयोग कर लेने का आपका दृढ़ संकल्प होना चाहिये। आप निकट हैं और वे भी जो व्यवधान की दृष्टि से दूर है, नाकि मेरे प्रेम की दृष्टि से। भगवद्दर्शन हेतु आप कठिनाइयों का, कष्टों और परीक्षाओं का स्वागत कीजिये। विश्वास के साथ नाम और रूप का ध्यान करते रहो। आनन्द प्राप्ति के सभी निम्नकोटि के साधनों का त्याग कर दो। जब एक पुत्र का जन्म होता है तो साथ ही नई चिन्ता का भी जन्म होता है—यह कि वह स्वस्थ और पवित्र रहे, विद्वान और दयालु, प्रसिद्ध और विनम्र बने, जिससे मातापिता और बड़ों का नाम ऊँचा होवे। वास्तव में तो मैं आप सभी को यही परामर्श देना चाहता हूँ कि पुत्र जन्मोत्सव मनाना उस समय तक के लिए स्थगित रक्खें जब कि वह परिवार के लिये सत्कीर्ति अर्जित करे। और देश का नाम ऊँचा करे। इसी प्रकार जब संचित धन का उपयोग न्यायपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रेय और लोक-कल्याण के लिए होवे तभी उसका उत्सव मनाया जावे। जब वृक्ष में सुगन्धित पुष्प और फल लगते हैं तभी उसका अस्तित्व सफल माना जा सकता है। इसके प्रतिकूल यदि पत्तियाँ सूख जावें, फूल मुर्भा जावें और फल भी न आवें तो कृषक अवश्य उस वृक्ष की जड़ों की परीक्षा करेगा और देखेगा कि अवश्य ही उन जड़ों को बीमारी के कीटाणुओं और दीमक ने खा डाला होगा। इसी प्रकार यदि मानव अपने सद्‌गुणों का विकास नहीं करता है और उसमें मीठे फल नहीं लगते हैं, तो यह मानना चाहिए कि उसमें दैवत्व की जड़ें अवश्य ही मृतप्राय अथवा नष्ट हो गई होंगी। ईर्ष्या, लोभ और द्वेष—यही बीमारी के कीटाणु उन दैवत्व की जड़ों को शीघ्रता से नष्ट कर डालते हैं।

खाने-पीने की आदतों में संयम और सुधार कर लेने से व्यक्ति अपने आध्यात्मिक जीवन का शिलान्यास कर सकता है। इसके लिए सात्विक भोजन को राजसिक भोजन पर वरीयता देनी चाहिए। नशीली पेय (तरल और वायव्य दोनों रूपों में) वस्तुओं से मनुष्य अपनी मनोभावों और इच्छा से उत्पन्न तीव्र वेगों पर कोई अधिकार नहीं रख पाता है। उसकी वृत्तियाँ वाणी, गतिविधियां और आदतें जंगली पशुओं के स्तर तक गिर जाती हैं। मांस भोजन से मनुष्यों में तीव्र उद्वेग, पाशविक बीमारियां और स्वभाव उत्पन्न हो जाते हैं। जब व्यक्ति राजसिक भोजन का स्वाद लेने लग जाता है तो उसका मस्तिष्क शीघ्रता से भोगों की ओर आकर्षित होने वाला और अविवेकी हो जाता है। यदि तामसिक भोजन को बड़े स्वाद से खाया जाता है फिर तो मस्तिष्क और मन को सुधारने की संभावना ही समाप्त हो जाती है। राम-तत्व में निरन्तर मग्न रहने के लिए व्यक्ति को अपने खाने-पीने के मामले में सदा सावधान रहना चाहिए। और ऐसा ही मानसिक भोजन के संबंध में भी विवेक करना चाहिए।

"राम" शब्द का अर्थ है "जो प्रसन्नता देता है" "जो आनन्द से पूर्ण कर देता है" अतः रामतत्व मूलतः आनन्द-तत्व ही है। वही तो प्रत्येक हृदय के लिए आनन्द का निर्भर है। इसीलिए जब आप राम नाम का उच्चारण करते हो तो उसी आनन्द श्रोत, आत्माराम को उद्वेलित करते हो। जैसे आप यहां पर विभिन्न ग्रामों, नगरों से विभिन्न मार्गों से एकत्रित हुए हो, सभी को उसी श्रोत तक पहुँचना है जहां से आनन्द की प्राप्ति हो; बिना ऐसा किये शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

रामनवमी, प्रशान्ति निलयम्
१९-४-६५

—०—

५

आनन्द का फव्वारा

आज बड़ा पवित्र दिवस है। आज ही के दिन हम उन्हीं व्यास का, जिन्होंने मानव जाति को सगुणोपासना का बहुमूल्यरत्न और यह आश्वासन, कि मानव माधव, नर नारायण, जीव ब्रह्म बन सकता है, दिया है, सम्मान करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र वह पाठ हैं जिन में ऐसे उच्च सिद्धान्तों का निरूपण किया है।

मनुष्य उसी पदार्थ के दो अवयवों, माया-माधव, मोह और राम, देह-देही, जड़-चेतन, शरीर-शारीरी, जीव-ब्रह्म का अपूर्व सम्मिश्रण है। चक्की के दो पाटों की तरह ब्रह्म स्थिर रहने वाला और जीव घूमने वाला है। स्थाई पाट आधार और घूमने वाला 'आश्रित' है। गुरु वह ज्ञानदाता है जो उस मौलिक अज्ञान को दूर करता है जिससे कि यह सत्य हमारी आंखों से ओझल रहता है। पूर्णिमा का ही दिन उन गुरुदेव की पूजा और सम्मान के लिये निर्धारित किया गया है। क्योंकि ज्ञान के प्रभाव से ही मानव की ताप और पीड़ाओं को शान्त कर उसके मस्तिष्क में शान्ति की शीतल वायु के झोंके प्रवेश कर आनन्द वर्षा करते हैं। व्यास को नारायण स्वरूप ही मानकर श्रद्धा-भक्ति प्रदान की जाती है, क्योंकि ईश्वर के बिना ऐसा दिव्य ज्ञान कौन दे सकता है? यदि परिवार के प्रति आपकी निष्ठा है तो आप परिवार सेवक हैं यदि भगवान् के प्रति आपकी निष्ठा है तो आप भगवान के सेवक हैं। परन्तु आप उस वेतन की ओर ध्यान मत दीजिये जो भगवान् देते हैं। पुरस्कार अथवा पारिश्रमिक के लिए तर्कवितर्क मत कीजिए। केवल भाड़े के मजदूर ही गरीबी की बात को उछाल कर मजदूरी बढ़ाने या सौदाबाज़ी

करते हुए झगड़ते हैं। एक परिवार के सदस्य, अथवा संबंधी की हैसियत से, ईश्वर के पार्षद बन कर रहने से, ईश्वर भी आपको सुख-सुविधा से रखेगा। और सदा आपका ध्यान आपके संबंध की दृष्टि से रखेगा। ईश्वर के उतने ही समीप जाओ, जैसे कि संबंधी या परिवार के सदस्य रहते हैं उनके निकटतम भक्त रहते हैं एक वेतन भोगी की भाँति उन घंटों और दिनों की गणना मत करो जो आप भगवान की सेवा में अर्पित करते हो; और न इसके लिये चिन्ता या शोक करो कि अभी तक भगवान ने आपको उचित और पर्याप्त वेतन अथवा पुरस्कार नहीं दिया है। सदा सर्वदा उसी भगवान् की सेवा में रहो, अर्थात नेकी करते हुए नेक बने रहो।

कर्ण जानते थे कि मृत्यु तो पास ही किसी कोने में छिपी हुई है, इसीलिए जब कोई उनसे कुछ याचना करने आता था; फिर वह कितनी ही बड़ी वस्तु की याचना क्यों न होती; वे तत्क्षण उसे सन्तुष्ट कर देते थे और बिलम्ब नहीं करते थे; क्योंकि वे कहते थे, "मेरा विचार बदल सकता है मेरे जीवन का अन्त हो सकता है।" लोग अगले दिन जब भी परस्पर भेंट करते हैं एक दूसरे की "क्षेम-कुशल" पूछते हैं। प्रतिभाषी भी उसी सद्‌भावना से कहता है, "बहुत अच्छी तरह; आपका धन्यवाद है, आपकी कृपा है", इस बात का उन्हें लेशमात्र भी ध्यान नहीं रहता है कि उनकी अमूल्य जीवन अवधि में से एक दिन बीत गया है। क्षेम है कहाँ ? उसकी आयु तो "क्षीण" हो गयी है। इसलिए उठो और शेष जीवन का सर्वोत्तम प्रयोग कर डालो।

गुरु ही वह व्यक्ति है जो यह अनुभव कराता है कि आप भटक कर एक गलत मार्ग पर जा पड़े हैं; और यह मार्ग आपको अधिकाधिक गहन अंधकार की ओर ले जा रहा है। क्यों कि उन्हें सही मार्ग का ज्ञान है, और जो लोग रात्रि की विभीषिका से बिना दीपक के आलोक से बच निकलना चाहते हैं उनके प्रति गुरु के हृदय में प्रेम और सहानु-

भूति होती है। आज ही के दिन प्रथम गुरु का कृतज्ञता और आदर-पूर्वक स्मरण किया जाता है। उसे "नारायण" कहा जाता है। क्योंकि नारायण ही तो एक वास्तविकता है, यदि आपको कहीं बाहर से गुरु नहीं प्राप्त होता है और आप सच्चे मन से प्रार्थना करोगे तो आपके अंतःकरण में स्थित "नारायण" ही आपको सही मार्ग दिखाकर आपका पथ-प्रदर्शन करेगा। अंतःकरण के गुरु को सदा बाहरी गुरु पर वरीयता देनी चाहिए क्योंकि अनेक बाहरी व्यक्ति, जो गुरु के महान पद के लिए दावा करते हैं, स्वयं ही भौतिक पदार्थों से प्राप्त होने वाले झूठे आनन्द के लोलुप होते हैं, ईर्ष्या लोभ और द्वेष के शिकार होते हैं। गुरु के अर्थ "भारी" भी होते हैं। बहुत से व्यक्ति तो भौतिक अर्थ में ही स्थूलकाय, भारी-भरकम होते हैं, उनमें आध्यात्मिक उच्चता नहीं होती।

यदि अपना भवन आलोकित करने के लिए पावर हाउस से आपको विद्युत-धारा लाना ही है तो आपको नियमित अन्तर पर जगह-जगह लौह स्तंभ खड़े करके अपने घर से लेकर पावर हाउस तक विद्युत के तार फैलाने ही होंगे। इसी प्रकार यदि आपको प्रभु-कृपा प्राप्त ही करना है तो नियमित रूप से निश्चित समय पर साधना करके प्रभु स्मरण के तार से स्वयं को प्रभु से संयुक्त करना ही पड़ेगा।

चार्वाक का तर्क था कि नौ नकद न तेरह उधार। उनका कहना था कि जो आनन्द आज और अभी वर्तमान में प्राप्त कर सकते हैं उसका त्याग भविष्य की कल्पित सुख प्राप्ति की आशा में क्यों किया जावे। परन्तु त्याग का आनन्द तो वर्तमान में आज और अभी ही भोगा जा सकता है। यह आनन्द अधिक स्थायी प्रेरणाप्रद होता है; उस आनन्द की उपेक्षा जो आसक्ति और भक्षण द्वारा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियों के स्वामी होने में एक विशेष आनन्द होता है जो कि

इन्द्रियों की दासता में कभी नहीं प्राप्त होता है। इस समय आप काफी और चाय की आदत के दास हैं। दृढ़ संकल्प कीजिए कि आगामी ३ दिन तक आप अपनी उपर्युक्त आसक्ति का परित्याग रखेंगे; आप स्वामी बन जाइये जिह्वा आपकी दासी हो जावेगी। काफी का अब आप पर कोई प्रभुत्व नहीं रहेगा। यदि काफी से कहीं आनन्द प्राप्त होता, तो सभी को समान रूप से इस पेय से आनन्द प्राप्त होना चाहिए। परन्तु कुछ लोग चाय अधिक पसन्द करते हैं और कुछेक को तो यह अरुचिकर प्रतीत होती है। कुछ लोग तो बिना शक्कर की और बिना दूध की चाय में आनन्द प्राप्त करते हैं। इसीलिए यह मन ही तो है जो आनन्द देता है, न कि कॉफी। यह बाह्य पदार्थ इन्द्रियों को आनन्द नहीं प्रदान करते हैं।

रहस्य की बात तो यह है कि आनन्द के स्रोत की अपने अन्दर ही खोज करो। वह स्रोत, कभी असफल न होने वाला, सदापूर्ण, सदाशीतल फव्वारा की भांति है। क्योंकि यह तो भगवान से उद्भूत होता है शरीर क्या है ? यह तो पाँच कोषों में आत्मा को आवृत किए हुए है; यह पंच कोष—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय हैं जोकि क्रमश: भोजन से निर्मित, जीवनी शक्ति से निर्मित, विचारों से निर्मित, बुद्धि से निर्मित और आनन्द से निर्मित हैं। इन पाँचों कोषों या आवरणों का निरन्तर चिन्तन करने से साधक में विवेक जग जाता है जिससे वह बाह्य से अन्तर की ओर गतिशील हो जाता है, जो उत्तरोत्तर अधिक सत्य होता है। इस प्रकार वह क्रम-क्रम से कोषों को त्यागता हुआ अंततोगत्वा सभी को त्याग कर ब्रह्म से अपने एकत्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

आप में से अधिकांश ने मुझको इन्हीं की चर्चा करते हुए अनेक बार सुना है। प्रति वर्ष सुनते आ रहे हो। परन्तु, अत्यन्त अल्प संख्या में

लोग साधना के प्रथम सोपान पर पैर रखते हैं। आप यही चाहते हैं न, कि मैं बोलता रहूँ आप उसे लेखबद्ध करते रहें अथवा मैं जो कुछ कहता हूँ वह केवल बार-बार पढ़ने के लिए ही होता है। परन्तु इस पर आचरण न करने से सब व्यर्थ हो जाता है। आप चाहे जितनी बड़ी-बड़ी बातें करें परन्तु आपका मूल्यांकन आपकी वाणी से नहीं, अपितु आपके कार्य और भावनाओं से किया जाता है। एक बार एक महिला ने सम्पूर्ण भागवत के पाठ को सुना और जहाँ तहां से कुछ उद्धरण भी कंठस्थ कर लिये अब उसे पानी लाने में भी बड़ी सुस्ती लगने लगी और वह प्रातः बहुत देर से उठने लगी। जब उसके पति ने झिड़का तो वह एक श्लोक का उद्धरण देती जिसका आशय था कि व्यक्ति के अन्दर ही गंगा, जमुना, सरस्वती जैसी पवित्र नदियाँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के रूप में विद्यमान हैं। पति उसकी गुस्ताख़ी और बनावटी आध्यात्मिक स्थिति से बड़ा खिन्न हुआ। उसने पत्नी को अत्यधिक नमक पड़ा भोजन जुटाया और घर में से पानी के सभी बर्तन हटवा दिये। जब वह घोर पिपासा से व्याकुल हो गयी और भग्न होकर पानी-पानी चिल्लाने लगी, तो पति ने वही श्लोक सुना दिया और कहा कि अपने अन्दर की गंगा, जमुना और सरस्वती जैसी पवित्र नदियों का जल ग्रहण कर लो। याद रखिए आध्यात्मिक मामलों में पाखण्ड और दोहरे व्यवहार की गुंजाइश नहीं होती। आपको सीधे, तंग मार्ग पर सत्य और प्रेम के मार्ग-दर्शन से आगे बढ़ते जाना है; यही आपके साथी भी हैं।

तरुण युवक विदेशों में जाते हैं। उनके वृद्ध माता-पिता को चिन्ता लगी रहती है कि न जाने उस देश की विचित्र सभ्यता में उनका पुत्र वहाँ के आकर्षणों के प्रति क्या व्यवहार करता होगा। पिता आग्रहपूर्वक पुत्र को लिखता है, समझाता है और आग्रह भी करता है कि वह पारिवारिक भोजन और पेय की परम्पराओं और स्वभाव को वहाँ भी बनाये

रक्खे। पहले ही की तरह पूजा-पाठ भी करता रहे। पुत्र की आँखें यह सब पढ़कर आँसुओं से भर जाती हैं। वह पत्र को छाती से लगाता है और वह बातें वहीं समाप्त हो जाती हैं। वह आकर्षणों के आगे नत-मस्तक होकर फिसल जाता है। इस प्रकार उस कागज का, जिस पर पत्र लिखा गया था, सम्मान किया जाता है परन्तु उस पत्र में लिखित भाव और विचारों को कोई मान्यता नहीं दी जाती है। आजकल पवित्र, धार्मिक पुस्तकों की भी इसी प्रकार पूजा और आरती की जाती है, उन पर पुष्प, मिष्ठान्न समर्पित किये जाते हैं, उनका बड़े मान-सम्मान से जलूस भी बाजे-गाजे से निकाला जाता है। परन्तु जहाँ तक उनके पाठ और उपदेशों के समझने और आचरण करने का प्रश्न है; यह सब अधिकाँश लोगों के लिए एक असंभव कार्य होता है।

मैं आपको एक बात और बता दूं, जो यह पुस्तकें बतलाती हैं और जिसके पालन के लिए मैं आपसे आग्रह भी करता हूं कि इस गुरुपूर्णिमा से आप करने लगे, वह यह है कि आप पर छिद्रान्वेषण करना बन्द कर दीजिये, परदूषण और पर हिंसा भी। किसी की निन्दा के लिए मुंह न खोलिये किसी से ईर्ष्या-द्वेष भी मत कीजिए। सदा मृदु स्वभाव बनाये रखिये और मृदुवाणी बोलिये। आपका संभाषण भक्ति और विनम्रता से सदा परिपूर्ण रहे।

आप प्रेम के लिए, प्रेम में, प्रेम से रहिये। तब परमात्मा, जो प्रेम स्वरूप है, आपके बिना माँगे ही आपकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहेगा। वह जानता है, वह तो ऐसी मां है कि जो बच्चे के रोकर दूध मांगने की प्रतीक्षा नहीं करती कि रोने पर ही बच्चे को दूध पिलावे। उसका प्रेम तो इतना विस्तृत और गहन है कि वह आपकी प्रत्येक आवश्यकता की कल्पना पहले ही से कर लेती है और आपकी उचित सहायता के लिये भाग कर आती है। आप सभी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर

रहे हैं कि मैं कब से साक्षात्कार के लिये भेंट करना प्रारम्भ करूंगा जिससे आप अपनी-अपनी अभिलाषाओं की लम्बी सूची जो आप साथ लाये हैं मुझे दे सकें। एक की पूर्ति आगे की नयी श्रेणी के लिये मार्ग खोल देती है। यह इच्छायें तो सदा बढ़ती ही रहती हैं, उनका कहीं अन्त नहीं है। उस स्थिति पर पहुँचने की कल्पना और प्रयास कीजिये जबकि केवल प्रभु की इच्छा पूर्ण होने की प्रार्थना की जाती है और अपने को उसी के हाथों में यन्त्रबत् प्रयोग करने के लिए समर्पित किया जाता है।

कानों को तो परनिन्दा सुनने में रस आता है। उन्हें तो अच्छाई या प्रशंसा सुहाती ही नहीं। वे तो तब जकड़ जाते हैं और उनकी बुरी दशा हो जाती है। सुनना भी तो कई प्रकार का होता है। मिट्टी की तरह, जो पानी पड़ने से मुलायम हो जाती है। जब पानी सूख जाता है तो वह पुन: कठोर और दृढ़ हो जाती है। मस्तिष्क भी धार्मिक प्रवचन सुनकर कोमल हो जाता है; परन्तु जब आपको कुछ समय बीत जाता है आप पुन: पूर्वस्थिति में आ जाते हैं। दूसरा प्रकार कौआ की तरह होता है जिसे आप कितना ही उपदेश गन्दी आदतों को छोड़ने का दें और काँव-काँव के स्थान पर मृदु-गान का पाठ पढ़ावें, वह न तो प्रयास करेगा और न सुधरेगा ही। वह पहले की तरह कठोर रुक्ष स्वर से काँव-काँव ही करता रहेगा। तीसरा मच्छर के प्रकार का होता है, जो कि आपको बाध्य करके तब भी सुनाता रहता है जबकि आप एक घन्टा शान्तिपूर्वक बैठना चाहते हों। इसे शू-शू करके भगाया नहीं जा सकता; यह तो बारम्बार आक्रमण करता है और आपको कष्ट देने में ही आनन्द का अनुभव करता है। ऐसी निम्नकोटि की इच्छाओं की पूर्ति मत किया करो। ऐसे "सुनने" को सीमित और संयमित करना ही चाहिये। गोपियाँ केवल कृष्ण-कीर्ति ही सुनना चाहती थीं, वे कृष्ण के मनोहर रूप की चर्चा, कृष्ण की लीलायें, कृष्ण के कौतुक, कृष्ण के

ही कार्य—चाहे वे छोटे हों या बड़े, कृष्ण की उपलब्धियाँ और उन्हीं के सम्बन्ध में सुनना चाहती थीं, अन्य कुछ भी नहीं। ब्रह्म के सम्बन्ध में भी नहीं।

जब आप कृष्ण-प्रेम से भर जावेंगे तो 'सारूप्य' और 'सायुज्य' प्राप्त कर लेंगे। आप पूर्णत्व की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहिये, इससे कम विजय पर सन्तुष्ट नहीं होना है।

गुरुपूर्णिमा प्रशान्ति निलयम्
१३-७-६५

—०—

६

पहला कदम

मनुष्य को स्मृति और विस्मृति दोनों ही प्रदान की गयी हैं। यह दोनों क्षमतायें बड़ी उपयोगी हैं। कदाचित विस्मृति की शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्यथा मनुष्यों को अपने असंख्य जन्मों के माता-पिता, सम्बन्धियों के लिए सदा शोकमग्न रहना पड़ता। इसी जन्म में जो कष्ट और अपमान उसने भोगे हैं उन्हें वह स्मरण रखते हुये सदा क्षुब्ध रहेगा। सौभाग्य से वह बहुत कुछ भूल जाता है। वह केवल उन्हीं बातों को स्मरण रखता है जिन्होंने उस पर गंभीर प्रभाव डाला है; जो उसके लिये महत्त्वपूर्ण या मार्मिक होती है। उदाहरण के लिये, अपने विवाह की तिथि, अपने देनदार व्यक्तियों के नाम और धनराशि इत्यादि। महान दुःख की बात तो यह है कि वह अपने इस पार्थिव जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण और मार्मिक तथ्य—आनन्द और मोक्ष की चाबी, अपना वास्तविक नाम और स्वरूप, को ही भूल गया है।

'मनुष्य स्वयं क्या है और यहाँ किस उद्देश्य को लेकर जन्मा है' इसको भुलाने से ही तो यह दुर्गति है। उसे "कस्त्वं, कोऽहम्, कुत आयातः" तू कौन है ? मैं कौन हूं ? कहाँ से आया हूं ? कहाँ जा रहा हूं ? इस सब परिवर्तन और गति का क्या अर्थ है ? कहीं स्थाई स्थान, स्थाई लक्ष्य और इस सबका निर्देशक, संचालक कौन है ? शंकराचार्य ने इन्हीं प्रश्नों की जिज्ञासा की थी। इन प्रश्नों को मनुष्य के मस्तिष्क से निकाल कर एक ओर नहीं किया जा सकता। जब भी प्रकृति में मनुष्य को कुछ भव्य, महान और भयोत्पादक दृश्य दिखाई देता है ये

प्रश्न उसके मन में एकान्त में बरबस उठते हैं; और उसे आक्रांत करते हैं। वह जब किसी भयंकर दुर्घटना का शिकार हो जाता है; उसे यह सब विचार उठते ही हैं। इन बहुमूल्य क्षणों को भुला देना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है; परन्तु प्रायः होता यही है कि लोग यह सब भुलाकर पुनः दुनियाँ के ढोल-ढमाकों की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उन आदि मौलिक जिज्ञासाओं को संतुष्ट करने का कोई प्रयास नहीं करते हैं।

परन्तु, मनुष्य भूल जाता है, जानबूझ कर उपेक्षा भी करता है। वह अवास्तविक को सत्य समझ बैठता है। वह बाह्याकृति से धोखा खा जा जाता है वह पर्दे के पीछे झाँक कर नहीं देखता है। वह अपने को तथा और लोगों को गलत मार्ग पर ले जाता है। वह शून्य को एक और कपास को दही समझ बैठता है क्योंकि दोनों ही सफेद होते हैं। परन्तु उनके गुण और प्रभाव में कितना अन्तर है ? शिशु अपना अंगूठा ही चूस कर असीम आनन्द और सन्तोष प्राप्त करता है; परन्तु हम जानते हैं कि इसमें न कोई स्वाद है, न मिठास। अंगूठा मुंह में से निकाल देने पर शिशु रोने लगता है। शिशु के द्वारा अँगूठे पर मिठास अध्यारोपित की गयी थी। इसी प्रकार दुनियाँ से जो आनन्द कोई प्राप्त करता है वह दुनियाँ की प्रकृति में ही नहीं है, वह तो केवल भोक्ता द्वारा आरोपित है। जो आनन्द आत्मा प्राप्त कर सकती है, यह उसी का एक प्रतिबिम्ब या परछाईं सांसारिक भोगों में पड़ने से प्रतीत होती है। आनन्द का स्रोत अथवा लक्ष्य आत्मा स्वयं है। शिशु अंगूठे को एक बाहरी, अपने से पृथक, पदार्थ मानता है जो उसे आनन्द प्रदान करता है वास्तव में वह अंगूठा शिशु का ही अँग है।

गुरु चेतावनी भी देता है और जगाता भी है। वह सत्य को प्रकट करता है और आपको उसकी ओर अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहित भी

करता है। जब तक आप में, जिज्ञासु हृदय, अभीप्सा और खोजी बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है, वह गुरु बहुत कुछ नहीं कर सकेगा। भूखे को खिलाया जा सकता है; जो भूखा नहीं है वह भोजन को एक बलात्कार मान कर त्याग देता है। गुरु एक माली है जो पौधे का पालन और देख-रेख करता है, परन्तु अंकुरण निकल आने के बाद ही तो उसका कार्य प्रारंभ होता है। वह पौधे में कोई नवीन वस्तु नहीं प्रविष्ट करता है; वह तो पौधे की अपनी भवितव्यता के अनुसार उगने में सहायता मात्र करता है; शायद शीघ्रता पूर्वक, शायद पूर्णत्व के साथ, परन्तु उसकी आन्तरिक प्रकृति के प्रतिकूल नहीं। मनुष्य की अपनी सत्ता में जो कोष गड़ा हुआ है उसकी ओर ध्यान आकर्षित करके वह उसकी दरिद्रता को दूर हटा देता है। वह उसे पुनः प्राप्त करने के ढंग का परामर्श देता है और वही उसे उस सतर्कता की शिक्षा देता है कि जिसके साथ उक्त धन को सर्वोत्तम ढंग से सर्वाधिक हित में प्रयोग किया जावे।

एक बार एक व्यक्ति घोर कंजूसी से पीड़ित था। वह किसी दशा में भी नकदी को अलग नहीं करता था। परन्तु जब उसका पिता मर गया तो उसे सिर मुंडवाना पड़ा, जिससे शास्त्र और जनमत की तुष्टि हो सके। नाई ने जो अपना पारिश्रमिक मांगा वह कंजूस के लिये असंभव और अदेय था अन्त में बड़ी सौदेबाजी के बाद एक पैसा ठहराया गया। परन्तु कंजूस इस पर भी नहीं माना और कहा कि एक पैसे में दो सिर मूंड़ना चाहिए। नाई इस पर भी सहमत हो गया। नाई को कुछ ऐसा अनुमान था कि कदाचित् दिवंगत के एक ही पुत्र है। अतः उसके अस्तुरे के लिये कोई दूसरा उम्मीदवार ही न होगा। परन्तु कंजूस ने, जब उसका सिर मूँडा जा चुका था तो, अपनी पत्नी को बुलाया और आग्रह किया कि उसे भी मूँडा जावे तभी दाम चुकाया जावेगा। कुछ मूर्ख लोगों पर धन का ऐसा ही सम्मोहन होता है। व्यक्ति को पग-पग पर अनासक्ति का अभ्यास प्रयास पूर्वक करना चाहिए अन्यथा लोभ

और कंजूसी उसकी उच्च प्रवृत्तियों को धर दबोचते हैं। यह उच्च प्रवृत्ति दैवी है क्योंकि भगवान् ही तो वह मौलिक तत्त्व है कि जिसकी एक किरण ही मनुष्य के नाम रूप में प्रकाशित होती है। इसका अनुभव तभी हो सकता है यदि व्यक्ति साधना-चतुष्टय का अभ्यास करे। वह साधना चतुष्टय (१) नित्यानित्य विवेक (परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तन शील को विवेक द्वारा समझना, स्थाई और अस्थाई को जानना), यह संसार अथवा जगत सतत् परिवर्तनशील है और केवल ब्रह्म ही अपरिवर्तनशील है। (२) लौकिक, पारलौकिक सुखों और भोगों से वैराग्य, क्योंकि उभय लोक के यह सुख विनाशवान और दुःख मूलक हैं और अन्त में शोक प्रदान करने वालें हैं (३) समदमनादि षट सम्पत्ति— छै वांक्षनीय योग्यताओं, बाह्याभ्यंतरिक इन्द्रियों को प्रेरणाओं को वशीभूत करना, सुख-दुःख जय-पराजय में साहस रखना, उपरति उन सभी क्रियाओं से जो व्यक्ति को बाँधने वाली हो, दूर रहना। श्रद्धा, गुरु और उन शास्त्रों में अडिग विश्वास जिन्हें गुरु समझते हैं। (४) समाधानम्, विचार की अन्य तरंगों से अविचलित रहते हुए आदि शक्ति ब्रह्म का विचार करते रहना। यद्यपि गौ के समस्त शरीर द्वारा दुग्ध का उत्पादन होता है, आपको तो चारों थनों से ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार इन साधना चतुष्टय के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

यह जगत अवास्तविक है इस तर्क से कि स्वप्न भी अवास्तविक होता है। आप यहाँ मंदिर के बरामदे में सोते हैं और काशी में गंगा स्नान का स्वप्न देखते हैं। आपको शीतल, सुखद स्पर्श का, दिव्यता का अनुभव भी होता है। उस क्षण में यह परम सत्य लगता है। परन्तु आप वास्तव में कब गये ? आप कैसे गये और आये ? ज्ञानी आप से जागृत जीवन के अनुभवों के सम्बन्ध में भी इन्हीं प्रश्नों को पूछते हैं।

यहां पर आपको मुझे एक बात अवश्य बता देनी चाहिए। कौन से स्वप्न वास्तविक होते हैं ? ईश्वर सम्बन्धी स्वप्न सत्य और वास्तविक होते हैं। आप मुझे स्वप्न में देखते हैं मैं आपको नमस्कार करने देता हूँ, आपको आशीर्वाद देता हूँ, कृपा करता हूँ......यह सब सत्य है। यह सब मेरी इच्छा और आपकी साधना के कारण होता है। यदि भगवान् अथवा आपके गुरु स्वप्न में प्रकट होते हैं तो यह संकल्प के कारण होता है न कि स्वप्न लाने वाले अन्य कारणों से आपकी इच्छा मात्र से ऐसा कभी नहीं हो सकता।

अपने स्वभाव में, आचरण में सुधार करके इच्छाओं में कमी करके और अपनी उच्च प्रकृति में उठकर, प्रभु कृपा प्राप्त करने का उद्योग करो। एक कदम अगले कदम को सरल बना देता है। आध्यात्मिक यात्रा की यही तो उत्तमता है। पग-पग पर आपकी शक्ति और विश्वास बढ़ते ही जाते हैं और आपको प्रभु कृपा की बड़ी से बड़ी किश्तें प्राप्त होती जावेंगी। एक बार एक बड़ा ही दुष्ट व्यक्ति था उसे घटना प्रसंगवश किसी धार्मिक प्रवचन ने बड़ा प्रभावित किया। वह एक महान् संत के पास गया और वहाँ अपने को शिष्य रूप में अर्पित किया। संत ने उससे पूछा कि अभी तक उसने अपना जीवन किस प्रकार बिताया, उसका उत्तर था, "मैं दिन में जूआ खेलता और रात को घरों में चोरी के लिए सेंध काटता था। मुझे असत्य भाषण में रात-दिन आनन्द आता रहा है।" सन्त ने कहा कि, "मैं तुम्हें अपना शिष्य तभी बना सकता हूँ यदि तुम इन तीनों में से कम से कम एक को तो मेरी कृपा प्राप्त करने की दक्षिणा के रूप में त्याग दो। तुम्हें कुछ तो त्याग करना ही होगा।" उस मनुष्य ने कहा, "मैं जूआ खेलना तो छोड़ नहीं सकता यह तो इतना उत्तेजक है कि बस कुछ न पूछो। सेंध मारना भी मैं नहीं छोड़ सकता, क्योंकि रोजी-रोटी कमाने का मुझे यही एक धन्धा आता है। अच्छा मैं झूठ बोलना छोड़ दूँगा।" इसलिए उसने प्रतिज्ञा

की कि वह भविष्य में कभी झूठ नहीं बोलेगा। संत को प्रसन्नता थी कि शिकार फंदे में फँस गया है, अब बचकर बाहर नहीं जा सकता।

उस रात्रि को उस व्यक्ति ने राजमहल में ही सेंध लगाने का निश्चय किया। उसने पहरेदारों को बुत्ता दिया और मुंडेर पर चढ़कर छिपे-छिपे सिरे पर दीवाल के सहारे रेंग रहा था। जबकि किसी ने ललकार कर पूछा "कौन जा रहा है।" उसने सत्य कह दिया, "मैं चोर हूं तुम कौन हो।" जिस, व्यक्ति ने ललकारा था वह खुद राजा ही था, वह मुंडेर पर बाहर निकला था क्योंकि सुहावी वायु चल रही थी। उसने उत्तर दिया "मैं भी चोर हूं।" उन्होंने मिलकर कार्य करने और लूट का माल आधा-आधा बाँट लेने का निश्चय किया। चोर ने प्रस्ताव किया कि शाही खजाने में सेंध लगायी जावे। नया साथी जानता था कि चाबियाँ कहाँ रक्खी हैं। इसलिए वह अँधेरे में अदृश्य हो गया और कुछ देर बाद चाबियाँ ले आया। वे दोनों कोषागार में घुस गये और लूट के माल को आधा-आधा बाँट लिया। परन्तु वहाँ उन्हें ३ बड़े-बड़े और सुन्दर हीरे भी मिले। राजा ने एक लिया, चोर ने भी एक ले लिया, तीसरा वही रक्खा रहने दिया। दोनों इस पर सहमत हो गये थे। चोर ने कहा, "अभागे राजा को संतोष करने के लिए एक तो छोड़ दिया जावे क्योंकि उसका तो सभी धन जा रहा है।" अन्त में राजा ने विदा होते-होते चोर से एक प्रश्न पूछ ही तो लिया। "तुम रहते कहाँ हो।" चोर, जिसने असत्य बोलना त्याग दिया था, अपना पता ठीक-ठीक बता दिया।

अगले प्रातःकाल नगर भर में यह खबर बिजली की तरह फैल गयी कि शाही खजाने में चोरी हो गयी है। राजा ने मुख्य मंत्री को खज़ाने में चोरी गयी संपत्ति और अवशिष्ट का ब्यौरा ज्ञात करने के लिए भेजा। उसने देखा संदूक और तिजोरियां खुले पड़े हैं, सभी सामान

और पात्र अस्त-व्यस्त पड़े हुए हैं। उसे एक बड़ा सा हीरा भी मिला, उसने सोचा कि संभवतः यह चोरों की नजर से छूट गया है। उसने इसे अपनी जेब के हवाले करके कुछ देर वहाँ बिता कर दरबार में लौट कर राजा को सूचना दी। कोषागार का दृश्य और हानि का विवरण निवेदन किया। राजा ने पुलिस को आज्ञा दी कि सभी ज्ञात चारों को उसके समक्ष उपस्थित किया जावे। इसमें उस चोर का पता भी शामिल कर दिया जो वह दे गया था। वे सब उपस्थित किये गये, परन्तु राजा ने एक विशिष्ट व्यक्ति से ही पूछताछ की। उसने प्रकट कर दिया कि उसने तथा एक और व्यक्ति ने, जो पहले ही राजमहल में प्रवेश कर चुका था, मिलकर लूट के माल को आधा-आधा बांट लिया था जोकि उन्हें गत रात्रि को शाही कोषागार से प्राप्त हुआ था। राजा ने हीरों के विषय में पूछा। उसने कहा कि तीन में से एक तो वहीं छोड़ दिया गया था; और शेष दो को उन्होंने एक-एक आपस में बांट लिया था। उसने तो सत्य भाषण की प्रतिज्ञा ही करली थी। राजा जानता था कि तीसरा हीरा अवश्य ही मुख्य मंत्री ने ले लिया होगा, इसलिए उसने भरे दरबार में मुख्य मंत्री का झाड़ा लिया। कहना व्यर्थ है कि यह हीरा उसकी जेब से बरामद हुआ और इस प्रकार मुख्य मंत्री एक अविश्वसनीय व्यक्ति सिद्ध हो गया। राजा ने तत्काल वहीं उसे बर्खास्त कर दिया और चोर को उसके स्थान पर मुख्य मंत्री नियुक्त कर दिया।

अब चूंकि वह मुख्य मंत्री बन गया, चोर ने चोरी करना त्याग दिया क्योंकि अब तो उसे रोजी-रोटी की चिन्ता नहीं रह गयी थी; उससे कहीं अधिक आय उसे अपने वेतन से ही हो जाती थी। इतने बड़े पद का कार्य करने पर उसे अब जूआ खेलने का अवसर ही नहीं मिल पाता था। अब वह दक्ष और ईमानदार मुख्य मंत्री के रूप में विख्यात हो गया। नगर से आने वाली खबरों में उसकी दक्षता की कहानियाँ

सुन-सुन कर अब गुरु को भी नगर भ्रमण की इच्छा हुई। जब मुख्य मंत्री ने गुरु को देखा तो वह साष्टांग दण्डवत् करने के लिए उनके चरणों में कृतज्ञता प्रकट करने के लिये गिर पड़ा कि किस प्रकार उन्होंने उसके जीवन को सुधार दिया था।

इसी प्रकार 'पहला कदम' ही अपना प्रभाव दिखाता है। वह अगले कदमों को सरलता से और संभव बना देता है। आप को पहला कदम उठाने के लिए गुरु को प्रेरित करना चाहिए। उसे बताना चाहिए कि स्थिरता से खड़े-खड़े व्यर्थ जीवन बिताने से क्या लाभ है ? यह तो बड़ी लज्जा की बात है कि एक कदम उठाकर पुनः पीछे लौट जावे, आगे की यात्रा में क्या-क्या आनन्द आने वाले हैं और यात्रा भी कैसी शानदार और भव्य होगी; उस आनन्द का क्या ठिकाना जब लक्ष्य प्राप्त होगा ! इस प्रकार की प्रेरणा देना, आजकल के सभी तथा कथित गुरुओं के वश की बात नहीं होती। वे शिष्य को अनुशासन में नहीं रख पाते उलटे शिष्य ही उन पर शासन करते और पथ प्रदर्शन करते हैं। एक गड़रिये का लड़का था, जिसे गुरु का पद प्राप्त हो गया था। वह सदा दो शब्द थर्रर्रर्र···थर्रर्रर्र···और ठकठकठक कहता था। शिष्यों ने इन्हीं दो शब्दों के ऐसे-ऐसे अर्थ खोज निकाले कि गुरु का सम्मान बचा लिया। उन्होंने कहा कि जो जीवन भौतिक सुखों और विभूतियों के संग्रह में व्यतीत किया जाता है वह थर्रर्रर्र···है; और प्रभु की सेवा के लिए बिना व्यर्थ के व्यसनों में बिताया हुआ दिन ठक, ठक, ठक है। यदि गुरु शिष्यों की इच्छाओं और सनकों के समक्ष झुक जाता है या उन्हें स्वीकार कर लेता है और डरता है कि कहीं उसके शिष्य उसके हाथ से बाहर होकर निष्ठा ही न बदल दें, अथवा वह उनकी निष्ठा और श्रद्धा जीत लेने को उत्सुक रहता है तब तो वह शिष्यों का दास ही हुआ; न कि उनका गुरु अथवा स्वामी। शिष्यों को तो गुरु की आज्ञा ही मानना चाहिए। गुरु की बुद्धि से लाभ उठाने की यही सर्वोत्तम विधि है।

आज इस गुरु पूर्णिमा को मैं आपको गीता-साधना का आदेश देता हूँ; आपकी मुक्ति लाभ के लिए इतना पर्याप्त है। बहुत से लोग मुझसे आग्रह करते हैं "स्वामी जी मुझे नाम-प्रदान कीजिए जिसे मैं जपा करूँ।" कोई भी नाम जो तुम्हें आकर्षित करता हो, लिया करो, जो भी पसंद हो। उस भगवान के सभी नाम समान रूप से मधुर और प्रभावशाली हैं। यह तो विकृत और दुष्ट बुद्धि की तर्कना है कि एक नाम दूसरे से बढ़कर या घट कर है। यहाँ एक अमेरिकन महिला है जो मुक्ति के लिए बड़ी आतुर है। राष्ट्रीयता इसमें बाधक नहीं होती है क्योंकि यह सब जगत उसी के राज्य के अन्तर्गत है।

प्रशान्ति निलयम्
१४-७-६५

—०—

७

ईश्वर कितनी दूर है ?

यह तो वास्तव में दुर्भाग्य की बात है कि जनता अष्टमी और नवमी को अशुभ मानती है जबकि तथ्य ठीक इसके प्रतिकूल है। इन दोनों तिथियों पर भगवान् के अवतारों ने इस संसार में अवतार लिया है। यह कितनी शुभ तिथि है जिसमें उस निराकार, परात्पर, सर्वव्यापक नाम-काल-स्थिति से परे पूर्ण ब्रह्म का साकार सगुण, नाम रूप से युक्त श्रीकृष्ण के रूप में अष्टमी को अवतार होता है और श्रीराम के रूप में नवमी शुक्ल पक्ष को अवतार होता है। अतः इन तिथियों की पवित्रता की उपेक्षा करके और उन्हें अज्ञात भावी संकटों को लाने वाली मानकर यदि कोई शुभारंभ नहीं करता है तो यह उसकी वास्तव में निपट मूर्खता और दुर्बुद्धि के कारण ही समझना चाहिए।

जब मानव में निहित दैवीभाव तिरोहित हो जाता है; जब भगवत् तत्व आराधक ऋषियों द्वारा उनके दीर्घकालीन अनुभव और ज्ञान के आधार पर निर्धारित नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों की उपेक्षा होने लगती है, जब मानव पशु-प्रवृत्ति में पड़ जाता है और अपने अन्य मानव बन्धुओं के लिए एक घोर संकट उपस्थित कर देता है, तो भगवान् को पुनः नराकार में अवतार लेकर स्थिति को सुधारना ही पड़ता है। कृष्ण तो कर्म-फल बन्धन से रहित योगेश्वर थे। ईश्वर ही कृष्ण रूप में लोगों को अपनी लीला से आनन्दित और लुभाने के लिए प्रकट हुआ था। उनके कार्य मधुर गीत, वंशी ध्वनि और उपदेश और कृपा अवर्णनीय है। वह इसी कृष्णपक्ष की अष्टमी को जेल में, जहाँ

उनके लौकिक माता-पिता कैद थे और कंस जैसे आततायी के उत्पीड़न को भोग रहे थे, इन दुष्ट शक्तियों का अन्त करने के लिए अवतरित हुए थे। श्रीराम मनुष्यों को धर्माचरण की शिक्षा देने आए थे अतः उन्हें स्वयं मूर्तिमान् धर्म होकर सत्य, न्याय, और ईमानदारी का आचरण घोर संकटों में भी करके दिखाना पड़ा। उन्होंने स्वयं उदाहरण प्रस्तुत किया कि एक आदर्श, पुत्र, भाई, मित्र, शासक, शत्रु और पति को कैसा होना चाहिए।

यह दोनों अवतार जिस ग्रह-स्थिति में भगवान ने इस पृथ्वी पर लिए है वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जब अवतार होते हैं तो वे समय, स्थान, जाति और परिवार का चुनाव स्वयं पहले से कर लेते हैं, वे अपने पार्षदों और भृत्यों और सहकारियों सहित अवतीर्ण होते हैं। जब श्रीरामवतार हुआ तो शेष, शंख, चक्र तथा भगवान् के अन्य अपरिहार्य पार्षद भी अवतरित हुए। देवताओं ने भी जन्म लिया जिससे वे भी भगवान की संगति और सेवा का मधुर रसास्वादन कर सकें। नक्षत्र रोहिणी, जिसमें श्रीकृष्ण अवतार हुआ था, योगिक सफलता और उससे प्रवाहित होने वाली शक्तियों की प्राप्ति से सम्बन्धित है। पुनर्वसु नक्षत्र, जिसमें रामावतार हुआ था, उस रहस्यपूर्ण शक्ति और अधिकार से सम्बन्धित है, जो सभी को स्वीकार करता है, श्रीराम का शरणागत को त्राण देने का यही कारण है।

इन दो शुभ अवसरों पर मनुष्य को इन दो अवतारों से सम्बन्धित उच्च आदर्शों और उन्नायक विचारों का मनन करना चाहिए और साधना में पहला कदम या अगले कदम उठाना चाहिए। भगवान् का जो नाम रूप आप को भाता हो, प्रेरणा देता हो, आपकी आकांक्षा के अनुकूल हो उसी को लेकर आप साधना का शुभारंभ इन्हीं दिनों पर प्रारंभ कर दें। किसी भी दिन या नक्षत्र पर दोषारोपण न करे। यदि आप

ईश्वर के नाम पर जागते हैं तो हर दिन ही शुभ है। हर नक्षत्र शुभ है यदि उसका प्रकाश आपके चरणों को भगवान की ओर गति प्रदान करता है। आज आप लोगों के लिए मेरा यही परामर्श है।

मनुष्य आनन्द प्राप्ति के लिए बड़े उत्सुक होते हैं और जब अक्षय आनन्द की प्राप्ति की शुभ संभावना होती है तो वे इस विचार से ही उछल पड़ते हैं परन्तु शीघ्र ही उनका प्रयास शिथिल पड़ जाता है और वे थक कर बैठ जाते हैं। वे लघुमार्ग खोजते हैं और दूसरों पर आश्रित होने लगते हैं और अल्प कृषि-कार्य से ही बड़े-बड़े फल प्राप्ति की आशा करने लगते हैं। परन्तु आध्यात्मिक संघर्ष में सफलता पाने के लिए कठोर अनुशासन और दृढ़ विश्वास नितान्त आवश्यक होते हैं। धार्मिक प्रवचनों को सुनना, अथवा स्वयं धार्मिक प्रवचन करना, कोई विशेष फल नहीं देते हैं। उस अनुशासन का पालन करने के लिये व्यक्ति को इन्द्रियों को, जो मन को बाह्य संसार के सुखोपभोग के लिए घसीटती हैं, संयमित करना पड़ता है। अडिग विश्वास के लिए, मन की चंचलता को रोकना ही पड़ेगा क्योंकि यह चंचलता ही झूठे रंगों से आपको फँसाने के लिए आकर्षक चित्र बनाकर उपस्थित करती है। इसी से जन्मजन्मान्तर का क्रम जारी रहता है।

यदि आपकी बुद्धि तीक्ष्ण है और पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से रहित है, तो सत्य आप पर एक झपाके में ही प्रकट हो जावेगा क्योंकि यह तो एक नितान्त सरल तथ्य है। बुद्धि को केवल इतनी क्षमताशालिनी होना चाहिए कि वह समस्याओं को उनके मौलिक तात्विक रूप में देख सके और अन्य सभी अनावश्यक अप्रासांगिक उलझनों से निर्लिप्त रह सके। एक बार एक प्रकाण्ड पंडित भागवत् से गजेन्द्र-मोक्ष का उपाख्यान महाराजा और उनके दरबारियों की विशाल सभा में पाण्डित्यपूर्ण ढंग से सुना रहे थे। उन्होंने वर्णन किया कि किस प्रकार भगवान ग्रह के चंगुल

में फँसे हाथी की उद्धार की आर्तपुकार को सुनकर वैकुण्ठ से तत्क्षण अपने आयुधों आदि को बिना लिये ही दौड़ पड़े और श्री लक्ष्मी जी को भी सूचित न कर सके और चल दिये कि वह कहाँ और किस लिये जा रहे हैं। एकाएक महाराज पूछ बैठे, "पंडित जी कृपया बतलाइये कि वैकुण्ठ है कितनी दूर ?" चूँकि विद्वान पंडित को यह दूरी ज्ञात नहीं थी वह इस प्रश्न से हत-प्रभ हो गया। महल के अन्य विद्वान् भी इस पर कुछ प्रकाश न डाल सके।

राजा के आसन के पीछे खड़ा जो सेवक पंखा झल रहा था, बोला कि "आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करूँ।" उसकी घृष्टता पर पंडित खीझ उठा, परन्तु महाराज ने उसे बोलने की आज्ञा दी। "महाराज वैकुण्ठ केवल उतनी ही दूर है कि जहां तक हाथी की चीत्कार ध्वनि पहुँच सकती है और सुनी जा सकती है।" हाँ, ठीक तो है जब भक्त का कष्ट एक चीत्कार, कराहट अथवा 'ठंडी साँस' के रूप में ही व्यक्त होता है तो भगवान केवल इतनी ही दूरी पर होते हैं कि वहाँ से उस ध्वनि को सुनलें और वे उद्धार के लिए दौड़ पड़ें। उनके कान अपने बच्चों की पुकार सुनने के लिए सदा सावधान रहते हैं। उनका निवास स्थान वैकुण्ठ प्रत्येक ऐसी पुकार सुनाई दे सकने वाली दूरी पर ही होता है, कि जहां तक एक व्याकुल निराश हृदय से केवल भगवान् से उद्धार की आशा से लगाई गई पुकार पहुँच सके।

भगवान तो आसक्ति या घृणा से रहित हैं। वे तो एक उद्देश्य लेकर उसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए आते हैं। न्यायपूर्ण पक्ष का समर्थन और अन्यायी को दण्ड देना उनका स्वभाव है। उनका यही कार्य है कि वे मनुष्य को वह दृष्टि दें जिससे मनुष्य नैतिकता और आत्म-संयम के मार्ग को देख सके और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सके।

गीता के उपदेशों को चरितार्थ करने वाले वे स्वयं ही हैं। उन्होंने गीता में अपने को प्रकट किया है गीता ही वह ग्रंथ है जहां आपको प्रकृति और अवतारों के पूर्ण चित्र के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। वे तो मित्र, सखा, सारथी, गुरु, पथ-प्रदर्शक और अभिभावक, सभी रूपों में अपने भक्तों की रुचि के अनुसार बन जाते हैं। महाभारत युद्ध प्राचीन इतिहास का एक अध्याय नहीं है, यह तो प्रत्येक मानव के हृदय के अन्दर शुभाशुभ शक्तियों में होता ही रहता है। जो अपने हृदय में योगेश्वर कृष्ण भगवान को सारथि रूप में बिठालने का महत्व जानता है उसकी विजय सुनिश्चित होती है। अन्य लोग जो दुष्ट शक्तियों के भरोसे पर रहते हैं अवश्य ही असफल रह जाते हैं। उनका पतन होता है अन्त में विनाश होता है। भगवान को अपना स्वामी स्वीकार करलो, अपने सभी कार्यों को उसे ही समर्पित करदो मनसा वाचा कर्मणा उसी के हो जाओ, अपने को उसी के चरणों में अर्पित कर दो। वह तो स्पष्ट आश्वासन देते हैं, "मोक्षायिष्यामि मा शुचः।" "मैं तुम्हारा उद्धार करूंगा; शोक मत करो।"

सर्वोच्च सत्य के बताये जाने के लिए अर्जुन एक सुयोग्य पात्र था। उसमें ज्ञान के लिए उत्कंठा, त्याग, विवेक और आकाँक्षा थे। वे कृष्ण के वैभव और महत्ता को सदा स्मरण रखते थे; उन्हें कृष्ण की शक्ति, कृपा, और बुद्धि में पूर्ण विश्वास और भरोसा था। वह भगवान के "प्रियानाम सखा" की कोटि का अंतरंग प्रिय मित्र था। भीष्म, उद्धव, भीम, द्रौपदी भी इसी कोटि के भक्त थे। उद्धव तो इतने निकट अंतरंग के भगवान के मित्र थे कि भगवान ने उन्हें बहुत पहले ही यादवों के विनाश की पूर्व सूचना दे दी थी। भीष्म को श्रीकृष्ण जी के अवतार होने का पूर्ण ज्ञान और दृढ़ विश्वास था। उन्होंने कौरवों की सभा में तथा अन्य मार्के के मौकों पर भी इसी बात को जोर देकर कह दिया था और उन्हें अपने अंतिम क्षणों में श्रीकृष्ण का दर्शन पा लेने पर

संतोष और प्रसन्नता थी। इनके अतिरिक्त "प्रिय सखा" की कोटि के भक्त थे, जिनके साथ श्रीकृष्ण जी खेले, खाये और आनन्द मग्न होकर क्रीड़ा की थी। वे तो क्रीड़ा सहचर थे।

गोपियों की तो भक्तों की एक अलग विशिष्ट श्रेणी है जिनमें वे ही आती हैं। वे तो भक्ति के उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी थीं। उन्हें तो कृष्ण-चैतन्य के अतिरिक्त और कुछ का मान ही न था। उन्होंने शरीर और इन्द्रियों की चेतना का त्याग कर दिया था। वे तो शरीर में ही स्थित केवल मात्र कृष्ण तत्व से संयुक्त हो गई थीं। वे 'स्व' का अनुभव न करना चाहती थीं परन्तु उसी 'पर' के जानने को उत्सुक थीं। शुकदेव जी से, जो परीक्षित से गोपियों की अद्भुत कथा और उनके प्रेम का वर्णन कर रहे थे, परीक्षित ने प्रेम के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो शुकदेव ने उत्तर दिया चूंकि गोपियों में शरीर-चैतन्य का अभाव था वे सदा भगवच्चैतन्य में ही मग्न रहती थीं इसलिए उनके भगवत्प्रेम में किसी प्रकार का स्थूलभाव, पार्थिव प्रेम का लेशमात्र भी न था। शरीर को ही आत्मा मानकर, और इन्द्रियों की दासता में, चलने वालों में ही अन्याय, हिंसा, क्रूरता, जिनसे आज दुनियाँ पीड़ित है, के भाव उत्पन्न होते हैं।

एक बार एक विदूषक को राजा ने महल के मुंडेर पर कुछ खोजते हुए पाया। राजा ने उससे पूछा कि वह क्या खोज रहा है। उसने कहा कि एक ऊंट भाग निकला है; संभवत वह सीढ़ियों पर चढ़ते हुए वहाँ कहीं पहुँच गया हो। इसी की खोज के लिए वह मुंडेर पर चढ़ा है। राजा उसके इस मूर्खतापूर्ण अनुमान पर बहुत हँसा, परन्तु विदूषक ने उत्तर दिया, "यदि आप अपने इस उन्नत अभिमान के कूबड़ और वक्रतापूर्ण विश्वास को लिये हुए स्वर्ग पहुँचने की आशा करते हो, तो एक ऊंट भी पांच सीढ़ियों को चढ़कर इस मुंडेर पर पहुँच सकता है।"

गोपियों को आध्यात्मिक प्रसन्नता का रहस्य विदित था। उनकी पूजा-आराधना किसी सौदेबाजी की भावना से पूर्णतया रहित थी; क्योंकि जो सौदेबाजी करते हैं और हर बात में लाभ खोजा करते हैं उनके लिए तो भक्ति पूजा के समकक्ष ही लाभ का विचार रहता है। वे तो वेतनभोगी नौकरों की तरह होते हैं जो सदा अपने वेतन, भत्ते, बोनस आदि के लिए झगड़ते और आन्दोलन करते रहते हैं। इसके प्रतिकूल आप तो एक परिवारिक सदस्य अथवा संबंधी की तरह, मित्र की भाँति सदा भगवान के अपने ही स्वजन होने की कल्पना किया करो। तब तो आप कार्य से कभी नहीं थकोगे, कार्य भी बढ़िया होगा, आपको भी अधिक संतोष प्राप्त होगा। और परिश्रमिक ? मालिक आपको सदा आनन्दित रक्खेगा। इससे अधिक और क्या चाहिए ? सब कुछ उसी पर छोड़ दो; उसे तो पूर्ण ज्ञान है, वही सब कुछ है, उसे जानने का आनन्द ही पर्याप्त पुरस्कार है। मनुष्य की प्रसन्नता का यही रहस्य है। इसी ढंग पर अपने जीवन को ढाल लो और आप कभी भी शोक को प्राप्त नहीं होंगे। "नमे भक्ताप्रणस्यति" यही तो कृष्ण ने कहा है कि मेरे भक्त को कभी भी शोक नहीं होता, उसका नाश नहीं होता।

प्रशान्ति निलयम्
गोकुलाष्टमी, १९-८-६५

—०—

८

जहाँ मन लय होता है

प्रशान्ति निलयम् तो नित्य शान्ति का निलयम् है क्योंकि यह शान्ति किसी भी कारण से भंग नहीं होती; क्योंकि यह गंभीर विवेचन और विषयवासना के अडिग त्याग पर आधारित है। आज के पवित्र दिवस पर यहाँ होना बड़े सौभाग्य की बात है। हजारों साधक, मुमुक्ष और जिज्ञासु, जो यहाँ एकत्रित हुए हैं और इस शुभ समारोह में सम्मिलित हो रहे हैं; उन्हें इस सुयोग का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। दशहरा के उत्सव को खा-पीकर इन्द्रियों को सुख देकर, मनाने की अपेक्षा, मुझे यह कहने में प्रसन्नता होती है कि आपने पवित्र विचारों में मग्न रहकर मनाने का संकल्प किया है।

दशहरा का त्योहार देवताओं की असुरों पर विजय, सत्य की असत्य और दुष्टता पर विजय, के लिए मनाया जाता है। उनकी विजय इस लिए हुयी कि पराशक्ति, दैवत्व की सक्रिय शक्ति, वह शक्ति जिसने भगवान को इतनी अनेक रूपता प्रदान की है और वही यह सब सौंदर्य है, उन्हें सहायता देने के लिए उनके पक्ष में लड़ने को आयी। इस देश को अधार्मिक शक्तियों के आक्रमण का शिकार होना पड़ा और पुनः उसी पराशक्ति ने इसे अपमान और हानि से बचा लिया। इसीलिए हम इस त्यौहार को विशेष महत्त्व देकर मना रहे हैं।

इस प्रकार के सत्संग लोगों में स्वयं को जानने, इस संसार की वास्तविक प्रकृति को जानने तथा बैदिक महावाक्यों "तत्त्वमसि" वह

ग्राप (भगवान) ही हो, को जानने ग्रौर ग्रद्वैतता का ग्रनुभव करने की इच्छा को बलवती बनाते हैं। यह सत्संग की ही महिमा है कि जिसके ग्रदृश्य ग्रौर सूक्ष्म प्रभाव से दासी पुत्र नारद भक्ति मार्ग से सर्वप्रमुख व्याख्याता ग्रौर प्रयोक्ता बन गये, वाल्मीकि जैसे लुटेरे महान-ऋषि ग्रौर आदि कवि हो गये ग्रौर उन्होंने अनेक पापियों को प्रायश्चित तथा धर्म का मार्ग दिखलाया।

भारत का निर्माण नारद, वाल्मीकि द्वारा निर्धारित धर्म की नींव पर हुग्रा है। उन्होने कहा है कि व्यक्ति को न तो विजय पर बहुत प्रसन्न ग्रौर न पराजय में निराश ग्रौर दुखी होना चाहिए। दोनों को समान भाव से भगवान में विश्वास की परीक्षा के रूप में ग्रहण करना चाहिए। यह वह देश है जहाँ ग्रनादिकाल से बच्चा मां के स्तनपान से ही भगवान में विश्वास की भावना ग्रहण करने लगता है। इसीलिए यह देश कभी निराशा ग्रौर शोक को स्थान नहीं दे सकता। यह तो सदा हृदय में भगवान पर विश्वास करेगा ग्रौर ग्रन्तर से ही ग्रक्षय साहस की कुमक प्राप्त करता रहेगा। ग्रन्तिम विजय उन्हीं की होती है जो ग्रात्मा को ग्रजेय और सत् मानते हैं। ऐसे लोगों के हृदय में घृणा नहीं होती; वे खिन्न तो हो सकते हैं कि अन्य लोग लोभी ग्रौर द्वेषी हैं। उनकी भगवान से यही प्रार्थना होती है, "हे प्रभु ! हमें सद्बुद्धि नम्रता और शत्रुग्रों के प्रति भी प्रेम प्रदान कीजिये। विवेक ग्रौर शान्त चिन्तन द्वारा न्याय परायणता की प्रेरणा दीजिये।"

वेदों के युग से भारत के सभी पुत्र ग्रौर पुत्रियाँ प्रार्थना करते ग्राये हैं "लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु", सभी लोकों के सभी प्राणी सुखी होवें। इसीलिए तो भारत मानवता का जगद्गुरु, संसार का पथ प्रदर्शक रहता ग्राया है। यही कारण है कि यह विदेशी सभ्यताग्रों के ग्राक्रमण के बाद भी जीवित है ग्रौर उसी पुराने पद के निर्वाह हेतु तैयार है। सत्य

तो यह है कि भारत में इसके लिए सभी विशेष योग्यतायें हैं और इसके भाग्य में भी यही बदा है कि भारत विशाल प्रशान्ति निलयम् बन कर शेष विश्व में प्रशान्ति का संदेश विकीर्ण करे।

इससे पूर्व आप में से प्रत्येक का हृदय तो प्रशान्ति निलयम् बन जावे। यह परिवर्तन इसी क्षण से प्रारंभ हो जाना चाहिए। अपने विचारों, शब्दों और कार्यों का विश्लेषण करो और उनमें से ऐसे दुष्टता पूर्ण विचारों, शब्दों और कार्यों को त्याग दो जिससे आपको हानि पहुँचती है अन्य लोगों का भी कल्याण नहीं होता है। तब इनके स्थान पर सहिष्णुता, शान्ति और सत्याचरण की निरंतर अभिवृद्धि करते जाओ। मन तो इधर-उधर भटक कर संसार की सभी क्षुद्र-श्रेष्ठ वस्तुओं पर जाकर टिकता रहता है। केवल एक विचार, भगवान् पर यही स्थिर होकर टिकता ही नहीं। एक मक्खी भी सभी भली-बुरी वस्तुओं पर तो बैठती है परन्तु दहकते हुए कोयले पर बैठने का लोभ नहीं करती। मन भी इसी प्रकार ईश्वर संबंधी सभी विचारों से भागता है। यदि दहकते कोयले पर बैठे तो मक्खी भस्म हो जावेगी, इसी प्रकार जब मन ईश्वर चिन्तन में लग जाता है तो नष्ट हो जाता है क्योंकि मन भी तो इच्छाओं के ताने बाने से बुना हुआ; वही और उन्हीं का पदार्थ है। जब मस्तिष्क में राम प्रवेश करता है तो काम के लिए वहाँ स्थान ही नहीं रहता है। जब ईश्वर मस्तिष्क पर अधिकार करता है तो इच्छायें समाप्त हो जाती हैं। वास्तव में इच्छा रूपी पदार्थ से ही तो मन बना है, इसके अस्तित्व न होने पर आप स्वतन्त्र हो जाते हैं। इस स्थिति का नाम 'मनो-निग्रह' 'मनोलय' अथवा 'मनोनाश' है। अब मैं प्रशान्ति-पताका को लहराने का कार्य करने जा रहा हूँ मैं चाहता हूँ कि यह आपके हृदयों में सदा लहराती रहे।

यह आध्यात्मिक साधना और सफलता का प्रतीक है। इस निलयम् के सामने इस गोलाकार मैदान में निरूपित है। आप में से कइयों

ने यह कल्पना की होगी कि यह केवल सजावट और सौन्दर्य वृद्धि के हेतु है। नहीं, मेरा विचार यह नहीं है। जो कुछ मैं करता हूँ उसका दोहरा उद्देश्य होता है, वह सुन्दर तो हो ही, साथ में शिक्षाप्रद और उन्नायक भी हो। जो जिज्ञासु हैं उन्हें वह कुछ अर्थ-पूर्ण भी लगे। इस निलयम् के चतुर्दिक कोई परकोटा नहीं है; चूँकि हृदय की तरह उनका विस्तार तो है इसके तीन द्वार हैं। सब से बाहर वाला तमस् का प्रतिनिधित्व करता है (जिससे होकर लोग मनमौजीपन, सन्देह और निराशा से प्रवेश करते हैं) दूसरा रजस् का प्रतिनिधित्व करता है (इसको पार करने का अर्थ है मनुष्य दृश्यानंद, नेत्रानंद और मनो-आनन्द से आकर्षित होते हैं) अर्थात् दृश्य जो मन और नेत्रों को सुखदायी होवे, तीसरा जो प्रार्थना-कक्ष को जाता है, जहाँ लोग दुर्लभ सात्विक गुण को विकसित करते हैं। यह वृत्त साधक की आध्यात्मिक प्रगति का प्रदर्शक है कि वह इच्छाओं के निर्जन मरुस्थल से होकर, क्रोध और घृणा के कँटीले झाड़-झंखाड़ को लांघते हुए, प्रेम के हरे-भरे मैदान से होकर आनन्द के विस्तृत राजमार्ग पर कितना आगे बढ़ा है। वह योगिक ध्यान में बैठता है और कुंडलिनी शक्ति को जागृत करता है जब तक कि हृदय का कमल खिल न जावे। और सर्वोच्च ज्योति प्रकाशित न दीख जावे और अज्ञान अंधकार का नाश न हो जावे। जैसे कि शिशुओं की पहली पोथी में चित्रों के द्वारा उन्हें ज्ञान कराया जाता है, वह वृत्त भी, झंडे पर अंकित प्रतीक का, ठोस वस्तु-पाठ है। जो पाठ मैं आपको पढ़ाने के लिए जोर दे रहा हूँ यह उसी का मूर्तस्वरूप है।

महारानी कच्छ, जोकि आज मनाये जाने वाले अस्पताल दिवस के समारोह की अध्यक्षता करने वाली हैं, इसके लिए बड़ी चिन्तातुर थीं कि वह समय पर आ भी सकेंगी। क्योंकि पाकिस्तान से संघर्ष के कारण सीमान्त प्रदेश अशान्त है; अथवा, कदाचित मैं स्वयं दशहरा समारोह को निरस्त कर दूँगा, जैसा कि अनेक लोगों ने मैसूर आदि जगहों पर

कर दिया है। परन्तु सभी विघ्न बाधाओं के होते हुए भी, समाचार प्राप्त हो गया है कि युद्ध रुक गया है; शांति पुनः स्थापित हो गई है। प्रशान्ति निलयम् द्वारा की गई कृपा का यह दूसरा उदाहरण है। महिमा इसी प्रकार कार्य करती है।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा २६-९-१९६५

—०—

६

रुग्ण अथवा स्वस्थ

यदि आनन्द निलयम् (प्रशान्ति निलयम्) का आप लोग सदुपयोग कर तो आरोग्य निलयम् (अस्पताल), जिसका वार्षिकोत्सव हम आज मना रहे हैं, अनावश्यक और फालतू है; क्योंकि जब मन आनन्द में निमग्न होता है तो शरीर में रोग होगा ही नहीं। आनन्द की स्थिति को प्राप्त करने के लिए शरीर को आप एक वाहन की भाँति प्रयोग करते हैं; इसी लिए इसको सदा सुदृढ़ सुरक्षित और उपर्युक्त उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए चालू हालत में रखा जाता है। यह तो साधना के लिए एक यन्त्र है, जिसे पिछले जन्मों के सत्कर्म और प्रभुकृपा से प्राप्त किया गया है। प्रतिक्षण यह विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है, अतएव एक भी क्षण व्यर्थ और निरर्थक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए नहीं खोना चाहिए। इस शरीर को सदा क्षुद्र और निम्न समझना कहीं अच्छा है बजाय इसके कि हम इसे ही जीवन का सर्वस्व और सार समझें। इसे तो एक फोड़ा समझिये जिसे पट्टियों (वस्त्रों) से ढक कर रखा जाता है और दवाइयों (भोजन) से उपचार किया जाता है और धोया (पेय जल, दुग्ध आदि से) जाता है। इस असाधारण आसक्ति को आप इसी प्रकार विस्मृत कर सकते हैं।

आप परोपकार और पर-सेवा तभी करने में समर्थ और प्रेरित हो सकते हैं यदि आप शरीर-भावना (मैं शरीर हूँ) का त्याग कर दें। जब मनुष्य के पेट में शूल की वेदना होती है तो उसके नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है, क्यों ? क्योंकि शरीर के विभिन्न अंग, आँख, उदर

इत्यादि हैं तो सब उसी के। इसीलिए जब किसी को पीड़ित देखो, तो आपकी आँखों में भी आँसू छलकना चाहिए और आप में उसके दुख को दूर करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जानी चाहिए। यह तभी हो जा सकता है जब आपको यह ज्ञान होवे कि वह और आप दोनों एक दैवी-शरीर के अंग हैं। सत्य के अज्ञान के कारण ही तो भेद-भाव उत्पन्न होता है। जब लोगों को क्रोध आता है तो वे दाँत पीसते हैं परन्तु जिह्वा को कोई नहीं चबा जाता है और न दाँतों को ही तोड़कर बाहर फेंक देता है क्योंकि दाँत भी तो उन्हीं के होते हैं। इसी प्रकार रोगी, निर्धनी, कष्टों से पीड़ित, निरक्षर और दुष्ट, सभी उसी शरीर के अंग हैं जिसके हम सब। वही प्राण सभी को संचालित कर रहा है। इस सत्य का अनुभव करना और अद्वैत में लीन होना हो तो मानव-जीवन का, मानव-शरीर में होने का, उद्देश्य है।

इस भावना को परिपक्व करने के लिए विषयवासना (इन्द्रिय भोगों में आसक्ति) के बीजों को ही बीन-बीन कर सावधानी से निकाल देना चाहिये। एक खेत चाहे जैसा परिष्कृत, उजाड़ और तृण अंकुरादि से रहित दीखे वर्षा की पहली झन्न के बाद यह हरियाली के गलीचे से ढँक जाता है; मिट्टी में मिले घास के बीज नमी के संपर्क में आते ही अंकुरित हो जाते हैं। इसी प्रकार प्रलोभन के प्रथम सम्पर्क मात्र से ही लोगों में विषयवासना अंकुरित हो जाती है और आध्यात्मिक साधना का उत्तरोत्तर विकास अवरुद्ध हो जाता है।

भक्ति का चरम उद्देश्य उसी लीलामय प्रभु का दर्शन है, जो इस सभी दृश्यमान रंगमंच का निर्देशक, सर्वव्यापक और विश्वंभर है। एक बार एक भक्त ने अपने घर में भगवद्गीता सप्ताह-पारायण का अनुष्ठान किया। प्रत्येक ने उसकी भक्ति और समाज-सेवा की सराहना की और उसे धन्यवाद दिया। दूसरे दिन उसकी गौशाला में एक गाय मर

गई। उसे लगा कि उसके इस नूतन आयोजन के ही कारण गौ की मृत्यु हुई है। अतः उसने पारायण का कार्यक्रम स्थागित कर दिया। अब सोचने की बात है कि गौ की मृत्यु और उस व्यक्ति की भक्ति में क्या संबंध है? भक्त को तो सांसारिक इच्छाओं, और पशुओं तथा धन सम्पत्ति के रक्षण की चिन्ता से, अपनी भक्ति के कारण, मुक्त होना चाहिए। ईश्वर-प्रदत्त सभी गुणों का पूर्ण सदुपयोग करने के बाद भी मनुष्य को भगवान के शरणागत होना चाहिए, जो घटित होवे उसे प्रभु-इच्छा मान कर उत्साह से स्वीकार करना चाहिए।

एक भक्त जो भगवान की शिव रूप में आराधना कर रहा था दूसरे भक्त से मिला जो विष्णु रूप की आराधना करता था। दोनों में वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। विष्णु भक्त की पीड़ा मुखर हो उठी कि न जाने किस कारण विष्णु-भक्तों की धन-सम्पत्ति, पशु, भूमि, घर का रहस्य-पूर्ण ढंग से नाश हो जाता है; पर शिव-भक्तों का यह सब वैभव निरंतर द्रुत गति से बढ़ता ही जाता है। उनकी धन-सम्पत्ति, भूमि और परिवार शीघ्रता से कई गुने हो जाते हैं। शिव-भक्त ने अपना रोना रोया कि यही वरदान शिव अपने भक्तों को नहीं देते हैं। जो लोग धन-सम्पत्ति, घर, भूमि और परिवार से रहित हो जाते हैं वे साँसारिक संबंधों के बन्धनों से मुक्त होकर, बोझरहित होकर, बड़ी द्रुत गति से भगवान की ओर निर्बाध रूप से अपने कल्याण के लिए दौड़ने लगते हैं। यदि एक निर्धन मरता है तो कोई भी उसका संबंधी बनकर आगे नहीं आता है क्योंकि वहां कोई लाभ नहीं होता है। परन्तु जब किसी संपन्न व्यक्ति की मौत होती है, जिसने कुछ धन, मकान, दुकान, भूमि छोड़ी होती है, तो उसके शव का अन्तिम संस्कार करने के लिए अनेकों झगड़ने लगते हैं कि जिससे उन्हें मृत व्यक्ति की सम्पत्ति में बड़े से बड़ा भाग प्राप्त हो सके।

वरदाता, वरदान के उपयोग और लाभों को जानता है। आप इसका निर्णय नहीं कर सकते; क्योंकि आप अल्पज्ञ और अदूरदर्शी हैं। उसे तो भूत, वर्तमान और भविष्यत् सभी का पूर्ण ज्ञान है।

साधना को निष्ठापूर्वक और उत्तरदायित्व-पूर्ण भावना से करना चाहिए। इसे केवल रिक्त दैनिक-चर्या मानकर सीमित भाव से नहीं करना चाहिए। एक ब्राह्मण था। जब एक बार वह कुछ वर्ष विदेश में अध्ययन करके भारत लौटा तो उसके पिता ने १०८ बार पवित्र गायत्री मंत्र के प्रात-सायं जाप करने का आग्रह किया, जैसा कि वह पश्चिमी विदेश यात्रा से पूर्व किया करता था। परन्तु अब वह साधना उसके लिए खोखली चर्या मात्र रह गई थी, उसका कल्पना चित्र धूमिल हो चुका था, उसकी चातुर्य-क्षमता में वृद्धि हो गई थी। इसलिए अपने वृद्ध पिता को संतुष्ट करने के लिए उसने एक बार गायत्री मंत्र का पाठ कर उसके बाद १०७ बार "फिर वही" "फिर वही" कह दिया। आध्यात्मिक प्रयास एक कठोर क्रिया है, आप चालाकी से इसे सम्पन्न नहीं कर सकते।

अथवा, जैसे महाराजा जनक को ज्ञान प्राप्त हो गया था, सत्य के दर्शन एक चकाचौंध की तरह क्षण भर में भी हो सकते हैं। एक सायं-काल जनक अपने दरबारियों समेत दरबार कक्ष में विराजमान थे वहाँ स्त्री संगीतकारों की भी एक टोली थी। उन्होंने इतने मधुर राग गाये कि सम्राट तन्मयता से संगीत का रसास्वादन करते-करते राजगद्दी पर ही निद्रामग्न हो गये किसी में भी उन्हें जगाने का साहस न था, धीरे-धीरे वे सब भीतरी कमरों में खिसक गये जिससे उनकी गतिविधि और बतबताहट से सम्राट की निद्रा भंग न हो जावे। उन्हें रानी और एक सेवक के साथ अकेला छोड़ दिया गया। आधी रात के आस-पास वे दयनीय चीत्कार के साथ जाग पड़े। उनकी रानी दौड़ी आयी, राजा ने पूछा "वह सत्य था, अथवा यह सत्य है ?" रानी को इस प्रश्न का कोई

उत्तर न सूझा। वे कैसे जान पाती कि 'वह' और 'यह' से क्या तात्पर्य था। सम्राट प्रत्येक से यही प्रश्न करते थे, वास्तव में वह इन शब्दों के अतिरिक्त और कुछ बोलते ही न थे। यही प्रश्न लगातार उनकी जिह्वा पर बना रहता था। खबर फैल गई कि महाराजा जनक पागल हो गये हैं; हर जगह शोक मनाया जाने लगा। एक ऋषि को जब यह समाचार सुनाई दिया तो वे राजमहल तक आये और उन्हें सम्राट के समक्ष उपस्थित किया गया। उन्होंने जनक को आश्वस्त किया कि वे उनके प्रश्न का उत्तर देंगे यदि महाराजा उन्हें बतायें कि स्वप्न में उन्होंने क्या देखा; जबकि वे राजगद्दी पर ही सो रहे थे और वे क्यों चिल्ला पड़े।

जनक ने स्वप्न तो देखा ही था। उन्होंने कहा कि स्वप्न में प्रतिद्वन्दी राजों ने संगठित होकर उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया और उनकी राजधानी को जीत कर अधिकार में कर लिया; उनसे त्राण पाने के लिए राजा (जनक) जंगल को भाग गये। शत्रु से बचकर भागने में उन्हें कई दिन तक लगातार भूखा प्यासा रहना पड़ा। यद्यपि वे अब और आगे भागने में अशक्त हो गये थे परन्तु भूख उन्हें आगे ठेले ही जा रही थी। जब वे एक जंगली ग्राम के निकट पहुँचे तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति भोजन करने के पश्चात् अपना पात्र धो रहा था। उन्होंने चिल्लाकर उससे कुछ ग्रास भोजन की याचना की। उस व्यक्ति ने एक छोटा ग्रास मात्र उन्हें दिया परन्तु दुर्भाग्य से उसे भी एक कौआ अचानक आकर ले उड़ा। यही कारण था कि ये स्वप्न में पीड़ा से चीत्कार कर उठे।

इसी से वे पूछते थे "यह सत्य है अथवा वह सत्य था।" भूख उतनी ही सत्य थी, जितनी उनकी राजगद्दी। वर्तमान में उनका शासन उतना ही सत्य था कि जितना स्वप्न में राज्य का छीन लिया जाना। ऋषि

ने उन्हें बताया, "वह असत्य था जैसाकि यह भी असत्य है। वह एक स्वप्न था, और यह जाग्रत अवस्था है; दोनों ही मिथ्या हैं (असत्य नहीं; क्योंकि अपेक्षाकृत वे सत्य हैं यद्यपि निरपेक्ष सत्य नहीं; इनका सत्य क्षणिक है क्योंकि वह परवर्ती अनुभव और जाँच-पड़ताल से असत्य सिद्ध होता है)। परन्तु आपने स्वप्न देखा, जाग पड़े, चीत्कार किया, आपने प्रश्न किया। अतः आप दोनों अवस्थाओं में अस्तित्व रखते हैं इस लिए केवल आप ही सत्य हैं। जो "मैं" इन तीनों अवस्थाओं जागृत, सुप्त और सुषुप्ति में रहता है; वही एक मात्र सत्य है। यह "मैं" ही इस विश्व के रूप में व्यक्त है।

सत्य में मिथ्या नहीं होती परन्तु मिथ्या जगत में तुम्हें सत्य खोजना और अनुभव करना है। आप यदि अपने मस्तिष्क को सभी विविधताओं और क्रियाओं से रहित बना सकें तो आप सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं। इस मस्तिष्क के वर्तमान संश्लिष्ट और उलझनों से पूर्ण स्वरूप को बदल कर इसे आकाश के समान परिवर्तित करलो; आकाश में यद्यपि असंख्य शब्द स्थान पाते हैं परन्तु इनमें से एक को भी नहीं सुनता; यद्यपि करोड़ों पक्षी और सहस्रों वायुयान इसके आर-पार निरंतर उड़ान भरते रहते हैं। अलिप्त, असंग और बाह्य प्रभाव से मुक्त बनो। यही साधना है जो सत्य को व्यक्त करेगी।

इसी साधना से भौतिक और मानसिक शान्ति और साम्य प्राप्त होंगे। जब मैंने यहाँ पढ़ी गई आख्या सुनी तो प्रसन्न नहीं हुआ। इसमें कहा गया है कि गतवर्ष यहाँ उपचार किये जाने वाले रोगियों की संख्या २२,००० थी परन्तु इस वर्ष यह बढ़ कर २३,००० हो गई है : बीमारियों का कारण मनुष्यों का भोजन, या उनके निवास की परिस्थितियाँ इतनी सीमा तक नहीं होते हैं। जितनी कि उनकी मानसिक दुर्बलतायें मानसिक दृष्टिकोण, पूर्वाग्रह और उलझनें। कामनायें, निराशायें,

असफलता की भावनाओं से भी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। बहुत सी बीमारियों से तो मस्तिष्क को भगवदचिन्तन रूपी औषधि से भर देने से ही मुक्ति मिल जाती है। शेष के लिए पथ्य भोजन, उचित निद्रा और मनोरंजन तथा कार्य ही रोगनाशक सिद्ध होते हैं। शास्त्र ही इस युक्त आहार-विहार की और मानसिक अनुशासन की शिक्षा देते हैं। वर्तमान युग में उनकी शिक्षायें बहुत मूल्यवान हैं।

शरीर को उचित मात्रा में महत्व दो, परन्तु अधिक नहीं। कुछ लोग शरीर के प्रति घृणा के भाव प्रचारित करते हैं, परन्तु यह कल्याणकारी बात नहीं है। इसे यंत्र मान कर सेवा करो और नौकर की तरह इसका प्रयोग करो। सृष्टि में किसी के प्रति घृणा भाव रखना वांछनीय नहीं है। यहाँ सभी कुछ भगवान की कृति है; उसी की महिमा और ऐश्वर्य का उदाहरण है। उदाहरण के लिए आप कौए की काँव-काँव को नापसन्द करते हो। इसकी बोली का क्या अर्थ है? (तेलगू भाषा में) इसका अर्थ है "रक्षा करो, बचाओ।" यह तो आपको ईश्वर प्रार्थना के लिए चेतावनी देता है। यह स्वयं सदैव प्रार्थना करता रहता है। कैसा महान पाठ यह पढ़ाता है! आप रामायण में एक कौवे का उपाख्यान पढ़ते हैं जिसने सीता को छेड़ा था, जिससे वह राम का कोपभाजन बना था और जो राम के वाण से बचने के लिए भयभीत होकर तीनों लोकों में उड़ता फिरा और अन्त में सीता-राम दोनों के चरणों में ही शरण के लिए आ गिरा (काँव-काँव, रक्षा करो, त्राहिमाम् पाहिमाम्) इसे शरण दी गई और वाण से रक्षा की गई। उपाख्यान वर्णन करता है कि कौए ने राम के क्रोध से एक आँख खोयी, परन्तु इसे पर्याप्त क्षतिपूर्ति सीता और राम के प्यार के रूप में प्राप्त हुई। उन्होंने इसे धृष्टता के लिये क्षमादान दिया और वरदान दिया। गाय भी जब 'अम्बा' 'अम्बा' कहती है तो यह जगदम्बा को ही पुकारती है। अपने आत्म-सुधार के लिये हर स्थान से प्रेरणा प्राप्त करो।

यदि आप अपनी शरीर भावना "मैं शरीर हूँ" की पुष्टि करते जावेंगे तो शरीर आप से अधिक अन्न, विविध भोज्यपदार्थ, शारीरिक सुख के अधिक साधन और वाह्य सौन्दर्य के प्रसाधनों की माँग करेगा। आजकल भोजन का अधिकाँश व्यर्थ ही खा डाला जाता है। मनुष्य इससे कम पर ही पूर्ण तथा स्वस्थ रह सकता है। आजकल स्वाद के लिये और सामाजिक वैभव प्रदर्शन के लिये जितने धन और प्रयास की बर्बादी की जाती है उसमें बहुत कुछ कमी की जा सकती है। इससे स्वास्थ्य भी सुधरेगा "मित तिन्दि अति हई" (तेलगू में); सादा भोजन उत्तम स्वास्थ्य। पेटू केवल अपने तमोगुण का ही प्रदर्शन करता है। जीवित रहने के लिए भोजन करो; ऐसा मत सोचो कि तुम खाने ही के लिये जीवित हो।

बीमारियों से बचने का उपाय है मानसिक चिन्ताओं को दूर रखना। अब तो मुझे ऐसा लगता है कि लोग अपनी चिन्तायें बढ़ाते रहते हैं और जिन बातों को समझते ही नहीं हैं उनके लिये भी परेशान रहते हैं; परन्तु वे न तो उनमें कुछ सुधार कर सकते हैं न दूर कर सकते हैं। रेडियो, समाचारपत्र तथा संचार के अन्य साधन इतने अधिक भय और असन्तोष का प्रचार करते हैं कि चिन्ता और व्याकुलता में वृद्धि होने से मनुष्य का मस्तिष्क ही दुर्बल हो जाता है। माता-पिता अपनी संतति के समक्ष अपनी चिन्ताओं की चर्चा करते हैं, इसलिये बच्चे भी चिन्ता करने लगते हैं। एक बार छः वर्ष का बालक मेरे पास आया जो अपने पिता के ऋणग्रस्त हो जाने के कारण रो रहा था क्योंकि पिता को उसके ऋणदाता परेशान करते थे। उस पिता ने अवश्य ही उस बालक के सामने विलाप किया होगा, "अभागे बालक ! मैं कैसे तुम्हें खिलाऊं-पिलाऊं और कपड़े बनवाऊं ? तुम्हारे लिये पुस्तकें और फीस कहाँ से जुटाऊं ? मैं तो कर्ज में डूबा हुआ हूँ"। लड़के ने यह सब अपनी कक्षा में भी कहा होगा कि वह पिता और पैत्रिक ऋण के लिये

चिन्तातुर है। आप बच्चों को कदापि ऐसी बातें न बताया करें। उनके कोमल मस्तिष्क भय और चिन्ता से विकृत हो जावेंगे। उनके स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

रुग्णता का सबसे बड़ा कारण भय होता है। जब भी आपको हल्का सा ज्वर होता है, आप यही सोचने लगते हैं कि कदाचित यह गम्भीर प्रकार के ज्वर का प्रारम्भ है। आप मन ही मन सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति को भी प्रारम्भ में ऐसा ही हल्का ज्वर था, जिसने बाद में गम्भीर रूप धारण कर लिया और अन्य विकार भी उत्पन्न हो गये; इसी प्रकार पहले की अपेक्षा अब आप अधिक रोगी होने लगते हैं। इसकी अपेक्षा उन उदाहरणों का चिन्तवन क्यों नहीं करते जबकि ज्वर को रोक दिया गया अथवा निर्मूल कर दिया गया हो; प्रभु की कृपा का आह्वान करो जो कि स्वास्थ्य प्रदान करती है और त्राण करती है।

दृढ़ संकल्प करो कि प्रभु-कृपा पर आश्रित होकर आप इसी क्षण से आरोग्य लाभ करने लगे हैं। जो विश्वास आप औषधियों पर रखते हैं उसे प्रभु-कृपा पर रखने लगो। अपना विश्वास दवा पर नहीं देव पर रखो। मैं लोगों की उस विशाल संख्या पर आश्चर्यचकित हूँ जोकि गोलियों और पौष्टिकों के सहारे जीते हैं। प्रार्थना, जप, ध्यान और साधना करने लगो। आपको इन्हीं विटामिनों की आवश्यकता है, वे आपको पुनः स्वस्थ कर देंगे। राम-नाम से बढ़कर प्रभावशाली कोई गोली नहीं होती। मैं आपको विभूति दूंगा जो आपको निरोग कर देगी। अब आप द्विविधा में हैं; ठीक उसी व्यक्ति की तरह जो मंदिर में जाने से पूर्व अपने जूते बाहर उतार देता है। यद्यपि वह मूर्ति के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, स्तोत्र पाठ करता है; परन्तु मन में जूतों की चिन्ता सताती रहती है कि मंदिर के बाहर वापस होने पर जूते मिलेंगे भी या नहीं। औषधालय उन्हीं लोगों के लिए होता है जिन्हें

दवा और डाक्टरों में विश्वास होता है। परन्तु बिना भगवान की कृपा के दवा और डाक्टर क्या कर सकते हैं। वह दिन अवश्य आयेगा जब कि अस्पताल और औषधालय अनावश्यक हो जावेंगे, क्योंकि तब सभी स्वस्थ और रोगमुक्त होंगे; साधना मार्ग को स्वीकार कर चुके होंगे। यही तो आनन्द का, शान्ति और प्रसन्नता का मार्ग होगा।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा २६-९-६५

—o—

१०

विटामिन 'जी'

शारदीय नवरात्रि के त्यौहार पर हम लोग यहां वेद पारायण यज्ञ, स्तोत्र और मंत्रों का पाठ करते हैं। रेडियो तरंगों की तरह यह घर-घर उस प्रार्थना और भगवान के यश को, जो इनमें सन्निहित है, ले जाते हैं। जिस प्रकार रेडियो कार्यक्रम को सुनने के लिए एक यंत्र की आवश्यकता होती है, एक मंच भी उसी प्रकार उच्च स्तरों से सम्पर्क स्थापित करने तथा वहां के अधिष्ठाताओं से एकता करने के लिए आवश्यक होता है। शब्द और ध्वनि की यह यात्रा कहीं अधिक सूक्ष्म और महत्वपूर्ण है; उस यात्रा की अपेक्षा जो अंतरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा अथवा चंद्रमा के लिए की जाती है। मनुष्य को भलीभांति समझ लेना चाहिये कि उन इन्जीनियरिंग कौशलों की अपेक्षा अपने अन्तरतम प्रदेश की यात्रा और उस क्षेत्र के खजाने की खोज कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यह आँतरिक यात्रा प्रेम का प्रसार करती है; जब कि अन्तरिक्ष की यात्रा में महाद्वीपों में भय और आतंक की भावना भरती हैं। मनुष्य अपने रोगों को गलत समझ रहा है और व्यर्थ में औषधियों के पीछे दौड़ रहा है। अथवा यों कहिये कि अपने स्वास्थ्य के सिद्धान्त को ही गलत समझ रहा है। वह पूर्णतया स्वस्थ है, परन्तु उसे भ्रम है कि वह अस्वस्थ है। और शीघ्रातिशीघ्र उसे सर्वव्याधिक हर औषधि, जिसे किसी भी कठवैद्य या "बनबैठे डाक्टर" ने बताया हो, लेने की शीघ्रता करते हैं। ऐसे चिकित्सक ऐसी "रामवाण" औषधि को आपको आग्रहपूर्वक, चापलूसी भी करके, खिलाते हैं। ज्ञान के प्राप्त होते ही मनुष्य को बोध होता है कि ऐसी कोई बीमारी तो है ही नहीं।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की चार अवस्थायें होती हैं, शैशवावस्था, तरुणाई, अधेड़ और वृद्धावस्था। इसी प्रकार उसकी ज्ञान प्राप्ति की भी चार अवस्थायें भी इन्हीं के समकालीन होती हैं। जिस प्रकार वृक्ष में पुष्प की प्रथम झलक से लेकर फल की पक्वावस्था तक कई स्थितियाँ बदलती हैं उसी प्रकार ज्ञान को फल की परिपक्वावस्था समझना चाहिये। यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया होती है। पहली अवस्था नौसिखिये की अवस्था होती है; जबकि उसे माता-पिता, गुरुजन और अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है; तब उसे मार्ग-दर्शन, नियमन, सम्बोधन और झिड़की भी दी जाती है। दूसरी अवस्था निम्न कारीगर की होती है जब कि वह समाज में न्याय और सुख की प्रतिष्ठा करने के लिए उत्सुक होता है, वह संसार के मापदण्ड, मूल्य और मान को जानने को उत्सुक होता है। तीसरी अवस्था कारीगर की होती है जो मानव समाज के सुधार, पुनर्निर्माण, नवीनीकरण के लिये नवीन-शक्तियों की धारा बहा देता है। चतुर्थावस्था 'स्वामी' की होती है; जबकि ऐसा अनुभव होता है कि संसार का सुधार मानव-प्रयत्नों से असम्भव है; अधिक से अधिक संसार का सुधार करने के बहाने मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है; यह सब उसी प्रभु की इच्छा से हो रहा है। वह ही स्वयं इस संसार के रूप में अपनी ही कृति है। इस प्रकार के ज्ञान के उदय के साथ ही, इस ज्ञान के प्रकाश में अपनी सभी क्रियाओं को सम्पन्न करने की तीव्र इच्छा भी उत्पन्न होनी चाहिये। जब आप यह अनुभव करते हैं कि वही प्रभु सभी की अन्तरात्मा में स्थित है तो आप एक दूसरे की पूजा भी उसी अनुराग और उत्साह से कर सकते हैं जैसे श्रद्धा से किसी मूर्ति की पूजा देवालय में करते हैं। चूंकि मूर्ति पूजा अधिक सुगम और सुकर होती है इसीलिए उसी की संस्तुति की जाती है। परन्तु मूर्ति पूजा में भाव यही होना चाहिये कि वही प्रभु जो इस मूर्ति में है; वही इस दृश्यमान जगत में सर्वत्र और प्रत्येक वस्तु व प्राणी में है। अपने सभी कार्यों को समत्व-बुद्धि से अनुप्राणित रखो।

परन्तु अपने सभी कार्यों को सभी के समान अथवा सभी के लिए मत करो। एक उस्तरे को, पेन्सिल बनाने, हजामत करने, सब्जी काटने और लकड़ी के तख्ते को समतल करने के लिए बिना विचारे प्रयोग नहीं कर सकते। एक भिक्षुक भिक्षान्न और राजा शत्रुओं पर विजय के लिए याचना करते हैं, भगवान की दृष्टि में दोनों ही "याचक" हैं। क्या राजा को आध्यात्मिक मूल्यों का समुचित ज्ञान है ? इसकी परीक्षा करने के लिए एक बार भर्तृहरि और गोपीचन्द दोनों ही राजा के दरबार में गये और सन्देशा भिजवाया कि उन्हें रोटी की बड़ी आवश्यकता है। इतने बड़े महानुभाव उसकी राजधानी में पधारे हैं ! यह सोच कर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उचित मात्रा में रोटी उनके पास भेजी गई, फिर भी उसके बंटवारे में वे दोनों झगड़ने लगे। जब इसकी सूचना राजा को मिली तो उसने तत्काल निर्णय दिया कि ये साधु भर्तृहरि और गोपीचन्द नहीं हो सकते। उसने कहा कि उनमें लोभ और ईर्ष्या का तो लेशमात्र भी नहीं हो सकता। इस प्रकार साधुओं ने जान लिया कि राजा बुद्धिमान है।

गीता में "सर्वधर्मान् परित्यज्य" पाठ करके एक उत्साही साधक ने अपने सभी धर्म-कर्म, नित्य व नैमित्तिक कर्तव्य कर्मों का त्याग कर दिया परन्तु यह बताना ही पड़ा कि उसे एक कर्तव्य पूरा करना है जिसे वह त्याग नहीं सकता यदि वह भगवान की कृपा प्राप्त करना चाहता है "माम् एकम् शरणं व्रज"। 'केवल एक मेरी शरण में आ जा'। जब शरणागति पूर्ण हो जावे, अर्थात् सभी इच्छायें, वाणी और कार्य अपने सभी फलों के साथ प्रभु के लिये ही अर्पित हो जावें तभी जैसा कि प्रभु ने प्रतिज्ञा की है, वे तुम्हें सभी पापों और दुःखों से मुक्त कर देंगे। आश्रम-धर्म, वर्ण-धर्म, सभी विभिन्न कुल धर्म और देशाचार इस समर्पण भाव को जगाने और पुष्ट करने के साधन हैं। जिस प्रकार विभिन्न व्यवसायों के लिए निम्नतम योग्यताएँ निर्धारित कर दी जाती

हैं; उसी प्रकार प्रभु-कृपा के लिए भी निम्नतम योग्यता के रूप में अहंकार, त्याग, इन्द्रिय संयम और सीमित आहार-विहार भी अपेक्षित है। मनुष्य संगति के अनुसार ही बनता, बिगड़ता है। एक दुर्जन सत्संगति में पड़कर अपनी दुष्टता त्याग कर शीघ्र सद्‌गुणों को प्रकाशित करने लगता है। इसी प्रकार एक सज्जन जब कुसंग में पड़ जाता है तो वह कुसंगति के सूक्ष्म प्रभाव से पतित होकर दुष्टता के कार्य करने लगता है। अल्प प्रभावी सदा ही प्रभावशाली से दब जाता है और तदनुकूल ढलने लगता है। एक बूंद खट्टे जामन से ही दूध दही के रूप में बदलने लगता है। उसको मथने से मक्खन और छाछ अलग-अलग हो जाते हैं।

धार्मिक शास्त्र भी इस परिवर्तन प्रक्रिया के हेतु बड़े मूल्यवान सहायक होते हैं; परन्तु उनका अध्ययन, मनन करते हुए उनके पाठों को दैनिक चर्या में व्यवहार में लाना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के लिए दीक्षा के समय गायत्री मंत्र को कान में गोपनीय ढंग से फुस-फुसाकर कहा जाता है। सर्वोच्च बुद्धि तत्व की, जो इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्यापक है, आराधना का वैदिक मँत्र गायत्री है; जो साधक में ज्ञान की ज्योति के बुद्धि को, जगाती है। यह वह प्रार्थना है जिसे आकांक्षा के साथ सभी देशों के स्त्री, पुरुष, चाहे वे किसी मजहब के क्यों न हों, सभी ऋतुओं में, कर सकते हैं; परन्तु कुछ लोग इसकी निन्दा, शब्दजाल निरर्थक आदि कह कर करते हैं; यद्यपि उन्हें भी इसकी दीक्षा मिली होती है, वे इसकी उपेक्षा करते हैं इस मंत्र के जाप से बुद्धि का विकास होता है।

जब मनुष्य का मन जीवन के उत्थान-पतन से निर्लिप्त रहता है और प्रत्येक अवस्था में समत्वावस्था में स्थित रहता है तो शारीरिक स्वास्थ्य भी उत्तम रहता है। मानसिक क्षेत्र आकाश की भांति होना

चाहिए जो कोई भी शब्द नहीं सुनता है यद्यपि उसमें होकर इतने वायुयान और पक्षी और बादल घहराते हुए आवागमन करते हैं। बीमारियाँ प्रायः शारीरिक भोज की अपेक्षा अपौष्टिक मानसिक भोजन से अधिकतर उत्पन्न होती हैं। डाक्टर लोग विटामिन्स की कमी बतलाया करते हैं; मैं इसे विटामिन 'जी' (अंग्रेजी भाषा के शब्द गॉड-प्रभु का प्रथम अक्षर) की कमी कहूँगा और भगवन्नामजप करने की संस्तुति करूँगा साथ ही भगवान की महिमा और उसकी कृपा का चिन्तन भी किया जावे। यही विटामिन 'जी' है। यही औषधि है; संयमित जीवन और स्वभाव ही २/३ उपचार हो जाते हैं जबकि औषधि का महत्व निरोग करने में केवल १/३ ही होता है।

मनुष्य में प्रेम, विनम्रता, विरक्ति और संतोष जैसे दैवी गुणों का प्रकाश होना ही चाहिए। यदि वह इन गुणों को नहीं प्रदर्शित करता है तो वह पशु से भी अधम और भयंकर रूप से घातक हो जाता है। एक कुत्ता था जिसने राम से अपने पुष्पक यान में स्थान देने की प्रार्थना की थी जब कि वे अयोध्या को लौट रहे थे। जब राम ने इस विचित्र व्यवहार और प्रार्थना का कारण पूछा, तो उसने कहा कि मनुष्य तो पिस्सुओं और कीड़ों से भी गया बीता हो गया है। उसने तो कुत्तों को भी, जो सदा स्वामिभक्ति से उसकी सेवा करते रहे हैं, सताना प्रारंभ कर दिया है। व्यक्ति को अपना जीवन इस प्रकार बिताना चाहिए कि उसके किसी कार्य से अन्य व्यक्ति अथवा प्राणियों को कोई कष्ट न पहुँचे। और व्यक्ति को अपने कृपालुओं के प्रति सदैव कृतज्ञ रहना चाहिए। जमदग्नि के द्वारा कार्तवीर्य की बड़ी आवभगत की गई थी परन्तु उस दुष्ट ने तो कामधेनु, जिसके द्वारा इतनी अधिक आवभगत संभव हुई थी, को ही हथियाना चाहा! अपनी रानी की मृत्यु पर भर्तृहरि को इतना शोक हुआ कि वह श्मशान में ही अनेक दिनों तक रोते-कलपते रहे। उनकी अधैर्य्य पूर्ण स्थिति को देखकर एक महात्मा उनके पास

पधारे उनके हाथ में एक मिट्टी का पात्र था। शोकार्त भर्तृहरि के सामने ही उनका वह पात्र हाथ से गिर कर चूर-चूर हो गया। महात्मा भी अधैर्य्य वान् बनकर रोने और विलाप करने लगे। भर्तृहरि ने उन्हें धीरज बँधाया और कहा कि अब रोने से पात्र पूर्व अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता कितना ही विलाप क्यों न किया जावे। एकाएक उन्हें अपने व्यवहार की मूर्खता का भान हो गया और उन्होंने स्वयं भी रोना, चिल्लाना बंद कर दिया; यही तो महात्मा के अभिनय का उद्देश्य था।

आप लोग पर्ती पधारते हैं, इन प्रवचनों को सुनते हैं, सहमति सूचक सिर हिलाते हैं और प्रशंसा में भर कर तालियाँ बजाते हैं। परन्तु जब आप फाटक से बाहर निकल कर घर की ओर मुँह मोड़ते हैं यह सब वाष्प बनकर उड़ जाता है। अथवा यहाँ सीखे हुए ज्ञान को अविवेक से सर्वत्र प्रयोग में लाते हैं तब भी परिणाम में आप कष्ट ही पाते हैं। एक व्यापारी था जो सत्संग में प्रवचनों को सुना करता था। जब उसने एक वक्ता के उपदेश में सुना कि गायों को, जब वे चर रही हों, हाँककर भगाना अनुचित होता है। जब एक गाय उसकी दूकान में घुसकर विक्रयार्थ रखे हुए अन्न का अधिकाँश भाग खा गई तो वह केवल देखता ही रहा। बाद में उसे बतलाया गया कि उपदेश की प्रत्येक बात को सब जगह और सभी अवसरों पर उपयोगी और सत्य नहीं मानना चाहिये। उसने अपने पुत्र को शिक्षा दी, "देखो, तुम एक तौलिया बिछाकर भूमि पर बैठकर प्रवचन को सुन रहे थे, है न ऐसी बात ? जब प्रवचन समाप्त हो जाता है तुम उठ खड़े होते हो तब क्या तुम तौलिया में लगी धूलि को गिराने के लिए उसे जोर से हवा में झाड़ते नहीं हो ? इसी प्रकार घर लौटने से पूर्व ही प्रवचन की सभी शिक्षाओं को अपने मन से झाड़कर अलग कर दिया करो।" यदि आप भी उसी व्यापारी की शिक्षा और परामर्श पर आचरण करें तो फिर यहाँ आने, ठहरने, प्रवचन सुनने और व्यर्थ की थकान भोगने से क्या लाभ होगा ?

प्रशान्ति निलयम दशहरा २७-९-६५

११

दक्षिण और वामपाद

वेद-शास्त्र मानव के पथ को आलोकित कर पथ-प्रदर्शन करते हैं; परन्तु अन्धे के लिए तो सदा अन्धकार ही रहेगा चाहे कितना ही तीव्र प्रकाश क्यों न हो। जो विश्वास खो चुके हैं; उन्हें लड़खड़ाते हुए, गिरते पड़ते जीवन यापन करना ही पड़ता है। वेद शास्त्र तो स्थायी आनन्द प्राप्ति का रहस्य बतलाते हैं; परन्तु मानव तो आनन्द की छाया, क्षणस्थायी सुख, वे सुख जो सदा संकटों में डालने वाले हों, की ओर झपटते हुए प्रयत्न कर रहा है। वह तो चलनी के द्वारा कुएं से पानी भरना चाहता है। जिस आनन्द को वह प्राप्त करता है उसे इन्द्रियों के द्वारा खो देता है। ये इन्द्रियाँ तो उस जंगली अशिक्षित नौकर की तरह हैं जो मालिक अर्थात मन पर ही धौंस जमाता है। इन मन को ही आपको अपने आधीन करना है तब इसकी नौकर इन्द्रियाँ आपके चरणों में लौटेंगी। मन राजा होता है और इन्द्रियाँ उसके सैनिक हैं। अभी तो सैनिक राजा पर शासन चला रहे हैं क्योंकि वह उनकी बातों में आ जाता है और अपने प्रधान मंत्री, बुद्धि की उपेक्षा करता है। बुद्धि को शासन सूत्र हाथ में लेने दीजिए, इन्द्रियाँ तो क्षण भर में ही अपने यथास्थान पर आ जावेंगी और मन अपनी रक्षा कर सकेगा। आत्मा हृदयाकाश में चमकने वाला सूर्य है। सूर्य का प्रकाश विषय-वासना रूपी बादल के बीच में आ जाने के कारण अवरुद्ध हो जाता है, इस बादल को पश्चाताप रूपी प्रचण्ड आँधी से छिन्न-भिन्न कर दो जिससे आत्मा का तीव्र प्रकाश सदा आलोकित रहे। मनुष्य सोचता है कि वह सुखोपभोग कर रहा है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि

सुखोपभोग मनुष्य को ही भोग रहा है अथवा भुगताये दे रहा है क्योंकि वे उसकी शक्ति को क्षीण करते हैं, उसके विवेक को सुखाये दे रहे हैं; उसकी आयु को क्षीण कर रहे हैं, उसके मन में अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लोभ और आसक्ति के कीटाणुओं को उत्पन्न कर देते हैं। क्षणिक भावावेश में आकर आपको किसी कार्य में नहीं लिप्त होना चाहिए पहले अच्छी तरह गम्भीरता से उस कार्य से संभावित हानि-लाभ पर विचार करो संभावित हानि-लाभ में किसका पल्ला भारी है; तब कोई कार्य करो जिसमें न तो स्वयं कष्ट पाओ और न दूसरों को कष्ट दो। यह आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों ही क्षेत्रों के लिए समान रूप से सत्य सिद्धान्त है। किसी स्त्री ने किसी की "तत्त्वमसि" की व्याख्या और पुष्टि करने का प्रवचन सुना, उसने इसे तत्काल अपना लिया और ऐसा व्यवहार करने लगी मानो उसे अब इसके बाद खाने, पीने, समाज और परिवार की कोई आवश्यकता ही न रह गई हो। 'तत्त्वमसि' से "भावाद्वैतम्" नकि 'कर्माद्वैतम्' की प्राप्ति होती है क्योंकि जब आप कर्म-क्षेत्र में उतरते हैं तो द्वैत अपरिहार्य होता है।

भगवान् के सगुण और निर्गुण रूप भी साधकों के मन में यही सन्देह उत्पन्न करते हैं क्या यह दोनों कथन सत्य हैं। यह तो पिघले और जमे हुए घी के समान है। वर्फ और पानी एक ही वस्तु है। जिस पात्र में जल रखा जाता है उसी का आकार धारणा कर लेता है। वह तो आकारहीन है। परन्तु, फिर भी वर्फ और जल में कोई भेद नहीं है। साधना में, सगुण की अर्चना और निर्गुण का ध्यान यात्रा के लिए दाहिने और बांएं चरणों के समान हैं। सगुणोपासना में भी मौलिक निर्गुण ब्रह्म सदा मन को अधिकृत किये रहता है। उसकी महिमा वर्णनातीत है। उसकी महानता किन्हीं शब्दों में पूरी तरह नहीं प्रकट की जा सकती है। निर्गुण के ध्यान के समय, यह विश्वास कि सगुण रूप धारण करने पर भी भगवान की महत्ता और महिमा में कोई कमी

नहीं हो जाती है उसके नाम और रूप ही साधना को शक्ति देते रहते हैं। अन्तिम कदम तो दाहिने चरण द्वारा, निर्गुण ब्रह्म के ध्यान से, ही यात्रा पूर्ण करना शुभ होता है।

उस नाम-रूप-हीन में ही अंतिम रूप से जीव का लय होना निश्चित है तब जीव को भी नाम रूप से रहित होना पड़ता है। सभी को अंतिम स्थिति में निर्गुण में ही लय होना है। परन्तु कुछ लोगों का यह भी कथन है कि चूंकि जीव तो जन्म-मृत्यु आवागमन के चक्र में पड़ा हुआ है अत: यह शाश्वत से कभी भी एकाकार नहीं हो सकता इसे तो सदा सर्वदा प्रथक और भेद रूप में ही रहना है। चूंकि जीव पाप में उत्पन्न होता है, पाप में डूबा रहता है, पाप में ही आनन्द का अनुभव करता है; अत: अधिक से अधिक वह भगवान का साक्षात्कार मात्र ही कर सकता है, उनकी उपस्थिति में रह सकता है। एक बार ऐसे ही विचार रखने वाला एक व्यक्ति किसी गांव में गया और वहां यही प्रवचन दिया कि मनुष्य के लिए परब्रह्म में लीन होकर एकाकार होना असंभव है। श्रोताओं में से एक अद्वैतवादी खड़ा हो गया और कहा कि इतना तो यहां का एक साधारण और घोर निरक्षर व्यक्ति भी जानता है; यह तो हमारा धोबी भी कह सकता है। उसने धोबी को बुलाया और कहा "तुम कौन हो, मुझे सचसच बताओ।" वह बेचारा अचानक इस पूछ-ताछ से भयभीत हो गया और अपने संबंध में वही कहा, "मैं तो एक नीच पापी मात्र हूँ।" तब प्लेटफार्म पर आसीन पंडित की ओर मुड़कर अद्वैतवादी ने कहा, "जितना कुछ इस धोबी ने अभी कहा है उसके आगे भी कुछ कह सको तो कहो।" मनुष्य को सदा बन्धनों को तोड़कर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। पापों से रहित होकर, खोयी हुई महिमा को प्राप्त करने और उच्चतम महानता की स्थिति में होने का प्रयत्न करते रहना है।

वेद-शास्त्र सदा से एक ही बात की शिक्षा देते आ रहे हैं, जो लोग इसको उलट देना चाहते हैं; वही दूसरी बात का व्यवहार करते हैं। पाठशाला की एक कक्षा के अनेक छात्रों में से एक लड़का एक चुहिया का सामने की दीवाल के एक बिल में घुसना देख रहा था। एकाएक अध्यापक ने उसे संबोधित कर पूछ दिया "कहो कुछ अन्दर भी गया?" लड़के ने उत्तर दिया, "गुरुजी अभी तो पूँछ बाहर ही है" क्योंकि उसने यही समझा कि प्रश्न चुहिया के विषय में है जब कि गुरुजी ने अपने समझाये हुए पाठ के विषय में पूछा था। आज हिन्दुओं की भी यही दशा है। वे वेदों को सुनते हैं परन्तु उनका ध्यान सदा संसार के झूठे वैभव, क्षुद्र समस्याओं, विश्व रंगमंच पर अल्प काल के लिए फुदक कर अदृश्य होने वाले व्यक्तियों की ओर लगा रहता है। शास्त्र तो साधना के चरणों का उल्लेख करते हैं, जिससे मनुष्य को शान्ति, सन्तोष और आनन्द प्राप्त हो सकते हैं।

सबसे प्रथम कदम के रूप में आप अपने हृदय रूपी उद्यान से काम, लोभ, घृणा और अभिमान की घास, कांटे, झाड़-झंखाड़ को जड़ से उखाड़ कर स्वच्छ कर डालो। तब इस स्वच्छ पवित्र भूमि में सुगंधित फूलों वाले प्रेम के पौधे लगाओ जिनमें धर्म के मीठे और रसीले फल लगेंगे।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा २८-९-६५

—०—

१२

नीरवता और एकान्त

मनुष्य जीवन के प्रवाह में, एक कर्म से दूसरे कर्म तक यात्रा करता हुआ, बहा जा रहा है; यह एक निरंतर गतिमान प्रवाह है जिसमें कर्म की विशिष्टता है। परन्तु दुख की बात है कि मनुष्य कर्म की सही प्रक्रिया (टेक्नीक) नहीं जानता है। फसल तो बीज भूमि, खाद, रक्षण और पोषण के अनुकूल ही होती है। कर्म फल को विगत जन्मों की प्रवृत्तियों, परिणामों और कार्यों के लेखा से भी प्रभावित होना पड़ता है। कुम्हार मिट्टी लेकर बर्तन बनाता है वे 'मृन्मय' (मिट्टी से युक्त) होते हैं। ब्रह्म रूपी कुम्हार मनुष्यों का निर्माण करता है वे "चिन्मय" सत् चित् और आनन्द की प्रकृति वाले होते हैं। इस भेद को समझो और अपने कार्यों को उसी के अनुसार रूप दो। जो कुछ आप अपने को मानते हो उसी के अनुसार आचरण करो, यही वास्तविक धर्म है।

एक कुशल अभिनेता संन्यासी के वेष में राजा के दरबार में गया। राजा ने उसे एक पहुँचा हुआ साधु मानकर आदर सत्कार किया और उससे दर्शन शास्त्र तथा साधना संबंधी अनेक प्रश्न किये, जिनके उसने विषयानुकूल शब्दों का प्रयोग करते हुये, योग्यतापूर्वक उत्तर दिये। राजा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने मंत्री को एक थाल भर स्वर्ण मुद्रायें संन्यासी को भेंट करने की आज्ञा दी। संन्यासी ने वह भेंट अस्वीकार कर दी। उसने कहा कि "सर्वसंगपरित्यागी"—जिसने सभी आसक्तियों और इच्छाओं का त्याग कर दिया हो, इन की ओर देखना भी नहीं चाहेगा और यह कहकर चल दिया। दूसरे दिन वही अभिनेता एक नृत्यां-

गना के रूप में महल में आया। उसका नृत्य, कला का उत्तम प्रदर्शन था पूर्ण शास्त्रीय और त्रुटिरहित। राजा ने इस नृत्य की बड़ी प्रशंसा की और उसके पुरस्कार के लिए मंत्री जी एक थाल भर स्वर्ण मुद्रायें लायें। नृत्यकार ने कहा कि ऐसे उत्तम नृत्य का यह पुरष्कार अत्यन्त तुच्छ है और उसको अस्वीकार कर दिया। राजा को लगा कि यह तो कल वाला संन्यासी ही उसके समक्ष नृत्यांगना के रूप में खड़ा है। अपने अनुमान को सत्य पाकर राजा ने पूछा कि जब गत दिवस उसने धन को अस्वीकार कर दिया था तो आज उसी धन को क्यों और अधिक मांग रहा है। अभिनेता ने उत्तर दिया कि गत दिवस वह 'संन्यासी' के रूप में था इसलिए यह उसका उस दिन का धर्म था कि धन का त्याग करे; और आज तो वह नृत्यकार है इसलिए आज वह अधिक से अधिक जितना हो सके, अपने प्रशंसकों से धन प्राप्त करना चाहेगा।

मानव का धर्म यही है कि वह ब्रह्माण्ड के मूल तत्व से अपनी आत्मा के एकीकरण के महान साहसिक कार्य की पूर्ति के लिए अपनी क्षमताओं का विकास करे। ब्रह्माण्ड का वह मौलिक तत्त्व यद्यपि उपाधि रहित है फिर भी प्राय: भ्रम से उसके नाम-रूप-कार्य की कल्पना की जाती है। यह वेद के महावाक्य में वर्णित है और जिसकी व्याख्या उपनिषदों में की गयी है। अपने मन और बुद्धि को उसी एक पर केन्द्रित करने के लिए मनुष्य को नीरव एकान्त में गुरु के निर्देशन में उसका ध्यान करना ही चाहिए। यदि अध्यापक अपने प्रश्नों का स्वयं ही उत्तर दे ले तो फिर शिष्य कैसे उन्नति कर सकेगा? यदि शिष्य को अपने आप पर ही छोड़ दिया जावे, तब भी वह असहाय हो जावेगा। यदि उसे, जो कुछ भी वह कर सके, लिखने दिया जावे तो वह "चिल-विलैयाँ" ही कर पावेगा। इसीलिए कभी-कभी अध्यापक को उसका हाथ पकड़ कर भी लिखवाना पड़ता है और इस प्रकार वह शिष्य को लिखने का ढंग सिखाता है।

इस प्रकार हस्तकला और मानसिक दक्षता को, गुरु के पथ प्रदर्शन करने वाले हाथ के द्वारा, सबल बनाया जाता है। शिष्य को एकाग्रता की साधना करनी होती है । जब ध्यान विभिन्न दिशाओं में जाता है; तो कोई प्रगति नहीं हो सकती है। एक योग्य और श्रेष्ठ गुरु शिष्य को प्यार करता है, उसका पग-पग पर मार्ग-दर्शन करता है ।

नीरव एकान्त में ध्यान का अभ्यास करते-करते मनुष्य समय पाकर अपने हृदय में भी नीरवता और एकान्त को प्रतिष्ठित कर लेता है फिर वह चाहे सर्वाधिक व्यस्त और कोलाहलपूर्ण चौराहे का स्थान ही क्यों न हो । आजकल प्रायः घरेलू मंदिर या पूजा-घर रसोई-घर से संलग्न ही होते हैं जहाँ से भोज्य पदार्थों की सुगन्ध सीधे नथुनों पर आक्रमण करती है, छौंकने-बघारने की ध्वनि कानों पर आक्रमण करती है, मन ध्वनियों और आवाजों से विचलित हो जाता है । ऐसे वातावरण में एकाग्रता किस प्रकार विकसित या दृढ़ की जा सकती है ? नीरवता तो अपने से ही प्रारम्भ की जानी चाहिए । अर्थात् स्वयं ही बात कम करे, विवेचन करते हुए सोचे अधिक, ध्यान से विचारे । व्यक्ति को अपने मन से द्वेष भाव, पूर्वाग्रह और पक्षपात निष्कासित कर उसे रिक्त बनाना चाहिए । तभी वह अपने निज रूप या धर्म तक पहुँच सकेगा जो कि दैवी और धर्म स्वरूप है ।

बालक बालिकाओं में सरल-स्वभाव या सहज वृत्ति होती है क्योंकि उस अवस्था में मनुष्य पर किसी प्रकार की आकर्षण-शक्ति कार्य नहीं करती है; न तो उसे किसी प्रकार का प्रलोभन या दबाव या इन्द्रियाकर्षण ही होते हैं । इसीलिए वह आत्म-भाव में मग्न रहता है, अर्थात् आनन्द-शक्ति और प्रेम से युक्त होता है । उसी स्थिति को दृढ़ करो और धार्मिक जीवन बिताओ। मानव का यही स्वधर्म है। धर्म उन्हीं की रक्षा करता है जो इस पर निर्भर करते हैं । "धर्मो रक्षति रक्षितः" ।

इसी कारण तो पाकिस्तान का संघर्ष २२वीं तिथि को ही समाप्त हो गया। यह नवरात्रि का त्यौहार है जबकि जगदम्बा की, दुर्गा की, जिसने दुष्टों की शक्ति को पराजित तथा नष्ट किया था, आराधना की जाती है, उसको प्रसन्न किया जाता है, इसीलिए इस त्यौहार का आयोजन यहाँ स्थगित नहीं किया गया था। जैसा कि अन्य लोगों ने अन्यत्र किया था। उन्हें नहीं ज्ञात था कि संघर्ष शीघ्र समाप्त हो जावेगा।

निज-स्वरूप के बोध के लिए, उस दैवी शांति में स्थित होने के लिए। किसी को तपस्या करने या संसार त्याग करने की आवश्यकता नहीं है। एक बार एक गुरु थे उन्होंने एक साधक को जंगल में जाकर रहने का परामर्श दिया। उन्होंने कहा "गच्छ" जाओ, "तुम्हें बाजार के चौराहे पर शान्ति कहां धरी है?" दूसरे साधक से उन्होंने कहा, "तत्रैवतिष्ठ" जहाँ हो वही रहो। दोनों साधकों की भेंट हो गई और उन्होंने विचार विनिमय किया। "उन्होंने हम लोगों को परस्पर विरोधी परामर्श क्यों दिए? कदाचित हम लोगों के सुनने में ही कुछ भ्रम हो गया हो।" ऐसा सोच कर वह पुनः गुरु के पास पहुँचे। परन्तु उन्होंने कहा कि उनका परामर्श तो प्रत्येक की तब तक की उपलब्धि के आधार पर था और वही उसके लिए सर्वोत्तम उपाय था।

विरक्ति अथवा वैराग्य तो एक दुर्लभ लाभ होता है। व्यक्ति या तो इसे घर में रहते हुए ही; अथवा जंगल में प्राप्त कर सकता है। जब शिवाजी तुकाराम से भेंट करने गये तो अपने साथ एक सुसज्जित पालकी ले गये जिसमें वे तुकाराम को अपने साथ ही राजधानी में लाना चाहते थे। तुकाराम उदास हो गये। "आप इस स्ट्रेचर (घायलों और रोगियों का वाहन) को क्यों लाये हैं? ये लोग इस पर किस लाश को ले जावेंगे? उन्होंने व्यंग्य पूर्वक पूछ लिया। तुकाराम को संत-धर्म का ज्ञान था वैभव के प्रलोभन में फँस जाने के संकटों से वे परिचित थे।

जिसका मन सत्य पर दृढ़ रहता है ऐसे भक्त से श्रेष्ठतर कोई नहीं होता। वह तो सम्राटों से भी ऊपर होता है। जहां तक मेरा प्रश्न है; मैं भक्त का विशेष ध्यान रखता हूँ। फिर भी, आपको आश्चर्य होता है कि क्यों कुछ लोगों को विशेष स्थान और आसन यहां दिये जाते हैं। क्या आपने यह लोकोक्ति नहीं सुनी है कि "यथा राजा तथा प्रजा"। शासकों को यहां लाना होता है जिससे वे भी देखें और सुनें और वस्तुओं और मामलों को समझें। वायु में जो भक्ति सुरभित है उससे प्रेरणा लें, जिससे उनके माध्यम से देश के सर्वसाधारण भी लाभान्वित होवें। वे लोग जो कानून बनाते हैं, और जिस प्रकार शासन चलाते हैं; यह कुछ ऐसे साधन हैं कि जिनके द्वारा राष्ट्र के आदर्शों की प्राप्ति के हेतु अग्रसर हुआ जाता है। आप ही ने उनका निर्वाचन इसलिए किया है। उन्हें आपका विश्वास प्राप्त है और हजारों लोगों का समर्थन और सहमति प्राप्त है; इसलिए उनका विशेष रूप से ध्यान रखना होता है। हजारों लोग उन पर श्रद्धा करते हैं इसीलिए उनका सम्मान, उन हजारों का ही सम्मान है। भक्तों को आनन्दित करने के लिए ही मैं इस त्यौहार का आयोजन करता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी कोई इच्छा नहीं। अपने विश्वास के निर्मल स्वच्छजल को किसी भी प्रकार के लेशमात्र सन्देह से गंदला मत करो।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा २९-९-६५

—०—

१३

मूल्यार्पण करो

मानव मस्तिष्क का गठन विचित्र ही है कि वह समाचार-पत्रों और बाजारू अफवाहों में तो विश्वास कर बैठता है; परन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता में, अथवा व्यास ने श्रीमद्भागवत में, जो कहा है उसे मानने से इनकार करता है। यह इसलिए होता है कि समाचार-पत्र उसकी वृत्तियों को, अन्य व्यक्तियों और उनके मामलों में जिज्ञासा की सनसनी पूर्ण ढंग से पढ़ने की सनक को तृप्ति प्रदान करते हैं। मनुष्यों में जीवन के मूल्यों का ऐसा पतन और विपर्यय हो गया है कि वह गीता का स्वाध्याय करने का समय नहीं पाता है और न इच्छुक ही होता है परन्तु समाचार-पत्र के पृष्ठों का बड़ी रुचि और सावधानी से अध्ययन करता है। यह तो केवल अज्ञान, उल्टी बुद्धि, अथवा दुर्भाग्य के ही कारण ही होता है। लोग अपने कानों को और विवेक-शक्ति को सदा पापों में रत दुष्टों और कुचक्रियों के निमित्त बचाये रखते हैं। उन्हें उन्हीं के अनुकूल ही प्रशंसक मिल जाते हैं; जो उनका अनुसरण कर उन्हीं के समान वातावरण को दुर्गन्धित करते रहते हैं।

जीवन के मूल्यों के अवमूल्यन, क्या महत्त्वपूर्ण है और क्या महत्त्व-हीन है इसके अज्ञान से, जो कुछ ऋषियों और गुरुजनों ने अपने चिर संचित युगों-युगों के ज्ञान के रूप में हमें उत्तराधिकार में दिया है उसमें अविश्वास के कारण आज भय और चिन्ता मानवता को संत्रस्त किये हुये हैं। लोग श्रेय की अपेक्षा प्रेम की ओर अधिक आकर्षित हो रहे हैं। रोगी डाक्टर को बाध्य करता है और आग्रह कर रहा है कि वह किस

प्रकार की औषधि वटिका (गोली) निगलना पसंद करता है और कैसा पथ्य लेने से प्रसन्न रहेगा।

जिन लोगों को जीवन के उच्च मूल्यों का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता है प्राय: वे ही लोग मूर्खतापूर्ण प्रश्नों और सन्देहों को उठाते हैं। आप, जिन्होंने सर्वोत्कृष्ट और महानतम दार्शनिक ग्रन्थों और शास्त्रों को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है, उन संशयात्माओं के समक्ष उस ज्ञान को रखने से इसीलिए हिचकिचाते हैं क्योंकि आप को स्वयं ज्ञान नहीं है कि उनमें क्या है और न उस ज्ञान को अभ्यास और आचरण में लाये हैं अथवा उसके प्रभाव को अनुभव किया है। ऐसे भी अपने को भारतीय कहने वाले मिलेंगे जिन्हें यह पता नहीं है कि राम कौन है और जो उनकी रानी को श्रीमती राम बता देते हैं क्योंकि उन्हें राम की पत्नी का नाम ही नहीं ज्ञात है। ऐसे लोगों के पास चाहे इतनी डिग्रियाँ और उपाधियाँ हों जितने कि मेरे सिर पर बाल हैं फिर भी वे इस देश की सन्तान कहलाने के अयोग्य हैं। चाहे कितनी भी असीम धन-संपत्ति हो, वह बढ़िया से बढ़िया मोटर कार अथवा यान में चढ़े-चढ़े घूमे और बहुमंजिला भवन में निवास करें, परन्तु इन सबसे होता क्या है ? अपने मस्तिष्क को अभिनेता तारक-तरिकाओं के अथवा पुरस्कार के लिए द्वन्द विजेताओं के नामों और कारनामों से भरते रहने में क्या लाभ है? रमन महर्षि, अपने सभी भेंटकर्त्ताओं से प्रत्येक से यही कहते थे 'आत्मानं विद्धि' "अपने को जानो।" जब आपसे कोई पूछता है "आप कौन हैं ?' बिना किसी अपवाद से आप उस नाम को बता देते हैं जो किसी ने आपके ऊपर लेबिल की तरह चिपका दिया है। परन्तु वास्तव में आप हैं कौन ? क्या आपने कभी इस प्रश्न को गहराई, सच्चाई के साथ खोज निकालने का प्रयास किया है।

विषय वासनाओं के पीछे भागने से ही यह असन्तोष उत्पन्न होता है। वह वासना—उस प्रकार की इच्छा, अन्तहीन होती है। एक बार

आप इन्द्रियों के दास होकर देख लो वे फिर मृत्यु पर्यन्त अपनी पकड़ ढीली न करेंगी। यह तो कभी न बुझने वाली प्यास होती है। परन्तु मैं तो तुम्हें अपने पास बुलाता हूं, और सांसारिक वस्तुयें भी वरदान में दे देता हूं; जिससे कि तुम्हारा मुंह भगवान की ओर मुड़ जावे। इससे पूर्व किसी अवतार ने ऐसा नहीं किया है। मैं लोगों में, लाखों जनता में जाता हूं, उनको परामर्श देता हूं, मार्ग-दर्शन प्रदान करता हूं, सान्त्वना देता हूं, उठाता हूं और सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति के मार्ग पर चलाता हूं। आपको आश्चर्य होता होगा कि क्यों मैं आप लोगों को पुष्प, फल अथवा भेंट स्वरूप अन्य वस्तुएं लाने का निषेध करता हूं। आप तर्क भी करते हैं कि "गीता भी तो कहती है कि जब भगवान् या स्वामी के दर्शनों को जाओ तो कुछ न कुछ लेकर ही जाओ, कभी भी पूज्य लोगों, सन्तों के समक्ष रिक्त-हस्त न जाओ।"

यहां इस प्रशान्ति निलयम में भक्तों को पत्रम्, पुष्पम्, फलम्, तोयम् चारों को नहीं लाना चाहिए। निस्सन्देह मैं आप लोगों की भेंट स्वीकार करता हूँ, परन्तु मैं चार अन्य वस्तुओं की सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम को भेंट रूप में स्वीकार करता हूँ। आप इन चारों को अथवा किसी एक को भेंट में लाइये मैं बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूंगा। यदि आप कोई वस्तु चाहते हैं तो उसका मूल्य भी चुकाइये जो आपकी अभीष्ट वस्तु के मूल्य की हो। एक पैसे में मूल्यवान बनारसी साड़ी को तो नहीं खरीदा जा सकता। यदि आप दिव्य वस्तु चाहते हैं तो दिव्य मूल्य भी देना होगा। प्रेम, शान्ति, धर्म और सत्य दिव्य हैं। आप अपने अभीष्ट को एक पुष्प देकर, जो मुर्भा जाता है, एक फल देकर, जो सड़ जाता है, एक पत्ती देकर, जो सूख जाती है और जल चढ़ाकर, जो भाप बनकर उड़ जाता है, पाने का प्रयास मत कीजिये। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इस प्रकार लिखते या भाषण देते हैं कि मानो वे मुझे जान चुके हैं, और अब कुछ जानना शेष नहीं है। अच्छा, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ, वे

चाहे निरंतर एक सहस्र जन्म धारण करते हुए भी मुझे जानने का प्रयत्न करें तब भी वे मुझे कभी नहीं जान सकेंगे और न मेरी प्रकृति को ही समझ सकेंगे। मुझे जानने के लिए मुझ जैसा ही हो जाना पड़ेगा, इस ऊँचाई तक उठो ! क्या चींटियाँ समुद्र की गहराई को नाप सकती हैं ?

मेरे कार्य और गतिविधि कभी भी बदले अथवा रोके नहीं जा सकते चाहे कोई उनके विषय में कुछ भी मत क्यों न रक्खे। नीचता लोगों को मेरे वस्त्रों की खिल्ली उड़ाने को प्रेरित कर सकती है, मेरे आवरण, रंग, बालों की भी आलोचना की जाती है परन्तु मैं इस बकवास से लेश मात्र भी प्रभावित नहीं होता हूँ। मेरे प्रवचन, धर्म संस्थापन के उद्देश्य, मेरी गतिविधि में कोई परिवर्तन नहीं आवेगा। मैं गत २६ वर्षों से इस संकल्प को कार्यान्वित कर रहा हूँ। मैं शान्ति मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के निमित्त आया हूँ, वही मैं करता चला आ रहा हूँ। मैं इसको न तो बंद करूँगा और न एक कदम पीछे लौटूँगा। क्या कोई केवल चीथड़े धारण करने मात्र से ही अधिक पवित्र और धार्मिक व्यक्ति बन जाता है ? निस्सन्देह नीच व्यक्तियों ने, जो सूर्य की प्रखरता और उज्ज्वलता को सहने में असमर्थ होते हैं, युग-युग में मेरे ऊपर कीचड़ उछाली है। एक व्यक्ति ने ईर्ष्या और अहंकार से मतवाले होकर कृष्ण के समान वेष-भूषा बना ली और गदा और चक्र पकड़े हुए दो लकड़ी के हाथ भी और लगा लिये। वह वास्तविक कृष्ण को चुनौती देने की मूर्खता कर बैठा और अन्त में उसने इस धृष्टता का भयंकर मूल्य चुकाया। अन्धकार न तो प्रकाश का सामना कर सकता है और न उसे विजय कर सकता है। कृष्ण तो प्रेम स्वरूप है; उन्हें प्रेम के ही द्वारा जीता जा सकता है। धृष्टता से तो उनकी परछांही को भी छू सकना असंभव है। फिल्मी अभिनेताओं का उच्चारण और भावभंगिमा चाहे कितनी वास्तविकता से मिलती-जुलती लगें वे वास्तविक नहीं हो सकते।

सबसे बड़ा वैज्ञानिक भी, जिन श्रेणियों से परिचित है उस ज्ञान से, मुझे नहीं समझ सकेगा। जो मेरा विद्रूप करते हैं अथवा प्रशंसा करते हैं, मैं उनकी ओर केवल दयापूर्ण मुस्कान से देख लेता हूँ। चाहे जो कुछ चाहे जहां हो, मैं सदा सन्तुष्ट रहता हूँ। मेरी मुस्कान में बाधा नहीं पड़ सकती; विद्रूप और मुझ पर कीचड़ उछालने से तो यह और अधिक बिखरती है।

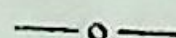
यही कारण है कि मैं आप लोगों का भार हल्का करके आपको आनन्द दे सकने में समर्थ होता हूं। भगवान् से संभाषण प्राप्त होने से संकट-विमोचन होवेगा ही, शोक से मुक्ति मिलेगी ही। मुझसे वार्तालाप के पश्चात् आपको जो आराम मिलता है; उसी आनन्द का चिन्तवन करो। आपको शान्ति प्रदान करने के लिए इतना पर्याप्त है। यह इसलिये है मैं आपको वह आनन्द देने के लिए स्वयं उत्सुक होता हूँ। इस १० दिन के त्यौहार में, मैं स्वयं इतना सक्रिय होकर कार्यक्रमों के प्रत्येक विवरण की छानबीन करता रहता हूँ, आप लोगों के ठहरने की व्यवस्था की भी देखभाल रखता हूँ, इत्यादि। यह सब इसी लिए नहीं; कि यहाँ और कोई प्रसन्नता से और अच्छी तरह इसे करना न चाहता हो।

परन्तु, मुझे देखो; ऐसा लगेगा कि मानो मुझे कोई चिन्ता ही नहीं है, मैं पूर्णतया निश्चिन्त हूँ। मानो उत्तरदायित्व का मेरे ऊपर कोई भार ही न हो; अथवा नगण्य भार हो। भगवान् तो कमल की तरह होता है, वह अपने चतुर्दिक परिस्थितियों से अलिप्त होता है। इसी लिए उनका मुखमंडल, नेत्र, हाथ और चरणों की उपमा कमल से दी जाती है। आप ने अपने लिए कोई भी नाम-रूप चुन लिया हो फिर भी अन्य किसी नाम रूप का तिरस्कार न करो; अन्य किसी की जिह्वा-कतरनी काट-छाँट करे तो करती रहे। दृढ़ रहो और स्वयं बचे रहो।

अपने और दूसरों के इष्ट देवताओं की तुलना और उनकी आलोचना मत करो। किसी के भी विश्वास को डिगाना अनुचित है और अपने को क्षुब्ध करने से भी कोई लाभ नहीं है। विश्वास तो मन्दगति से उगने वाला पौधा है। इसकी जड़ें सीधी हृदय में जाती हैं। नीरवता अथवा मौन उत्तम साधना है, इससे विश्वास रक्षित रहता है। इसलिए मैं यहाँ भी नीरवता के लिए आग्रह करता हूँ; यह तो आप के लिए साधना का प्रथम चरण है।

मैं यह सब आपको अपने विषय में सूचना के लिए नहीं बता रहा हूँ बल्कि इसलिए कि आपका विश्वास दृढ़ होवे और आप शक्तिशाली बनें।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा, ३०-९-६५



१४

खोज लो और निर्णय कर डालो

चेतावनी, झिड़की, परामर्श और प्रबोधन कि वह इन क्षुद्र क्षणस्थायी पदार्थों में न डूबा रहे के पश्चात् मनुष्य आज भी अपनी समझ की त्रुटियों के कारण दुखों में बलात् पड़ ही जाता है। संसार के सभी देशों के धर्म-शास्त्र, जिनका लोग सम्मान करते हैं, यह घोषित करते हैं कि प्रेम ही एक मात्र अन्त में विजयी होता है, एक मात्र वैराग्य ही स्थायी धन है, अद्वैत (एकता) ही सत्य है और भगवान् ही एकमात्र प्राप्य लक्ष्य है। परन्तु उस सभी सम्मान और अध्ययन, जो इन शास्त्रों को दिया जाता है और किया जाता है, के पश्चात् भी घृणा और लोभ ही दिन पर दिन बढ़ते जा रहे हैं, मनुष्य की हर जाति में दलबन्दी और युद्ध निरन्तर चल रहे हैं और भगवान् को निरर्थक तथा अन्धविश्वास मानकर उपेक्षा की जा रही है। जिस प्रकार पैट्रोमैक्स के प्रकाश के धीमे पड़ जाने पर उसमें वेग से और हवा भर देने से पुनः तीव्रता से प्रकाश प्राप्त होने लगता है इस प्रकार अब समय आ गया है कि मनुष्य की उच्चतर भावनाओं और क्षमताओं को पुनः अनुप्राणित किया जावे जिससे उसे संकटों से बचाया जा सके। मनुष्य ने जिन बन्धनों से अपने को स्वयं जकड़ लिया है उनसे उनका उद्धार किया जा सके।

धर्म-शास्त्र तो शुद्ध, सात्विक, प्रेमपूर्ण और सत्य के अन्वेषकों के अनुभवों और विचारों के अभिलेख हैं; परन्तु मानव उनमें अब विश्वास नहीं करते हैं। वे तो बहके हुए, दम्भी व्यक्तियों की द्वेषपूर्ण सनकों में

विश्वास करते हैं। निस्सन्देह जो जैसा है उसे वैसा ही मार्ग-दर्शक प्राप्त होता है। आज की दयनीय और शोचनीय विश्व-स्थिति ही इस बात का प्रमाण है कि दुनिया अन्धों के मार्ग-दर्शन में कुपथ पर चलाई गयी है। रोगी सुस्वादु औषधि के लिये, न कि दक्ष डाक्टरों की बताई रोगमुक्त करने वाली औषधि के लिये चिल्ला रहा है। रोगी स्वयं ही अपना भोजन और पथ्य निर्धारण करता है; वह डाक्टरों के बताये हुये पथ्य को दूर से ही नमस्कार कर लेता है; क्योंकि वे सीमित और नियमित होते हैं। रोगी के स्वयं के निर्णय की श्रेणियां, उसके अपने संदेह और संकोच होते हैं जिन्हें वह अपने भय और मूर्खता से उत्पन्न कर लेता है। वह सुविज्ञ लोगों के निर्णयों को स्वीकार नहीं करता है; क्योंकि वह विकृत अहंकार से पीड़ित है।

बर्फ और पानी दो नाम रूप रखने पर भी तत्वतः एक ही हैं। पिघला और जमा हुआ घी एक ही पदार्थ होता है। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण ब्रह्म भी एक ही हैं। फिर भी सतत् तर्क करने के लिये, शास्त्रार्थ के लिए इस सीधी सी समस्या को ले लिया जाता है। वह सर्वव्यापक भगवान् को मानते हुये भी मूर्ति-पूजा का खण्डन करता है।

मेरे विषय में भी कुछ लोगों को तो सत्य की एक हल्की सी झलक प्राप्त हो गई है परन्तु बहुतों को तो वह भी नसीब नहीं हुई है। फिर भी मेरा प्रेम सभी पर समान रूप से बरसता है। मैं इसे न तो प्रकट करता हूँ और न किसी को निषेध करता हूँ। आप स्वयं ही अन्वेषण करो और निर्णय लो और गहराइयों में डुबकियाँ लेकर आनन्द प्राप्त करो। एक चींटी किस प्रकार समुद्र की गहराई को माप सकती है। भूमि पर स्थित व्यक्ति विमानस्थित आकाश-चारी और वायुयान चालक की आकृति का कैसे वर्णन कर सकता है? जब तक आप कुछ अनुशासन पालते हुये साधना से ऊँचाई तक ऊपर नहीं उठते हो, सत्य भगवान

का अनुभव नहीं कर सकोगे। जहां एक बार भी उस दिव्य अनुभव का आस्वादन किया, तत्काल सभी पूर्व धारणायें, तर्क और विजय-पराजय की भावना अदृश्य हो जाती है।

आप लोगों की इच्छाओं, अभावों और आकांक्षाओं को जब मैं सुनता हूँ; एक-एक को बुलाकर साक्षात्कार करता हूँ और आपकी इन भौतिक आकांक्षाओं और मांगों के सम्बन्ध में घंटों चर्चा करता हूँ तो अनेकों को बड़ा आश्चर्य और उलझन होती है। वे कहते हैं कि इससे पूर्व किसी भी अवतार ने ऐसा नहीं किया है। यह तो संसारी भोगों की दावत है। लोग नाना प्रकार की इच्छायें लेकर आते हैं और प्रत्येक का सहानुभूतिपूर्वक स्वागत किया जाता है। परन्तु केवल मैं ही जानता हूँ कि इन अभावों असंतोष और इच्छाओं के रूप में किस मूल-ऐषणा की अभिव्यक्ति हो रही है।

उन व्यक्तियों के समक्ष जो स्वयं ही भगवान के हाथों की कठपुतली है, गिड़गिड़ाने से तो सदा यही अच्छा है कि भगवान् से ही अपना अभाव, इच्छा या आकांक्षा की पूर्ति के लिए प्रार्थना की जावे। भगवान अपने ही ढंग से चुपचाप, आप के मन को बदल कर साधना और सफल तीर्थयात्रा के पथ पर लगा देगा। वह अपने बच्चों को जंगल में भटकने और दुखी नहीं होने देगा। जब आप भगवान से सहायता और मार्ग-दर्शन के लिए प्रार्थना करते हो तो समझलो कि पहला कदम आत्म-रक्षा हेतु रख चुके हो। अब आपको भगवदेच्छा को ही अपनी इच्छा स्वीकार करना रह गया है। आपको इसी प्रकार शान्ति प्राप्त होगी।

आप जानते हैं कि यहां रिक्त हस्त ही आने का नियम है; पत्रम् पुष्पम् फलं तोयम् नहीं लाना है, जो कि परम्परागत रूप से लाने का

का विधान है। स्वच्छ और रिक्त हाथों से, जो विनम्र प्रार्थना के लिए जुड़ते हों परन्तु भीख लेकर न आये हों, जो यह घोषित कर रहे हों कि उन्होंने सभी प्रकार से धनासक्ति त्याग दी है, आओ मैं उन रिक्त हाथों को प्रभु कृपा से भर दूंगा। मुझे स्पष्ट कह देना चाहिये कि मैं भी कुछ वस्तुओं की भेंट स्वीकार करता हूं। तब आपको कृपा प्रदान करता हूं। मैं सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम की याचना करता हूँ, स्वीकार करता हूं। मैं आपको यहाँ अपने समीप आह्वान करता हूँ और नवरूप और नव-आकृति में परिवर्तित करता हूं। मैं एक प्रकार का कारीगर हूं जो टूटे, फूटे, रिसते पात्रों को सुधारता और जोड़ता हूं। मैं निराश हृदयों, चंचल मनों, जड़ बुद्धियों, अशक्त संकल्प और क्षीण विश्वास की मरम्मत करता हूं।

यह मत सोचो कि यहां आने वाले सभी लोग मुझ से केवल पार्थिव भोगों और ऐश्वर्यों की प्रार्थना लेकर ही आते हैं, कि उनकी सांसारिक उन्नति में मैं सहायक होऊँ। कम से कम नव्वे प्रतिशत मुझसे आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन प्राप्त करने आते हैं। वे भौतिक वरदान बिल्कुल नहीं माँगते। वे तो जप, ध्यान, नामस्मरण या अन्य इसी प्रकार की साधना के निर्देशन के लिए उत्सुक होते हैं। वे दिव्य सिद्धान्तों के लिए प्रेम से पूर्ण होते हैं और परिणामतः भगवान् भी उनके प्रति प्रेम से पूर्ण होता है। यह तो पारस्परिक प्रेम का आदान-प्रदान है। यह प्रेम उसी प्रकार से सत्य से संपृक्त होता है जैसे कि विवेकानन्द विवेक से संपृक्त थे।

किसी को भी किसी से घृणा अथवा निन्दा करने का अधिकार नहीं है। आपको तो उससे प्रेम करने का, उसकी सेवा करने का अथवा उससे पृथक रहने का अवसर मिला हुआ है, बस इतनी सी ही बात है। यदि आप प्रशंसा अथवा अपयश सुनकर आकर्षित अथवा प्रतिकर्षित होते हैं तो आप निश्चय जानिये कि आप अपने प्रशंसकों और निन्दकों के हाथ

की कठपुतली हैं। मैं तो लगातार २६ वर्षों से इसी दिशा में दृढ़ होता जाता हूं। कितनी भी निन्दास्तुति क्यों न हो मैं अपने मार्ग पर अडिग हूं। मैं इससे पूर्णतया असहमत हूं कि चिथड़ों को पहनने, घुटा कपाल, अथवा मैले और मौन रहने की प्रतिज्ञा मात्र से किसी को उच्च आध्यात्मिक नेतृत्व करने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। लोग रेशमी अंगरखा और बालों के मुकट रखने की चाहे जितनी चिन्दी-बिन्दी करें परन्तु मैं जानता हूं कि मैं क्यों आया हूं मैं इस निठल्ली आलोचना से प्रभावित होने वाला नहीं हूं। मुझ से प्रेमपूर्वक मिलो, मैं भी आप के प्रेम का प्रेम ही से बदला दूंगा। पिछले युगों में भी मेरा यही स्वभाव रहा है। द्वापर युग में एक पाखंडी था जिसने अपना एक व्यक्ति को अपने उपरूप के लिए रख छोड़ा था और स्वयं को कृष्ण की वेश-भूषा में आयुधों सहित सजा रखता था। उसने कृष्ण को चुनौती दी, उन पर लांछन और निन्दा के आरोप लगाये। परन्तु फिल्मी नेता जो विभिन्न अभिनय करते हैं उनमें से किसी एक वास्तविक व्यक्ति के समान हो पाये हैं? सारूप्यम् और सायुज्यम् तो प्रेम, भक्ति, विश्वास, नम्रता और बुद्धिमत्ता से ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

राम का वर्णन "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" अर्थात वज्र से भी बढ़ कर कठोर तथा पुष्प से भी अधिक कोमल, कह कर किया गया है। सीता के लिए उन्होंने बहुत ही करुणापूर्ण होकर विलाप किया है। उन्हीं राम ने आसन्न प्रसवा सीता को जिस निर्ममता से पुनः वन को निष्कासित किया उसे देखकर उनके परम आज्ञाकारी बन्धु लक्ष्मण भी सिहर उठे। प्रत्येक अवतार का स्वभाव ऐसा ही होता है। वशिष्ठ तथा उन्हीं के सदृश्य अन्य लोगों ने, जो सीता के दुर्भाग्य पर दुखी थे, सीता को पुनः अयोध्या लौटा लाने की एक चाल चली। उन्होंने राम को अश्वमेघ यज्ञ के लिए सहमत कर लिया। यजमान को पत्नी सहित ही वेदी पर बैठना होता है अन्यथा बिना

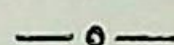
सहधर्मिणी के उसे यज्ञ में यजमान नहीं बनाया जा सकता। चूंकि राम किसी अन्य स्त्री को इस पद पर ला नहीं सकते थे, लोगों ने आशा की कि अब वे सीता को वापस बुला कर, पूर्वनिश्चित यजमान पद की मर्यादा पालन करेंगे। परन्तु राम उनसे भी अधिक चतुर सिद्ध हुये। उन्होंने सीता की एक स्वर्ण प्रतिमा निर्मित कराकर उसे वेदी पर यथास्थान स्थापित कर शास्त्रों की मर्यादा का पालन कर दिया। तथा समस्त यज्ञ कार्य विधिवत् सम्पन्न किया।

परीक्षा करने की इच्छा लेकर अथवा मूल्यांकन करके आप भगवान के रहस्य को नहीं जान सकते। आपको तो भक्ति और विश्वास के द्वारा भगवान् की कृपा प्राप्त करनी है। उसी से आपको अपनी बुद्धि और अनुभव की सीमा के अन्तर्गत भगवद्ज्ञान हो जावेगा। अडिग विश्वास से ही विजय प्राप्त होती है। आप अपनी इच्छा और सुविधानुसार बार-बार निष्ठा परिवर्तन नहीं कर सकते। जब तक आत्म-साक्षात्कार न हो जावे आप अपने साधना पथ पर डटे रहो। जब किसी को काला साँप डस लेता है तो उसे मिर्चें चबाने को दी जाती हैं; इस विचार से कि जब तक उसके शरीर पर विष का प्रभाव रहेगा उस व्यक्ति को मिर्चें चरपरी न लगेंगी। इसी प्रकार, जब तक सांसारिक भोगों के लिए आसक्ति रूपी विष मौजूद है आप निरंतर जप और ध्यान करते रहो तब तक इस साधना में कोई आनन्द की प्रतीति न होगी। लोग आपके तीर्थयात्रा पर जाने, अथवा यहाँ पुट्टपर्ती आने पर, आप पर हँस सकते हैं, विशेष रूप से यदि आप स्वस्थ और तरुण हैं और कोई विशेष समस्या नहीं है तो और भी अधिक। वे मुक्ति की आकांक्षा को समझ ही न सकेंगे। स्थायी आनन्द की कल्पना ही नहीं करते। अपने चतुर्दिक जो भव्यता विस्तृत है उसे हृदयंगम कर सकने की इच्छा करने वालों से उन्हें कोई सहानुभूति ही नहीं होती। बच्चों में आध्यात्मिक जिज्ञासा उत्पन्न होते ही वे उसे कुचल डालने का प्रयास करते हैं यह नहीं

जानते कि वे ही भविष्य में उनके रक्षा-कवच बनने वाले हैं। उन्हें आशंका रहती है कि कहीं ऐसा न हो कि उनके बच्चे आगे चलकर संन्यासी और गृहत्यागी हो जावें। इसी लिए वे उन्हें सांसारिक भोगानंद में अधिकाधिक डुबाते चले जाते हैं जिससे कि वे अपने पागलपन के द्वारा दैवी पागलपन से मुक्ति पा जावें।

इस सबका सारांश यह है कि आप इन्द्रियों को अपने वशीभूत करें न कि स्वयं उनके वशीभूत हो जावें। वे आपको अपनी कीचड़ में न घसीट सकें। अन्यथा आप की दशा बेलगाम घोड़े अथवा बिना ब्रेक की मोटरकार के समान हो जावेगी। इन्द्रियों के वशीभूत होने पर आपकी बुद्धि में भगवान की उस महिमा का स्वच्छ प्रतिबिम्ब पड़ेगा, जो सारे संसार में व्याप्त है। वेद-वेदान्त की शिक्षा का यही सार है।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा १-१०-१९६५



१५

सतत-साधना

यद्यपि यह लोकोक्ति प्राचीन है, परन्तु यह आज भी उतनी ही सत्य है, कि मनुष्य की शैशवावस्था, खेलकूद और नटखटपने में बीतती है, लड़कपन संगठित खेलकूद और मनोविनोद में, तरुणाई विलास और धनोपार्जन में, अधेड़ावस्था भावी आर्थिक योजनाओं और उनके क्रियान्वयन में, और वृद्धावस्था अस्पतालों और आरोग्यसदनों में गिरते हुए स्वास्थ्य को निरंतर घटती हुई धन सम्पत्ति से सुधारने में बीत जाती है। उसके पास अन्य किसी कार्य के लिए समय ही नहीं निकल पाता है। उसके हाथ में सदा कोई न कोई कार्य बना ही रहता है। कमाते खाते हुये वह अपना समय सदा कार्य और चिन्ता में व्यतीत कर देता है। उसके पास शान्ति से एक स्थान में शान्त होकर बैठने का न तो समय ही होता है और न उसे शान्ति ही प्राप्त होती है।

उससे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने के लिए, ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने के लिए किए गए सभी अनुरोध और उद्बोधन व्यर्थ जाते हैं। एक अन्धे मनुष्य के लिए प्रकाश किस काम का ? जिस व्यक्ति ने वास्तव में महत्वपूर्ण बातों और सत्परामर्श के लिए अपने कानों को बन्द कर रखा है उसे उपदेशों और प्रवचनों से क्या काम ? मनुष्य प्रसन्नता प्राप्ति के लिए अनेक कार्यों में व्यस्त रहता है; परन्तु अल्पमात्रा में और क्षणस्थायी सफलता ही पाता है। अपनी सभी बीमारियों की एक राम-बाण औषधि का उसे ज्ञान ही नहीं है;

जिस प्रयत्न से पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, अर्थात मनोनिग्रह; जिससे सभी इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय एक ऐसा छिद्र है कि जिसके द्वारा मनुष्य की शक्ति का प्रवाह ऐसी दिशा में बाहर निकल जाता है जोकि उसे सांसारिक पदार्थों से बंधन में जकड़ने वाली होती है। मन ही इन इन्द्रियों को भोग्य पदार्थों से सम्पर्क करने को प्रेरित करता है। मनुष्य को चाहिए कि वह मन को बुद्धि अथवा विवेक शक्ति के आधीन कर दे और तब मन उसको हानि पहुँचाने की अपेक्षा सहायता करने लग जावेगा।

शरीर भगवान का मन्दिर है जिसमें वह भगवान हृदय में निवास करता है; बुद्धि का दीपक उस वेदी पर प्रकाशित रहता है। इन्द्रियों की खिड़की से आने वाला वायु (भोगेच्छा) का प्रत्येक झोंका दीपक के प्रकाश को या तो नष्ट ही कर देता है अथवा धीमा कर देता है। इस लिए इन खिड़कियों को बन्द रक्खो; उन्हें पदार्थों के प्रबल आकर्षण के लिए खुला मत छोड़ो। बुद्धि को प्रखर रक्खो; जिससे कि यह मन रूपी हीरे को काट कर प्रकाश पुंज को उत्पन्न कर सके न कि उसे मंद प्रकाश का एक पत्थर मात्र बनाये रक्खो। नित्यानित्य विवेक—क्या स्थाई है और क्या नाशवान है, ही आध्यात्मिक उन्नति का महत्वपूर्ण यंत्र है। असीम और सीमित तथा स्थाई और अस्थाई का निर्णय करने के लिए तर्क गुण का प्रयोग करो। वही तो इसका वैध प्रयोग है। अद्वैत के सिद्धांत के आधार पर शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थ का नाम विवेक चूड़ा-मणि रखा था; क्योंकि वे जीवन की क्षण भंगुरता को समझने के लिए ब्रह्माण्ड के एकत्व को अनुभव करने के लिए विवेक के मूल्य और महत्त्व पर बल देते थे।

आसक्ति, मोह और लगाव—इनसे तो भ्रम, पक्षपात और पूर्वाग्रह उत्पन्न होते हैं। वे सत्य को छिपाते हैं; बुद्धि को मंद कर देते हैं। रोगी

को ही तो रोग होता है; जहाँ तक कि अन्वेषक का प्रश्न है। योगी को किसी से भी, 'राग' रखना अशोभनीय है। उसे तो प्रियजन, झुकाव और किसी विशेष के प्रति अनुराग से रहित ही होना चाहिए। एक बार आप किसी व्यक्ति, स्वभाव या कार्य पद्धति को अपनालें, फिर उनसे छुटकारा पाना दुस्तर हो जाता है; उस ग्रामीण व्यक्ति की तरह जो नदी की धार में बहते हुए कम्बलों के बन्डल (वास्तव में नदी की धार में बलात बहा जाता हुआ यह एक रीछ था) को निकालने के लिए नदी में कूद पड़ता है परन्तु होता यह है फिर वह बण्डल ही उसे कसकर पकड़ लेता है और अंत तक नहीं छोड़ता है इसी प्रकार मनुष्य भी जिस वैभव को प्राप्त करने के लिए कूद पड़ता है परन्तु स्वयं पकड़ा जाता है और जकड़ जाता है। इसलिए इस देश के सन्त सदा से लोगों को यही उपदेश देते आये हैं कि वे "अमृतपुत्र" हैं। शान्ति और आनन्द की निधि हैं, सत्य और न्याय उनकी स्वाभाविक वृत्ति है और वे इन्द्रियों के स्वामी हैं; निस्सन्देह मनुष्य कुछ इच्छायें रख सकता है, सुविधा प्राप्त करने की उत्सुकता, सन्तोष प्राप्त करने का कुछ प्रयत्न—परन्तु यह उसी प्रकार हो जैसे कि रोगी मनुष्य औषधि प्राप्त करने के लिए आतुर होता है। भूख जैसी बीमारी के लिए भोजन ही औषधि है, प्यास के रोग की पेय ही औषधि है। खान-पान-मकान वस्त्र आत्मा की आवश्यकताओं के समक्ष गौण हैं। आत्मा की आवश्यकतायें— मनोभावों और मनोविकारों का प्रशिक्षण सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है। आजकल भोजनशाला में नमक और काली मिर्च का जैसे उपयोग होता है उसी प्रकार; जैसे दाल में आवश्यकता से अधिक नमक नहीं डाला जाता है, स्वास्थ्य सुविधा का भी उतना ही ध्यान होना चाहिए कि सतत् साधना चलती रहे, उससे अधिक नहीं।

कुछ लोग स्वयं की तथा अपने जीवन की सदा ही निन्दा करते अथवा दैन्य प्रदर्शन करते रहते हैं और प्रभु-कृपा प्राप्त करने के अभि-

लाषी होते हैं जिससे उनका उद्धार होवे। उनका कहना है कि जीव और ब्रह्म दो भिन्न अस्तित्व है वे कभी एक दूसरे में लीन अथवा संयुक्त नहीं हो सकते। यह तो स्पष्टत: असत्य कथन है। पाप करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति नहीं है; इसे तो जैसे अपनाया जाता है उसी प्रकार त्यागा भी जा सकता है। मानव शुद्ध, बुद्ध, प्रेममय तथा कल्याण-मय है। इसी लिए मैंने निलयम् में दैन्य भाव वाले श्लोकों का पाठ वर्जित कर दिया है। आप में की शुद्धता व्यक्त होवे, आपके कर्मों में अध्यवसाय की अभिव्यक्ति हो, मैं इसी से प्रसन्न होता हूँ और मेरी कृपा इसी ढंग से प्राप्त की जा सकती है।

आपको अपने प्रेम की परिधि को सदा विस्तीर्ण करते रहना चाहिए जितना अधिक से अधिक संभव हो। इसी ढंग से कुलाभिमान्म, धर्मा-भिमानम् और देशाभिमानम् जाति, धर्म और देश के श्रेष्ठ और महान होने पर गर्व भावना, वांछनीय है। यदि प्रेम के स्थान पर आप अन्य सम्प्रदायों या जातियों; धर्मों और देशों से घृणा करते हैं तो यही उप-र्युक्त तीन अभिमान विषैले हो जाते हैं। अपने धर्म को प्रेम करो परन्तु इसलिए आप इसके कृत्यों और साधनाओं को अधिक निष्ठा और विश्-वास से निर्वाह करें; दुनियाँ में पारस्परिक घृणा के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि सभी धर्म सार्वभौम प्रेम पर ही आधारित हैं। अपने देश को दृढ़, सुखी समृद्ध और मनुष्य के उच्च गुणों की अभिव्यक्ति का क्षेत्र बनाने के लिए प्रेम करो। दिल्ली अथवा कलकत्ता उसी प्रकार आपके अंग हैं जैसे कि आपका गांव या नगर। पैर की किसी भी उंगली की पीड़ा से आप उसी प्रकार बैचैन होते हैं जैसे मस्तक की पीड़ा से होते हैं।

भारत की दृढ़ता और समृद्धि के लिए ऐसा प्रयास करो कि यह किसी अन्य देश पर निर्भर न रहे और न किसी को ललचावे। भारत

कभी समग्र मानवता का आध्यात्मिक गुरु रह चुका है। भारत को पुनः अपना वही पद प्राप्त करना है। अपना जीवन ऐसा बनाओ जिससे आपका जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय उदाहरण बन जावे; आपका मान-सम्मान एक सच्चे भारत पुत्र की भांति होने लगे। जो लोग इस देश पर लोभ अथवा घृणा के वशीभूत होकर आक्रमण करते हैं उनके कल्याण की भी प्रार्थना करो। उनके अज्ञान के प्रति सहानुभूति प्रकट करो और प्रार्थना करो कि वे सत्य, न्याय और प्रेम के मार्ग पर चल पड़ें।

प्रार्थना का महान प्रभाव होता है। वैदिक ऋषि समस्त जड़-चेतन समस्त प्राणियों और सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण की प्रार्थना किया करते थे। उसी सार्वभौम व्यापक दृष्टि का अपने में विकास करो।

प्रशान्ति निलयम्
दशहरा २-१०-१९६५



१६

रोम-रोम से राम-राम

अत्याचार और उत्पीड़न की वेदना से प्रह्लाद की नामस्मरण ने रक्षा की। यद्यपि वे राक्षसकुल में जन्मे थे, परन्तु किसी प्रकार उन्हें पवित्रनाम की मधुरता का ज्ञान हो गया। उन्होंने इसे बार-बार जप कर इसके अमृतमय स्वाद को हृदयंगम किया। जबकि मतवाले हाथी ने उन पर आक्रमण किया तो भी रक्षा के लिए उनके मुँह से "हे पिता, हे माता" नहीं निकला कि लौकिक, पार्थिव माता-पिता उनके शरीर की रक्षा करें। उन्हें तो उन माता-पिता के अस्तित्व का ही भान न था। उन्होंने केवल नारायण को ही पुकारा; अन्य किसी को भी नहीं। सभी सबल और निर्बल नारायण ही से तो शक्ति प्राप्त करते हैं। वही तो सर्वोच्च शक्ति हैं, इसीलिए हाथी लड़के के पास न जाकर लौट पड़ा; अग्नि उनका एक रोम भी न झुलसा सकी; वायु उन्हें धकेल न सकी और खड्ड में गिराये जाने पर भी उनका कुछ न बिगड़ा; विष का भी उन पर कोई प्रभाव न हुआ। नाम उनका अभेद्य कवच था, ढाल थी, श्वास और जीवन था। हनुमान ने भी नाम के महत्त्व को प्रकट किया है। हृदय में नाम की महत्ता का बल लेकर ओठों से जपते हुए वे अगाध समुद्र को ही छलाँग से पार कर गए। प्रलोभनों ने उन्हें बीच में ही रोकने का प्रयास किया, भय ने उन्हें लौटाने की चेष्टा की, परन्तु वे अन्तरिक्ष मार्ग से नाम के सहारे सुदूर लंका में सीता के समक्ष पहुँच गये। उनके मन में नाम और नामी के अतिरिक्त किसी वस्तु, अथवा व्यक्ति, के लिए कोई स्थान न था। यदि आपके विचार शरीर से ही संबंधित

रहते हैं तो आपको चिन्ता, कष्ट और बीमारियां (चाहे वह कल्पित हों या वास्तविक) रहेंगी। यदि ये विचार धन को केन्द्र मान कर उठते हैं तो आपको लाभ हानि, टैक्स और छूट, विनियोजन तथा दिवाला की चिन्ता रहेगी। यदि ये विचार यश को लेकर उठते हैं तो निश्चय ही अपयश और ईर्ष्या के उत्थान-पतन से कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिए विचारों को शक्ति के स्रोत और प्रेम के निर्झर से संबंधित रक्खो, जैसा कि स्वेच्छा से ही होना चाहिए, और आप सम्पूर्ण रूप से इसके प्रति समर्पण कर दो। फिर तो सदा के लिए आप आनन्दमय हो जावेंगे। वैदिक सभ्यता के लिए ऋषियों के लिए तो भगवन्नाम ही उनके जीवन प्राण थे। नाम में निहित महिमा पर विचार करने से उन्हें जीवन-शक्ति प्राप्त होती थी। जब वेदों के क्षीर-सागर को, बुद्धि की मथानी को भक्ति की रस्सी से लपेट कर, मथा गया तो उसमें से मक्खन रूपी तीन महाकाव्य, रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत शान्ति और आनन्द के पाने के लिए, नामस्मरण का सन्देश फैलाने के लिए, प्राप्त हुए थे। अब पुनः नाम में विश्वास को स्थापित करने के लिए और इसी संदेश को फैलाने के लिए इस कलियुग में अवतार आ चुका है।

जब कुछ पार्थिव इच्छाओं की पूर्ति के लिए भक्ति की जाती है तो इस भक्ति के मूल्यवान फल से हाथ धोना पड़ता है। आराधना से हृदय निर्मल होता है, इससे अन्तर्यामी भगवान् अपनी पूर्ण महिमा से प्रकाशित हो उठता है। परन्तु स्वच्छ करने के स्थान पर इच्छाओं से हृदय कलुषित होता है। किसी शिशु राजकुमार को यदि राजगद्दी पर आसीन होने को आमंत्रित किया जावे तो वह रोने लगेगा क्योंकि वह राजगद्दी पर बैठ कर अपने खिलौनों और पालतू पशुओं से न खेल पायेगा। उसकी इस बाल मनोवृत्ति पर वयस्क हँस सकते हैं; झिड़क सकते हैं। वे सभी लोग, जो अपने ऊपर संप्रभुता प्राप्त करने से दूर रहते हैं और भौतिकता के खिलौनों और पालतुओं से क्रीड़ा करना अधिक पसंद करते हैं; उसी

शिशु राजकुमार के समान ही "बचकानेपन" के दोषी हैं उनकी आयु या पद कुछ भी हों।

नामस्मरण तो प्रभु को प्राप्त करने का एक मंत्र है। त्यागराज ने 'श्रीराम' का नाम जप अपने २०वें वर्ष में प्रारम्भ किया था और उन्होंने ९६ करोड़ नाम जपा; इस कार्य में २१ वर्ष १५ दिन लगाकर अपना अनुष्ठान पूर्ण कर लिया। इसके फल-स्वरूप उन्हें श्रीराम के दर्शन प्राप्त हुए "नाम के अक्षरों ने मूर्त्त रूप धारण कर लिया" यह उन्होंने कहा था। नाम, नामी के गुणों को व्यक्त करने वाला होता है। इसीलिए निरंतर स्मरण से जापक में भी इन्हीं गुणों को उत्पन्न कर देता है। नाम जप में कोई व्यय आपेक्षित नहीं है; न अन्य कोई भौतिक उपकरण की ही आवश्यकता होती है। इस के कोई विशिष्ट समय अथवा स्थान भी आवश्यक नहीं होते हैं। जब भी लोहे का एक टुकड़ा किसी पत्थर पर इधर-उधर करके रगड़ा जाता है, ऊष्मा उत्पन्न होने लगती है। रगड़ना जितनी गति से होगा, देर तक होगा उसी अनुपात से ऊष्मा उत्पन्न होगी। यदि रह-रह कर व्यवधान देकर, और हल्के भाव से आप क्रिया करेंगे तो लोहा भी गर्म नहीं होगा। इसलिए भगवान के कोमल हृदय को द्रवित करने के लिए पर्याप्त ऊष्मा भी आपेक्षित है। राम, राम, राम उत्साह और प्रेमभाव से, शीघ्रता से, लगातार जपो। तब प्रभु कृपा की वर्षा होगी। यदि आप ढाई मिनट प्रातः और ढाई मिनट सायंकाल जाप करोगे तो जो कुछ ऊष्मा उत्पन्न होगी वह भी शीतल पड़ जायेगी और उन भगवान का हृदय नहीं द्रवित होगा। गजेन्द्र ने तो जंगल की झील से पुकारा था, विभीषण ने शत्रुपक्ष के बीच में रहते हुए ध्यान करते हुए पुकारा था, दौपदी ने अशौचावस्था में ही कौरव सभा में पुकारा, फिर भी प्रभु ने सभी का त्राण किया। वह तो प्रेम की मूर्ति स्वरूप हैं, उन्हें तो केवल प्रेम से ही जीता जा सकता है। गोपियों की भक्ति का अध्ययन करो। आपको यह भक्ति

विशुद्ध प्रेम के रूप में ही लगेगी, यह ऐसा प्रेम है जहां "चोरी, धोखा" 'और एक दम से त्याग' भी क्षम्य है। गोपियों को भगवान से कोई वरदान नहीं मांगना था, उन्हें किसी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रभु कृपा का सहारा नहीं लेना था। वे जानती थीं कि वे भगवान हैं इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ नहीं चाहिए था। उन्हें शरीर अथवा संसार का कोई भान नहीं भासता था। उनके प्रेम का एक मात्र उद्देश्य नराकार में भगवान का होना था।

एक बार रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों ही द्रौपदी पर कृष्ण की महान कृपा देखकर आश्चर्य चकित हो गयी थीं। द्रौपदी पाण्डवों की रानी थी जिसका जीवन अपमान और कष्टों की एक लम्बी कहानी था। कृष्ण ने ही अनेक बार और हर बार द्रौपदी को अपमान और विपत्तियों से बचाया था। वे उस भक्ति और साधना के प्रकार को जानने को व्यग्र थीं कि जिससे द्रौपदी को अविरल रूप से इतनी महान प्रभु कृपा प्राप्त हो सकी थी। इसी लिए कृष्ण इन दोनों को अपने साथ ले गए थे। एक दिन वे इन्द्रप्रस्थ गये, अर्जुन शिकार के लिए गये हुए थे और द्रौपदी स्नान के पश्चात् अपने बाल सुखा रही थी। कृष्ण ने रुक्मिणी और सत्यभामा से द्रौपदी के बालों में कंघी करने को कहा क्योंकि द्रौपदी के बाल बहुत ही उलझ गये थे जैसी कि उन दोनों ने टिप्पणी की थी। जिस समय वह कंघी कर रही थीं तो उन्होंने प्रत्येक बाल के सिरे से नाम जप "कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण" की ध्वनि सुनी। भगवान के प्रति उसका ऐसा गंभीर भक्ति-भाव था कि उसके सिर के प्रत्येक बाल में भगवन्नाम व्याप्त हो गया था।

हनुमान के विषय में भी यही कहा जाता है, "रोम रोमामु राम नमामे" प्रत्येक रोम से "राम नाम" का जाप होता था। उनकी पूँछ एक विशाल पटेला के सदृश थी क्योंकि इसमें नाम की शक्ति समाई

हुई थी। उन्हें "सुन्दर" भी कहा जाता है। क्यों ? उन्होंने 'राम' को अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर रक्खा था, चूंकि राम का तेज उनके मुख-मंडल पर दीप्त था वे देखने में सुन्दर लगते थे। वे एक सुन्दर साथी थे क्योंकि वे केवल राम के विषय में ही चर्चा करते थे और राम का ही यशोगान गाते थे।

अब मुझे अपने विषय में भी आप लोगों को कुछ बता देना चाहिए। यह एक प्रथा है कि जब आप भगवान के समीप जावें तो कुछ न कुछ अपने साथ अवश्य ले जावें। यह एक ऐसा कार्य है, कि लोग जब कुछ कामना की पूर्ति के लिए जाते हैं, और उस अभिलाषा की पूर्ति के लिए प्रभु-कृपा चाहते है; तब करते हैं। वे पत्रम्, पुष्पम्, फलम् तोयम्— जैसा गीता में वर्णन आता है, ले जाते हैं। उनका भाव यह होता है कि "मैं जीव हूँ, वह देव है" परन्तु, यह एक बुरी चाल है जैसी कि लोग चलते हैं, जब हम दूध मंगाते हैं तो वे गाय लाकर बाँध देते हैं और हमको दूध देने के लिए दूसरी गाय दुहने बैठ जाते हैं। वे भगवान को अन्य वृक्ष पर उगे हुए पत्रम्, पुष्पम् और फलम् अर्पित करते हैं परिणामत: प्रभु कृपा उन वृक्षों को ही प्राप्त होती है कि जिनसे उप-र्युक्त का चयन किया गया है। आपने अपने जीवन रूपी वृक्ष में जो पत्रम्, पुष्पम् और फलम् उगाये हैं उन्हें अर्पित करो। अपने मानसिक विचारों के सुगंधित पत्रम्, पुष्पम् तथा अपने कार्यों के विचारों के मधुर रसीले फल अर्पित करो।

मैं इन दोनों के सापेक्ष मूल्य को जानता हूं। मैं केवल आप की और आप के अध्यवसाय से उत्पन्न वस्तु ही चाहता हूं, बाजारू अथवा अन्य वृक्षों पर उगे पत्रम्, पुष्पम् जो किसी अन्य व्यक्ति की बुद्धि और भक्ति तथा अध्यवसाय के वृक्ष पर उगे हों, नहीं चाहिए। ईश्वर ने आपको जीवन में ही उपयोग करने के लिये 'हृदय' प्रदान किया। है

उपयोग के पश्चात् इसे इतना ही स्वच्छ और पवित्र उस भगवान को ही लौटा दीजिये जैसा कि यह भगवान के देने के समय था। इसमें प्रेम, शान्ति धर्म और सत्य का संग्रह करना था; और इस संग्रह में से उन सभी लोगों को इनका वितरण करना चाहिए था जिन-जिन से आप का संपर्क हुआ होवे।

प्रशान्ति निलयम्,
दशहरा, ३-१०-६५

—०—

१७

संसार में कोई 'देश' अपना नहीं तो 'उपदेश' की आवश्यकता नहीं

रामकृष्ण राव ने प्रशान्ति-विद्वान-महासभा के द्वारा लोगों में वेद-शास्त्र के उपदेशों का प्रचार किये जाने की चर्चा की है; कि इस प्रकार से लोगों में आत्म-चेतना को जगाने में, जोकि एक मात्र ऐसा कार्य है जिससे मनुष्यों को जीवन की विषम परिस्थितियों और परीक्षाओं में साहस और विश्वास प्राप्त होता है, जागृति हो रही है। विद्वान महा-सभा के अधिवेशनों में इन पंडितों के प्रवचन तो स्मरण दिलाने का कार्य करते हैं, उन्हें विचारसारणी को, विचारशक्ति को श्रोता में जगाना पड़ता है, तभी उन्हें कल्याणकारी माना जा सकता है।

वास्तव में ब्रह्म, जीव और प्रकृति आदि सम्बन्धी सत्य इतना सरल है कि कुछ मिनटों के शान्त-विचार से ही किसी सामान्य बुद्धि वाले पर प्रकट हो सकता है। इस बात को हर कोई स्वीकार करेगा कि जो परिवर्तनशील है वह सत् नहीं है। सत् तो भूत, वर्तमान और भविष्यत में सदा एकसा ही रहता है। संसार और सांसारिक, प्राकृतिक पदार्थ, सदा परिवर्तनशील रहते हैं—टूटते-फूटते, निर्मित होते, प्रकट होते, लय होते, रूपान्तरित होते, बहते, बढ़ते-घटते जन्मते-मरते रहते हैं। तब यह सब सत्य कैसे हो सकता है? व्यक्तिगत भावनायें, दृष्टि-कोण, मनोविकार, विश्वास, वृत्तियाँ और अनुमान भी बदलते रहते हैं। किसी क्षण में यह सुखदायक, तो कुछ ही समय बाद अप्रिय और

दुःखदायक भी हो जाते हैं। किसी समय पर जिसका हम स्वागत करते हैं, अन्य समय पर उसे दुतकारते हैं। मलेरिया मीठे पदार्थों को कटु स्वाद वाला बना देता है, तो पीलिया में सब पीला ही दिखता है। इसलिए आधार में, मूल में, कुछ न कुछ स्थायी और शाश्वत होना ही चाहिए। जिसे नींव माना जावे जिसके सहारे यह सब परिवर्तन होते और प्रतिभासित होते हैं। दृश्यमान असत्य और शाश्वत ही सत्य है।

कुछ समय का अन्वेषण ही मनुष्य को बोध तथा विश्वास करा देता कि वह शरीर नहीं है जिसे कि वह जहां तहां लिए-लिए डोलता फिरता है जैसे कि घोंघा अपने मकान को अपनी पीठ पर हर जगह लादे फिरता है। वह आंख, कान अथवा जिह्वा भी नहीं है। वह मन और बुद्धि भी नहीं है क्योंकि वह इनका उल्लेख "मेरा मन, मेरी बुद्धि में तो ऐसा आता है" इत्यादि प्रकार से करता है। इसका अर्थ कि 'मैं' इस 'मन' या बुद्धि से पृथक कोई अन्य तथ्य है; "मेरी बुद्धि इसमें असमर्थ है" अर्थात् बुद्धि (कुछ पृथक तत्व है जो मैं नहीं हूँ) वह तो साक्षी मात्र है, शरीर मरता है, वह फिर भी रहता है और पुनः जन्मता है और नया शरीर धारण कर लेता है। पार्थिव सौन्दर्य तो स्वास्थ्य से संबंधित है; कुछ दिनों के बुखार या दस्तों से दैवी सौन्दर्य वाला भी 'काग विड़ारक' लगने लगता है। पागलपन जब परम बुद्धिमान को धर दबोचता है तो उसके मुख से अर्थहीन बकवास ही निकलने लगती है। जब मस्तिष्क विकृत हो जाता है तो आँखें कुछ का कुछ देखने लगती हैं जो कि सर्वसाधारण के जैसा नहीं दिखाई देता है और कान भ्रामक चक्कर में डालने वाले (जो वैसे कभी न हुए हों) शब्दों को सुनने लगते हैं।

शाश्वत, अपरिवर्तनशील सत्य को प्राप्त करने से ही मनुष्य को स्थाई शान्ति प्राप्त होती है। इससे पहले उसे इसी परिवर्तनशील संसार में सुख-दुःख के बीच झूलता हुआ रहना पड़ता है।

लोगों में विवेकानन्द और नाग महाशय की तरह इस सृष्टि के पीछे सृष्टा की कठपुतलियों के पीछे संचालक को, जानने की पिपासा होनी चाहिए। नाग महाशय ने 'दासोऽहम्' के भाव से प्रारंभ किया था। 'मैं सेवक हूँ" इस भावना से उन्होंने अपने को इतना छोटा बना लिया, अपने व्यक्तित्व को इतना संकुचित कर डाला था कि वह माया के फंदों के बीच से खिसक कर विश्वजनीन शाश्वत सत्य से एकाकार हो गये। इसके प्रतिकूल विवेकानन्द ने 'सोऽहम्' भाव से प्रारम्भ किया था। उन्होंने अपने को इतना विशाल, इतना विस्तृत, इतना महान बना डाला कि उनके सभी बन्धन छिन्न-भिन्न हो गये और वह विश्व-जनीन शाश्वत सत्य से एकाकार हो गये। जब आपको अपने आत्म-रूप का ज्ञान, कि यह वही कुछ है जो कि इस ब्रह्माण्ड के रूप में तत्वतः विद्यमान और व्यापक है, प्राप्त कर लोगे तब माया आपको प्रभावित नहीं कर सकेगी। मक्खी अच्छे-बुरे सभी पदार्थों पर बैठती है परन्तु यह अग्नि पर नहीं बैठती क्योंकि तब तो यह जलकर भस्म हो जावेगी।

संसार में अनेकों ऐसे हैं जिन्होंने पुस्तकालयों को ही अपने मस्तिष्क में भर लिया है, जिन्होंने हिमालय से कन्याकुमारी के मध्यस्थित सभी तीर्थों और देवालयों में जाकर आदर भाव प्रकट किया है; जो अपने समकालीन प्रत्येक संत और मनीषियों के चरणों में मस्तक नवा चुके हैं, जिन्होंने शास्त्रों में वर्णित सभी संस्कारों और कर्मकाण्ड को सम्पन्न कर लिया है; परन्तु उन्हें इस सीधे, सरल प्रश्न का उत्तर नहीं ज्ञात है कि, "ब्रह्म और जीव का एकत्व किस प्रकार संपादन किया जावे ?" व्यष्टि और समष्टि को कैसे अभेद किया जावे। अथवा जो कुछ उन्होंने सुना, जाना, पढ़ा है उसे व्यवहार में लाने के लिए एक कदम भी नहीं उठाते। मन्दिरों का निर्माण, मूर्तियों की स्थापना, तड़क-भड़क, आतिशबाजी, जलूस और प्रदर्शन, ज्ञान के क्षेत्र में यह सब असमर्थ हो जाते हैं। जब एक मुमुक्षु, एक गुरु के पास गया तो उन्होंने पूछा-कि

अभी तक उसने क्या पढ़ रक्खा था, उस व्यक्ति ने जब कहा कि "रामायण का सुन्दरकाण्ड मैंने पढ़ लिया है, भगवद्‌गीता और योग वशिष्ट भी पढ़े हैं" तो गुरु ने पूछा कि "तब फिर तुम मुझसे क्यों उपदेश चाहते हो ? जब श्रीकृष्ण जी गीता के द्वारा तुममें निष्ठा या विश्वास जगाने में असफल रहे हैं; तो मैं बेचारा क्या कर सकूँगा ?" और यह कह कर उसे लौटा दिया। जब एक व्यक्ति ने जान लिया कि उसका कोई 'देश' नहीं है तो फिर वह 'उपदेश' के लिए क्यों आग्रह करे ? मनुष्य किसी एक स्थान, देश के बन्धन में नहीं है उसका आश्रम स्थान एक मात्र भगवान ही है। वही तो देश है। उसी देश की यात्रा करना तो व्यक्ति के जीवन का चरम उद्देश्य है।

सर्वश्रेष्ठ उपदेश 'प्रणव, ॐ' का छोटा सा पवित्र शब्दखण्ड मात्र है। इसी में धर्मशास्त्र के अनेकों सिद्धान्त, दर्शनशास्त्र और रहस्यवाद के गूढ़ तत्व सन्निहित हैं। नन्हें बच्चों को, जब वे चलना प्रारम्भ करते हैं, तीन पहिये की गाड़ी देकर आगे हाथों से पकड़कर ठेलते हुए चलने को कहा जाता है। आध्यात्मिक बच्चे के लिए "ॐ" एक ऐसी ही गाड़ी है, तीन पहिये अ—उ—म हैं यही मंत्र के तीन खण्ड हैं। ॐ प्राणों का मूल-स्वर है। हम प्रत्येक श्वास में "सोऽहम्" कहते हैं। जब श्वास अन्दर जाती है तो 'सो' का उच्चारण होता है और जब श्वास बाहर जाती है तो 'हम' का उच्चारण होता है जिसका अर्थ "वह मैं" इससे हमारे अन्दर यह धारण दृढ़ होती है कि यह जो कुछ बाह्य जगत है वह (परमात्मा) है और अन्तर्जगत मैं हूँ इस प्रकार एकत्व की भावना पुष्ट होती है। सुषुप्ति में जब इन्द्रियां, मस्तिष्क और मन सोये हुए, निष्क्रिय रहते हैं, "वह" और "मैं" पृथक न होकर "सो" और "हम" धूमिल होकर मूल-स्वर "ॐ" मात्र रह जाता है, इससे बाह्य और आन्तरिक सत्य का एकत्व ॐ शब्द में ध्वनित होता है। ॐ में अन्य बहुत विशिष्टतायें हैं और 'ॐ' का ध्यान भी मूल्यवान साधना, मुमु-

क्षुओं के लिए होती है। सूर्य के सात रंगों के सम्मिश्रण से उत्पन्न उज्ज्वल-धवल-श्वेत प्रकाश जैसी एकत्व की साधना है।

आध्यात्मिक उन्नति का प्रथम शत्रु अहंकार है। कलि राजा का प्रधान कार्यकर्त्ता अहंकार ही है वही कलियुग (लौह युग) का शासक है। अहंकार और उसकी सहचारी बुराइयां आज की दुनियां पर छाये हुए हैं। अहंकार ही लोभ और घृणा के कीड़े को पनपाता है। यहाँ तक कि तपस्वियों के नेता और अन्य धार्मिक संस्थाओं के प्रमुख और मठाधीश भी आज अहंकार से पीड़ित होने के कारण अन्य संस्थाओं और वर्गों के नेताओं की तरह प्रतियोगिता और संघर्ष की लत में पड़े देखे जाते हैं। कुछेक तो धार्मिकता का दर्शनीय चोला धारण किये हुए, विशेष रूप से केमरा के समक्ष होते समय, होते हैं। बड़ी प्रसिद्ध कहावत है कि साधक को कूकुर की तरह भोजन और लोमड़ी की तरह पर्यटन करना चाहिए; अर्थात् जो कुछ भोज्यपदार्थ मिले उसी पर संतुष्ट रहे, और जो भी स्थान (सुखद या दुखद) मिले वहीं विश्राम कर ले।

मनुष्य तो भगवान के हाथों में यन्त्र मात्र है। उसकी योजनायें तभी सफल हो सकती हैं जबकि वे योजनायें दैवी योजना के अनुकूल हों। प्रश्न उठता है कि फिर दैवी योजनायें क्या हैं? उसकी क्या आज्ञायें हैं? इनको शास्त्रों में घोषित किया गया है; सन्तों की पवित्र आत्माओं को इस दैवी योजना की झलक प्राप्त होती रही है। उन अवतारों के द्वारा भी इनकी घोषणा की जाती रही है; जो मानव शरीर धारण कर अवतरित हुए हैं। जिससे कि मनुष्यों को उन्हीं की भाषा में बतलाकर उनकी सत्य-निष्ठा प्राप्त कर सकें, उनका मार्ग दर्शन कर सके, उन्हें उपदेश दे सकें।

मनुष्य को दिव्य बनना है, वह दिव्य से ही उत्पन्न हुआ है। इसीलिये उसे दुनियां से अपनी ग्रासक्ति को घटाते जाना है! दुनियां से संबंध विच्छेद करके नहीं बल्कि इसी में रहते हुये, भगवान् के हाथों में यंत्रवत् बनकर रहते हुये यह करना है। उन सभी वृत्तियों को, जो व्यक्ति के ग्रन्दर ग्रहंकार को उभाड़ती हैं, वश में करना है; यह उन्हीं भगवदाज्ञाओं, 'जिन्हें धर्म कहते हैं' को एकाग्रता के साथ पालन करके कर सकते हैं। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रपनी भौतिक समस्याग्रों के हल खोजने में इतना तल्लीन हो जाया करता था कि वह, कभी-कभी तो दिन भर ग्रपनी प्रयोगशाला में ग्रपने लिये रखे गये भोजन को भी भूल जाया करता था। ग्राप में भी इसी प्रकार की तल्लीनता ग्रौर श्रद्धा ग्रपनी साधना के लिये होना चाहिये।

सर्वोत्तम साधना तो ग्रात्म-साक्षात्कार कर पाना है और इस तत्व द्वारा ग्रन्य सब की आत्मा से तात्त्विक एकता के स्वरूप को जान पाना है। जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति होवे शरीर को स्वस्थ ग्रौर स्फूर्तिवान रखना ही है, इस शरीर का उद्देश्य भी यही है। इसे हल्का ग्रौर चैतन्य बनाये रक्खो। भवसागर ग्रौर ग्रसत्य की बहुलता से पार ले जाने वाली यह नौका है। पार्थिव वस्तुग्रों से ग्रासक्ति के द्वारा इस के भार में वृद्धि मत करो ग्रन्यथा यात्रा के मध्य में ही इसके डूब जाने की ग्राशंका उत्पन्न हो जावेगी।

नामस्मरण सबसे ग्रधिक प्रभावकारी साधना है। नाम के पीछे जो महिमा संयुक्त है उसका स्मरण प्रत्येक बार करते हुये नाम जप करो। क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, ग्रौर लोभ के चंगुल से बचो। पर-छिद्रान्वेषण मत करो, उनकी चर्चा में रस मत लो। यदि ग्रन्य लोग तुम्हारे दोषों की ग्रोर संकेत करें तो उन्हें धन्यवाद दो ग्रथवा, जैसा कि बुद्ध ने किया था, चुप रहो।

अब चूंकि मैंने इसकी चर्चा कर ही दी है, मैं आपको इस घटना के विषय में कुछ विस्तार से बतलाये देता हूँ। एक दिन बुद्ध जी अकेले बैठे हुये थे। कुछ देर बाद कुछ व्यक्तियों ने आकर उनको घेर लिया। उनमें से एक ने, जो बुद्ध की शिक्षाओं और जनता पर इन शिक्षाओं के प्रभाव को अप्रिय समझता था, खड़े होकर बड़ी ही अशिष्ट और अश्लील भाषा में गालियाँ देने लगा, बुद्ध जी शान्त मुस्कराते हुये इस निन्दा को सुनते रहे और उन्होंने प्रतिवाद अथवा असहमति के लिये कोई संकेत भी नहीं दिया। क्रोध से उस व्यक्ति का मुँह झाग से भर गया, उसका गाली-भंडार भी रिक्त हुआ जा रहा था, उसकी जिह्वा थकावट से लड़-खड़ाने लगी थी; परन्तु बुद्ध जी ने मुस्कराहट के साथ केवल इतना ही पूछा कि, "भाई, कुछ और भी कहना है ?" उस व्यक्ति ने कहा, "तुम्हें तो लज्जा छू भी नहीं गई है, तुम इसके प्रतिवाद के लिए कुछ कहते भी नहीं हो।" बुद्ध जी ने कहा, "यदि कोई संबंधी दूर से आपके द्वार पर आता है, और आप जब देखते हैं तो "अच्छा आप" कह देते हैं तभी वह आपके मकान में प्रवेश करता है, ठहरता है, सामान रखता है और आपका अतिथि हो जाता है; परन्तु यदि आप उसके आगमन और कथन की उपेक्षा कर देते हैं तो वह द्वार से ही लौट जाता है और आप उससे छुटकारा पा जाते हैं, है न ऐसा ही ? इसी तरह मैं भी इस निन्दा-प्रवाह की उपेक्षा करता हूँ अतः यह जिस मार्ग से आया है उसी से लौट जावेगा।" निन्दा-स्तुति तो शब्दों का खिलवाड़-मात्र, शब्दों की जादू-गरी है जो चापलूसों और निन्दकों द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इन दोनों को गम्भीर उपेक्षा दृष्टि से देखना चाहिये। तभी आपका वास्तविक मूल्य प्रकट होगा।

प्रशान्ति निलयम्,
दशहरा, ४-१०-१९६५

—०—

१८

प्रभावी-कवच

किसी वस्तु के वास्तविक होने के लिए उसका आकार और पदार्थ होना आवश्यक होता है, यदि उसे असली मानना है। आकार की दृष्टि से कितना ही आकर्षक सुन्दर सेव प्लास्टिक का बनाया जावे, फिर भी उसे पदार्थहीन होने के कारण असली नहीं माना जा सकता। स्वरूप को स्वभाव से भी संपृक्त होना चाहिए। आग भी, यदि उसमें दाहक शक्ति या गुण नहीं है तो, असली अग्नि नहीं मानी जावेगी और ऐसा ही जल के विषय मैं भी सोचना होगा यदि उसमें आर्द्रता उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है। मानव में यदि मानवता नहीं है तो 'मानव' शब्द का उसके लिए दुरुपयोग ही है। ऐसे लोग तो ठगिया और धूर्त ही होते हैं क्योंकि वे अपनी आकृति से लोगों को भुलावे में डालकर अपने को सज्जन, दयालु, ईमानदार और हानि रहित प्रदर्शित करते हैं वे दूसरों को अपनी संगति में लेकर उनकी अपरिमित हानि कर देते हैं क्योंकि वैसा करना उनका स्वभाव ही बन गया है।

राज्यपाल ने अपने भाषण में हमें बतलाया कि आज हमारे देश में भीषण संकट है और उन्होंने आपको निर्माणकारी कार्यों में अपना समय लगाने के लिए अनुरोध किया है। उन्होंने कहा कि देश को सुदृढ़ और महान बनाओ। जो बीमारी इस समय सर्वत्र मानवता को अधिगृहीत किये हुए है—मनुष्यों में मानवता का ह्रास, उसी के अंश से यह देश भी संकटग्रस्त है। प्रशान्ति निलयम् की प्रदर्शनी में लगे चित्रों, फोटोग्राफ और महावाक्यों द्वारा जिन संदेशों को प्रदर्शित एवं प्रचारित किया

गया है उन्हें देखकर जो प्रभाव उनपर पड़ा, उसी से उन्होंने आपको उन शिक्षाओं और संदेशों को अपने जीवन-व्यवहार में लाने का आग्रह किया है। इन संदेशों से मानव को अनुभव कराया गया है कि वे एक महान उद्देश्य को उत्तराधिकार में प्राप्त किये हैं कि वे स्वयं अमर हैं। इसमें सभी से क्षुद्रता और छिछोरपन त्यागने का, और उस महान आदर्श की पूर्ति के लिए उन्नति के शिखर पर पहुँचने का आह्वान किया गया है। धन-यश की क्षुद्र कामनाओं से घृणा और ईर्ष्या में ही वृद्धि होती है; ऐन्द्रिक सुखों की तुच्छ कामना से फूट और झगड़े उत्पन्न होते हैं। वे मानव को पशु और पशु से भी अधम बना देते हैं।

यही क्षुद्रता और छिछोरपन इस देश में आन्तरिक कलह की वृद्धि का कारण बनी हुई है जबकि शत्रु हमारी सीमाओं की ओर बढ़ रहे हैं। जो लोग इनसे प्रभावित हैं; उन्हें न अपनी महानता सूझती है न देश की।

"धर्मो रक्षति रक्षितः" जो धर्म की रक्षा करते हैं अर्थात धर्मानुसार आचरण करते हैं धर्म उनकी रक्षा करता है। धर्म का अर्थ होता है कुछ कर्त्तव्य, नियम जिनसे हमारे कार्य, विचार, भाव और वाणी का नियमन होता है और जिन्हें हम पड़ोसियों, गुरुजनों और छोटों के प्रति परस्पर के हित में स्वेच्छा से करते हैं। मानवता और सज्जनता के नियम युद्ध पर भी लागू होते हैं। शक्तिशाली को दुर्बलों की संपत्ति नहीं हड़पना चाहिये। दिया हुआ वचन पूरा करना चाहिए। यदि भारत धर्म के इन नियमों पर दृढ़ रहता है तो यह धर्म ही अकेला सभी शत्रुओं के लिए प्रभावशाली कवच सिद्ध होगा।

यदि लोगों की 'मति' शुद्ध हो जाती है, अर्थात उनके मनोभाव परिष्कृत हो जाते हैं तो उनका "मत' (धर्म) प्रशंसनीय है। अन्यथा,

यदि व्यक्ति अपने स्वच्छन्द मन की सनक के अनुसार आचरण करता है तो उसका 'मत' (धर्म) निश्चय ही दुष्टताओं को उत्पन्न करने वाला है। बुद्धि जिन योजनाओं पर कार्य करना चाहती है हमें उन पर ध्यान देना चाहिये; न कि बाह्याचार की रुढ़िवादिता पर। व्यक्ति ऊपरी तौर पर धर्मनिष्ठ प्रतीत होवे फिर भी उसके हृदय में घृणा और ईर्ष्या का विष भरा हुआ हो सकता है। क्या उसने यह अनुभव कर लिया है कि ईश्वर, सभी का ईश्वर है ? और वह सर्वव्यापक है ? प्रत्येक वस्तु व्यक्ति और स्थान में, सहस्र शीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्र पाद (असंख्य मस्तक वाला, असंख्य हाथों वाला, असंख्य नेत्रों वाला, असंख्य चरणों वाला आदि) ऐसा ईश्वर है इस वैदिक सूत्र द्वारा भगवान् के मस्तक, नेत्रादि की गणना नहीं, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता का विवरण दिया गया है। आप उसकी दृष्टि के सदा सामने रहते हैं और सदैव उसकी पकड़ और पहुँच के अन्दर हैं। आप जो कुछ सोचते, कहते, करते या अनुभव करते हैं वह सब को जानता और प्रभावित करता रहता है। फिर भी आपके चर्म चक्षुओं और स्थूल बुद्धि से वह नहीं देखा, अनुभव किया जा सकता है। यह सत्य प्रत्येक साधक और मुमुक्षु को अनुभव करना चाहिये, अन्यथा उसकी साधना कभी पूर्ण नहीं हो सकती। यदि तर्क सम्मत विचार किया जावे तो मनुष्य इसी तथ्य को अनुभव करता है कि 'पदार्थ' और 'शक्ति' तत्वत: एक ही हैं।

हम उन विद्वानों को जो प्रशान्ति निलयम् की विद्वान-महासभा की केन्द्रीय कमेटी के सदस्य हैं, सम्मानित कर रहे हैं। इस देश के प्रत्येक गांव में सभी वेदान्त के सिद्धान्तों को फैलाने में संलग्न हैं। वेदान्त से ही शांति और संतोष की प्राप्ति हो सकती है और भारत के करोड़ों व्यक्तियों को इसी से सौभाग्य और कल्याण प्राप्त होगा। पंडितों ने शास्त्रों का गंभीर अध्ययन किया है और वे अपने इस ज्ञान को अपने भाई बहनों तक पहुँचाना चाहते हैं। यदि आप उनके भाषण को सुने तो

वे आपके कृतज्ञ होंगे यदि प्रसन्नता का अनुभव करें तो पुनः-पुनः भी आपके मध्य में पहुँचते रहेंगे। मैं जानता हूँ कि वे सम्मान के भूखे नहीं हैं परन्तु मैंने ही राज्यपाल से उन्हें यह स्वर्णकंकण पहनाने को कहा है क्योंकि इस देश में विद्वत्ता की ऐसी ही परम्परा रही है। राज्याध्यक्ष द्वारा इस प्रकार विद्वता को मान्यता देने से वे भी उत्साह का अनुभव करेंगे और अन्य लोग भी; क्योंकि वे वेद का अध्ययन ऐसी कठिन और विषम परिस्थितियों में भी कर ही रहे हैं।

प्रशान्ति निलयम्,
दशहरा, ५-१०-६५

—०—

१६

कवि का दायित्व

आज हमने इन कवियों को अपने काव्य का पाठ करते हुये और उसकी व्याख्या को सुना। इनको सुनना एक लाभप्रद अनुभव रहा है क्योंकि, जहां तक सामान्य विचारक की बुद्धि जाती है, कवि उससे आगे भी अनुमान कर लेता है। कवि का अर्थ मंत्रदृष्टा भी होता है। वह आध्यात्मिक सूत्रों का उनके अर्थों में दर्शन करने में समर्थ होता है। भगवद्गीता में भगवान को 'कवि' की संज्ञा दी गई है। कवि भूत-भविष्य, वर्तमान् त्रिकालदर्शी होता है। वह काल के ऊपर भी उठकर देखने में समर्थ होता है क्योंकि उसे सामान्य व्यक्ति से अधिक तीक्ष्ण दृष्टि प्राप्त होती है। वह सर्वज्ञ, क्रान्तिदृष्टा, और भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को पहले से ही देखने में समर्थ होता है; उसे ज्ञात होता है कि भविष्य में लोगों के विचार या दृष्टि-कोण क्या होंगे।

भगवान् कवि है और यह सब उनकी कविता है। कवि इस अर्थ में तो दैवीगुण सम्पन्न होने से अगली घटनाओं को जानने, पहचानने की शक्ति रखता है। भगवान् को कविम्, पुराणं अनुशासितारं कहा गया है। इस प्रकार वे हमारे लिए अनुशासन नियम की सीमायें भी निर्धारित करते हैं। गीता और पुराणों में कवि को जो पद प्रदान किया गया है उसके आधार पर उनका उत्तरदायित्व भी महान् है। परन्तु सर्वज्ञ, पुराण और अनुशासितारं होने के बजाय वह ज्ञान का ऊपरी आवरण मात्र, छिछला स्तर लोगों की रुचि को संतुष्ट करने का उपक्रम मात्र देने में समर्थ हो पाते हैं।

प्राचीन काल के कवि आध्यात्मिक अनुशासन और आध्यात्मिक अनुभूतियों का वर्णन अपने काव्यग्रन्थों में विस्तार से कर गये हैं। उन्होंने आध्यात्मिक क्षेत्र में साहसिक कार्य करने की प्रेरणा देते हुए मानव को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया है। पिचय्या शास्त्री ने अपनी कविता में भारतीय संस्कृति के इस पार्श्व पर प्रकाश डाला है। वेदों और उपनिषदों से जो आध्यात्मिक अभीप्सा की धारा प्रवाहित होकर भगवद्गीता, पुराणों, रामायण और महाभारत तक आई है वह मानव में भगवान् के प्रति जिज्ञासा को जाग्रत करने वाली और प्रेरणादायक भी है।

कुछ वक्ताओं ने ऐसा भी कहा है कि पाश्चात्य विद्वानों ने हम पर उपनिषदों की महिमा और वैभव को प्रकट किया है। मैं इस प्रकार के विद्वानों पर अपने शास्त्रों और उपनिषदों की व्याख्या और महत्त्व-ज्ञान के लिए निर्भर होना पसन्द नहीं करता, फिर वे विद्वान् चाहे कितने ही उच्चकोटि के क्यों न हों। क्योंकि विद्वानों को इन सबके व्यवहार में लाने के आनन्द की क्या अनुभूति और ज्ञान हो सकता है? सनातन धर्म की उपेक्षा के लिए, जैसा कि कुछ लोग करते हैं, मैं दीर्घकालीन पाश्चात्य शासन को दोषी नहीं ठहराता हूँ। हमको इसका उत्तरदायित्व स्वयं अपने ऊपर लेना चाहिए। शासकों ने अपना धर्म त्यागने के लिए हमें नहीं लुभाया। हमने स्वयं ही जीवन के मूल्यों का ज्ञान खोकर, अपने दुर्बल विश्वास के कारण यह सब किया। जो काव्य जीवन मृत्यु की मौलिक समस्याओं पर विचार करते हैं, सत् और असत्, पाप-पुण्य का विवेचन करते हैं, उसका महत्त्व शताब्दियों तक रहेगा। और मानव को सभी देशों में सभी कारणों में सहायक बना रहेगा। क्योंकि ये बातें मानव को तैयार रखती हैं; और उलझनों में भी डालती हैं। बाह्य जीवन का ढंग तो बदलता रहता है और बदलते रहना भी चाहिए। इसीलिए इन परिवर्तनों से जो काव्य संबंधित होता है वह भी अल्प-जीवी

होता है। प्रकृति और परमात्मा एक ही द्विदल की दो फांकें जैसे हैं। उन्हीं के बीच से जीवन का अंकुर फूट निकलता है।

जब मनुष्य स्रष्टा को खोजने के लिए सृष्टि से संघर्ष करता है। तो उसे स्थिति के अनुसार ढल जाने में कई उलझनों के बीच होकर जाना पड़ता है। यह समस्यायें सदा से चलने वाली रही हैं और मनुष्य ने इनके प्रति उत्साह भी प्रकट किया है। बाह्य प्रकृति का विरोध किया जा सकता है, नाश किया जा सकता है, और साधना की एक स्थिति में आकर यह रुक भी जाती है, यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता है कि ऐसा कब प्रारम्भ हुआ। इसका कोई मौलिक अस्तित्व नहीं होता है यद्यपि एक सीमा तक इसका रहना उचित ही प्रतीत होता है। इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। और न इसे शाश्वत सत्य ही माना जा सकता है। इसलिए यह न तो सत् है और न असत्; इसीलिए इसे "मिथ्या" कहा जाता है। अर्थात् यह अंशतः सत्य है अंशतः झूठ है। सत् और असत् दोनों ही।

मानव की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने वालों में कवि अग्रदूत होता है। वह प्रेम और एकता के उस मार्ग को प्रशस्त करता है जो सृष्टि के सभी प्राणियों को, एकता और प्रेम के सूत्र से, भगवान से आबद्ध करता है।

सभी देशों के लेखकों और कवियों में एक भयंकर बीमारी उत्पन्न होकर उन्हें दूषित कर रही है—वह हर प्राचीन वस्तु से, चाहे उसकी उपयोगिता और सत्यता की कितनी ही बार क्यों न अनुभूति की जा चुकी हो, घृणा करना है और सिनेमा की फिल्मों, उछलकूद, प्रदर्शन और सनकों से भरे प्रहसनों का 'आधुनिक' और 'प्रचलन' के नाम पर सम्मान करता और उन्हें ऊपर उछालता है। आजकल यही साहित्यिक

फैशन चल पड़ा है। परन्तु इससे उदीयमान राष्ट्र का बड़ा ग्रहित हो रहा है; यह बीमारी उनकी रुचियों को बिगाड़ने और ग्रादर्शों का पतन करने वाली है। जो भूतकाल में श्रद्धा रखता है उसे भीरु बतलाया जाता है, जो किसी नूतनता का प्रदर्शन करता है उसे "प्रखर मेधावी" कहा जाता है। उसी का ग्रन्धानुकरण फैशन बन जाता है। ग्रौर भीड़ की भीड़ उसके पीछे चल पड़ती है। जो स्थापित विश्वासों पर कीचड़ उछाल सकता है वही "हीरो" (नायक) बन जाता है। जो प्राचीन ग्रादर्शों का समर्थन करता है उसे मन्दबुद्धि ग्रौर रुढ़िवादी माना जाता है। कवियों को इस बीमारी से बचना चाहिए। उन्हें ग्रपने को स्वस्थ रखना है; और ग्रन्य लोगों को भी स्वास्थ्य-प्रद सामग्री प्रदान करना चाहिए।

उन्हें ग्रपनी चिन्ताग्रों ग्रौर क्षोभ से, भय ग्रौर सन्देहों से ग्रंधमान्य-ताग्रों ग्रौर उद्विग्नताओं से, लोगों के मानस को दूषित नहीं करना चाहिए। उन्हें कम से कम क्रोध से तो अपने को मुक्त कर ही लेना चाहिए क्योंकि क्रोधावेश में लिखा हुग्रा साहित्य निश्चय ही ग्रसत्य ग्रौर भयोत्पादक होता है।

विश्वामित्र को, ग्रपनी वर्षों की घोर तपश्चर्या के पश्चात भी, जब वशिष्ठ द्वारा "राजर्षि" संबोधन किया गया; तो वे ग्राग बबूला हो उठे। क्योंकि वे ग्रब "राजर्षि" नहीं, ग्रपने को 'ब्रह्मर्षि' कहलवाना चाहते थे। इसलिए एक चांदनी रात्रि में वे वशिष्ठ की कुटिया के पास छिपते हुए जा पहुँचे; जबकि वे ग्रपने शिष्यों के एक समुदाय को पढ़ा रहे थे। विश्वामित्र अपने साथ लाये हुए एक तीक्ष्ण शस्त्र से वशिष्ठ का वध करने के ग्रवसर की प्रतीक्षा में थे। वे छिप कर इन लोगों की बातें सुनने लगे कि वशिष्ठ क्या बोल रहे हैं। विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जबकि उन्होंने सुना कि वशिष्ठ उस सुन्दर, शुभ्र

रात्रि की तुलना विश्वामित्र के शीतल, प्रखर, स्वास्थ्यप्रद, स्वर्गीय विश्वजनीन और सर्वहितकारी हृदय से कर रहे थे ! उनकी दृढ़ पकड़ से तलवार गिर पड़ी। वे दौड़कर अपने प्रतिद्वन्दी वशिष्ठ के चरणों में साष्टांग दण्डवत करते हुए गिर गए और उनके चरणों को पकड़ लिया। वशिष्ठ ने उन्हें पहचाना और संबोधित किया "ब्रह्मर्षि उठो, उठो,।" उन्होंने विश्वामित्र को उठाकर अपने आसन पर बिठाया। वशिष्ठ ने समझाया कि वे क्यों ब्रह्मर्षि कहलाने के अधिकारी तब तक नहीं हो सकते थे जब तक कि उनके हृदय में अहंकार भरा था। जब उनके मस्तिष्क से उभरा हुआ अहंकार अदृश्य हो गया वे अपने प्रतिद्वन्दी के चरणों में नत मस्तक हो गये तो वे उस सम्मान के अधिकारी हो गये। जिसकी अब उन्हें कोई इच्छा नहीं रह गई थी, यद्यपि भूतकाल में वे बड़े आकाँक्षी थे, और अब वह उस सम्मान के पात्र भी सिद्ध हो गये थे। जो जनता का पथप्रदर्शक बनने की आकांक्षा रखता है उसे पहले अपने हृदय से स्वार्थ, घृणा और द्वेष तो निकाल ही देना चाहिए। उसके शब्द सुनने में मधुर और आत्मा को भोजन देने वाले होना चाहिए। ऐसे शब्द हों जिन्हें अन्य लोग सर्वव्याधि हरण करने वाली औषधि मानकर अपनावें। यदि कोई ऐसे महान काव्य का प्रणयन करने में असमर्थ है तो पहले उसे अपने स्वभाव और लौकिक-पारलौकिक दृष्टि-कोण को शुद्ध करके काव्य के उन उच्च आदर्शों तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए तभी वह जनता को स्वास्थ्यप्रद काव्य दे सकेगा।

प्रशान्ति निलयम्,
दशहरा, ६-१०-६५

—०—

२०

दीप मालिका के अवसर पर (नरक चतुर्दशी)

मानव में पशुत्व और देवत्व तीनों का संश्लेषण होने के कारण तीनों ही तत्वों का निरन्तर संघर्ष चलता रहता है कि कौन प्रबल रहे। आप प्रयास करें कि इसमें देवत्व ही निम्न पशुत्व और दुर्बल मानवीय भावनाओं के ऊपर विजयी रहे।

दीपमालिका का यह उत्सव 'नरक' की उन वृत्तियों की पराजय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए होता है जो कि मानव को दैवत्व से पतन की ओर प्रेरित करने वाली होती हैं। नरकासुर उन सभी वृत्तियों का प्रतीक था जो कि सदा मनुष्य के उत्कर्ष में बाधा डालती रहती हैं। इसी का वध श्रीकृष्ण जी ने आज के ही दिन किया था। इसीलिए इसका उत्सव मनाया जाता है। नरकासुर का ही दूसरा नाम भौमासुर था। यह भूमि का पुत्र होने से भौमासुर कहा जाता था। पृथ्वी का यह लाड़ला बेटा, सभी पार्थिव ऐश्वर्यों और भोगों को अपने लिये सुरक्षित करके उन्हीं में लिप्त हो गया था। सभी पार्थिव भोग और उनमें आसक्ति मानव को बरबस शोक और दुःखों में डुबाते हैं। पार्थिव ऐश्वर्य धन, सम्पत्ति और ऐन्द्रिक भोग, आध्यात्मिक ऐश्वर्य, आत्म-ज्ञान और आत्मविश्वास के समक्ष नहीं ठहर पाते हैं। आज मानव अपोलोयान, स्पुतनिक में बैठ कर अपने राकेट और अन्तरिक्ष यान के सहारे अन्य ग्रहों की यात्रा के लिये इसीलिए प्रयत्नशील है कि राष्ट्र विशेष को अपने अन्य पार्थिव प्रतिद्वन्दी पर अधिक सक्षम प्रहारक शक्ति प्राप्त हो जावे। मानव को स्मरण रखना चाहिये कि यह ब्रह्माण्ड और ब्रह्म

तत्वतः, शान्ति, प्रेम और ज्ञान मूलक ही हैं। वह और उसकी दुनियां एक दूसरे में अनुस्यूत अथवा ओत-प्रोत हैं।

या तो इस सम्पूर्ण विश्व को विशाल दृष्टि से देखने पर अथवा स्वयं के अन्तर्जगत का तात्विक निरीक्षणकरनेसे (कॉस्मिक) विश्व-जनीन दृष्टि प्राप्त हो सकती है। मानव पहले अपने को ही जान ले कि वह क्या है। इस शरीर रूपी पुर में हृदय कमल रूपी मंदिर के ऊपर सूक्ष्म आकाश है। इसी में ही पृथ्वी, स्वर्ग, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, तारागण तथा अन्य ग्रह हैं। जैसा कुछ वाह्य जगत में दृश्यमान है वैसा ही 'पिण्ड' में होता है। यदि मानव अन्तरिक्ष में पृथ्वी परिक्रमा करने तथा चन्द्र आदि अन्य ग्रहों पर उतरने का लोभ संवरण कर अपने अंतर्जगत के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुआ होता तो अखण्ड आनन्द और शान्ति को पा लेता। प्रशान्त बाह्याकाश में मानव की यात्रा शत्रुओं से निर्भय होने के लिए आयोजित की जाती है। परन्तु इस प्रतिद्वन्द्विता से निरन्तर भय की पारस्परिक वृद्धि ही हो रही है। जो विजय, अथवा सुरक्षा हथियारों द्वारा प्राप्त की जाती है प्रशंसनीय नहीं होती है क्योंकि वह अस्थाई और क्षणिक होती है। वह सदा खतरे में रहती है और एक झोंके में ही जा भी सकती है। जो विजय प्रेम और सहानुभूति के आधार पर प्राप्त होती है वह पराजित को भी सदा के लिए स्वेच्छया सहयोगी बना देती है। 'नर' की जब 'क' अर्थात् बुद्धि विकृत हो जाती है तो वह भयंकर लालसा अथवा सम्मोहन से ग्रसित होकर विनाश और शोक समुद्र में उसे डुबाकर नरकासुर बना देती है। इस 'क' अर्थात् बुद्धि को विनम्रता और भक्ति से सर्वोच्च ज्ञान अर्थात् ब्रह्म में ही लीन करना उचित है।

उत्सव का अवसर कब होता है ? जब किसी महापुरुष का जन्म होता है अथवा किसी दुष्ट के दुराचार की समाप्ति होती है। तभी

त्योहार और उत्सव मनाया जाता है। दीपावली नरकासुर के विनाश पर मनायी जाती है। उसका अन्त कैसे हुआ था ? भगवान् कृष्ण के द्वारा और उन्हीं के समक्ष ही नरकासुर ने अंतिम बार आंखें मूँद ली थीं। ऐसे लीन होने पर तो कोई भी ईर्ष्या करेगा। पुण्य के उत्कर्ष और पाप के अपकर्ष पर मनुष्य को उत्सव मनाना ही चाहिए। यदि आप की संतान किसी मन्दिर में पूजा के लिए, अथवा स्वामी जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने की इच्छुक हो तो उसकी भक्ति की नवलतिका को आप यह कह कर न झुलस दें कि "अभी तेरी अवस्था भक्ति करने की नहीं है, वृद्ध होने पर ही यह सब शोभा देता है।" बल्कि उसे उत्साहित कीजिये और अपने को सौभाग्यशाली मानकर उत्सव मनाइये।

"पुत्रवती युवती जग सोई—रघुपति भगत जासु सुत होई।"

यातो उसे आप स्वयं भक्ति और प्रार्थना का महत्व समझाइये अथवा स्वयं उससे भगवद्‌आराधना का उत्साह ग्रहण कीजिये।

जब नवयुवक अनुभव करता है कि भगवान सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी है; तथा उसी का निवास उसके हृदय में भी है; तो वह निश्चय ही वेदादेश, 'सत्यं वद। धर्म्मं चर' का अनुसरण करता है। वह तब निश्चय ही सत्य भाषण करेगा और उसका आचरण भी धर्मानुकूल ही होगा। कुछ लोग कहते हैं कि यह कलियुग है और इस में तो असत्य से ही सफलता मिलती है। पर आज भी, ऊपर दिखावे की बातें जाने दें तो, ईमानदारी अब भी सर्वश्रेष्ठ नीति है। एक झूठ को बनाये रखने के लिए १०० झूठ और बोलना पड़ जाती हैं। जबकि सत्य बोलने के लिए न कुछ आयास करना पड़ता है और न इसमें कहीं पर भी लांछित और अपमानित होने की संभावना ही होती है। जो आप कहते हैं उसी

पर आचरण कीजिये और जो करना चाहते हैं वही कह जाइये। जो अनुभव में आया हो वैसा ही शब्दों से प्रकट कीजिये इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं, न कुछ उसमें से छिपा कर ही बोलें।

एक चोर था, जो चोरी के लिए एक घर में घुसा। रात्रि में उसी समय गृहपति जाग गया। कुछ आहट पाकर उसने आवाज दी "कौन है?" चोर ने अपने बचावे की एक तरकीब सोच ली और मालिक का ध्यान हटाने के लिए बिल्ली की बोली में "म्याऊँ" शब्द उच्चारण किया। मालिक ने सोचा कि अलमारी के पीछे बिल्ली है अतः उसने कमरे का दरवाजा बन्द करके बाहर से सांकल लगा दी इस प्रकार चोर के निकल भागने की संभावना ही समाप्त कर दी। चोर उसी कमरे में कैद हो गया। चोर ने स्पष्ट सुना कि गृहपति ने अपनी पत्नी से कहा "अब शेष रात्रि के लिए इसे वहीं रहने दो। यदि वास्तव में बिल्ली ही हुयी तो प्रातःकाल भगा देंगे।" यदि आप अपनी वाणी में सत्य नहीं बोलेंगे तो 'म्याऊँ' कहने मात्र से उद्धार नहीं होगा।

एक असत्य स्थिति को अंत तक बनाये रखना महान दुस्तर कार्य होता है; अतः ईमानदार और स्पष्ट व्यवहार ही सुरक्षित रहने का सर्वोत्तम साधन है। "उघरे अन्त न होइ निबाहू—कालनेमि जिमि रावण राहू।" पहले ही गलत कदम न उठाइये कि जिसे संभालते-संभालते ही पतन के गर्त में गिरना पड़े। सत्य ही मानव का सहज स्वभाव है और जब वह अपने इस स्वभाव (सत्य) में प्रतिष्ठित होता है तो आनन्द का श्रोत उसके हृदय को भर देता है। जब आप किसी सत्य से इनकार करते हैं तो अपने को ही धोखा देते हैं। लज्जा की कालिमा आपके मस्तिष्क पर साया डालती है और भय उपजाती है। आप रजोगुण के प्रभाव में आकर लोभ, काम, घृणा और घमंड से प्रेरित होकर असत्य को अपनाते हैं। विनम्रता, वैराग्य और संतोष तथा शान्ति आपको सत्य पथ पर ले जाते हैं।

एक विक्रेता खाली बोतलें लिये बाजार में से होकर जा रहा था। उसे आशा थी कि इस सौदे से उसे १० रु० का लाभ होगा और इस प्रकार १० दिन में उसे १०० रु० का एक "हरापत्ता" प्राप्त हो जावेगा। इस पूंजी से वह कोई अधिक लाभ का धन्धा कर लेगा जिससे शीघ्र ही 'लखपती' बन जावेगा। फिर वह एक बंगला बनवायेगा और उसके आस-पास एक बगीचा लगाकर नौकरों की एक टोली से इनको सदा स्वच्छ और सुसज्जित रक्खेगा। उसने कल्पना की उड़ान में अनुभव किया कि वह उसी बंगले में एक सोफे पर बैठा अपने पौत्रों के साथ क्रीड़ा में मग्न है। इन्हीं में कहीं से एक बच्चा किसी नौकर का आकर मिल जाता है। इस अयाचित, अनाधिकृत, बालक के प्रवेश पर वह कुपित होकर और अपनी इस कल्पना को सत्य मानकर उसे दबोचने के उपक्रम में अपनी बोतलों की टोकरी को गिरा देता है। पौत्र, बंगला, सोफा, सभी कुछ यहाँ तक कि लागत भी, सड़क के कूड़े का भाग बन जाती है। लोभ की दुर्बल भित्ति पर बना सारा स्वप्न ही नष्ट हो जाता है।

'सत्यमेव जयते।' इसमें रंचमात्र भी सन्देह करना व्यर्थ है। गीता में दो वेदोक्त अष्टाक्षरी सूक्तियाँ हैं जिनसे इसकी पुष्टि होती है कि सत्यमेव जयते नाऽनृतम्, वे हैं:--"संशयात्मा विनश्यति" तथा "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।" सन्देह में पड़े रहने वाले का विनाश ही होता है। दृढ़-निष्ठा और श्रद्धा से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। यदि लोग सन्देह या संशय के दास हैं तो वे अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे? विश्वास रखिये भगवन्नाम ही वह नौका है जो आपको इस परिवर्तन रूपी पारावार से निरापद पार ले जाकर अक्षय-पद में प्रतिष्ठित करेगी।

रामचरित मानस में नाम की महिमा रूप से कहीं अधिक बढ़कर गायी गई है। "राम न सकहिं नाम गुण गाई।" रूप के ध्यान से नाम-

जप कहीं अधिक सत्वर और प्रभावशाली होता है। द्रौपदी ने अपने उद्धार के लिए कृष्ण को बुलाने के लिये कोई रथ नहीं भेजा था। उसने व्याकुल होकर नाम पुकारा। तत्काल कृष्ण ने वहीं पर उसकी लज्जा रक्खी और सन्निकट अपमान से बचा लिया। त्रेतायुग में जब रामायण की लीला हो रही थी नल, नील अपने सहायक वानरों की सहायता से लंका पहुँचने को रामादल के लिए सेतु निर्माण में संलग्न थे। जिन पत्थरों पर वे पवित्र नाम "राम" लिखते जाते थे वे जल पर तैरने लगते थे परन्तु लहरों और हवा के झोंकों से शीघ्र ही यह टुकड़े सम्बद्ध न रह कर छिन्न-भिन्न हो जाते थे। इस प्रकार सेतु नहीं जुड़ पाता था, जिससे सेना पार जाती। इस परिस्थिति से निकलने के लिए वहीं किसी ने सुझाया कि एक पत्थर पर 'रा' और दूसरे पर 'म' लिख लिखकर पत्थरों को तैराओ। परिणाम आशा के अनुकूल ही हुआ और अब पत्थर आपस में सटते गये। पुल बन गया। नाम ही आप के लिए भी बेड़े का कार्य करेगा। यह आपको भगवान से संयुक्त रखेगा, तथा भगवान की कृपा आप पर उतरेगी।

अपनी श्वांस के साथ नाम जप जारी रखते हुए आप अपने दैनिक जीवन के सभी कार्यों को करते रहिये और पतन की कोई आशंका ही मत कीजिए। नाम लेते-लेते ही मीरा ने विष का प्याला चरणामृत मान कर पी लिया और वह उसे अमृत ही होकर लगा। भर्तृहरि ने कहा है "हे नाथ यह भोग मुझे ही खाये जा रहे हैं वे मुझे आत्म रूप में स्थित ही नहीं होने देते। नहीं, मैं अवश्य ही इनसे मुक्ति प्राप्त करूँगा। मैं उसी अखण्ड आनन्द कंद ब्रजचन्द्र की शरण लूँगा। अब मैं पदार्थों की कामना न करके 'परार्थ' अर्थात् (सर्वोत्तम कल्याण) का कामी बनूंगा।" भक्ति और श्रद्धा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। जन्म, जीवन और मृत्यु के साहसिक अभियान में संलग्न जीव के लिए ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई पुरस्कार नहीं सोचा जा सकता। जब मन का परिणय प्रवृत्ति

से होता है तो "बन्धन" ही सन्तान रूप में प्राप्त होता है। जब यह निवृत्ति से नियोग करता है तो 'मुक्ति' का जन्म होता है।

यदि आप निवृत्ति (यानी आत्मा परमात्मा का आध्यात्मिक पुनर्मिलन) पथ के पथिक हैं तो आप यात्री होते हुए भी सहज ही निर्भयता का अनुभव करेंगे। इससे आपको शक्ति और साहस की प्राप्ति होगी। वासना और इच्छायें ही व्यक्ति को दुर्बल बनाती हैं तथा उससे सत्तारूढ़ और प्रभावशाली लोगों के सामने दीनता प्रकट कराती है। वैराग्य से स्वाभिमान आता है। तथा वह मानापमान को सहने में समर्थ होता है। कुछेक ऐसे होते हैं जो पराजय की निराशा की संभावना मात्र से ही रो पड़ते हैं। यह व्यवहार तुच्छ है। जब आपके हृदय मंदिर में स्वयं प्रभु का निवास है। तो आपको किसका भय या दुःख है ? वे ही तो आपकी रक्षा करते हुए पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। वे सदैव ही सभी में व्याप्त रहते हैं। आप चाहे जहाँ हों, चाहे जो कुछ कर रहे हों, चाहे जिससे आपका साबका पड़ रहा हो। इस तथ्य को सदैव ही स्मरण रखिये। आपको सफलता अवश्य मिलेगी। ध्यान रखिए, नाम-जप सदैव ही आपकी जिह्वा पर रहे। जिस 'गृह' में भगवान के नाम का प्रकाश नहीं होता वह 'गुहा' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहता। जब भी आप इसमें प्रवेश करें, बाहर निकलें अथवा निवास करें, इसे नाम जप से सुवासित, पवित्र और आलोकित करते रहें। अज्ञान रूपी अंधकार में इसे दीप मानकर संध्या को प्रज्ज्वलित कीजिए, प्रातःकाल सूर्य के शुभागमन के समान ही इसका स्वागत कीजिये। यही तो वास्तव में सच्ची दीपावली है। "राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।"

सनातन धर्म की ३ मौलिक मान्यतायें हैं (१) जीवन में कर्म की अनिवार्यता, (२) पुनर्जन्म, (३) और अवतारवाद। जो इन उपर्युक्त तीन बातों में आस्था नहीं रखता उसे हिंदू कहलाने का कोई

अधिकार नहीं है। जिसका इन तीनों में विश्वास है वह भारत की संतान और भारतीय है। कृष्णावतार में कालीनाग नाथन की घटना का वर्णन आता है। इस घटना का आन्तरिक अर्थ यही है कि कालीनाग और उसके सहस्र फन वह वासनायें और इच्छायें हैं जो मनुष्य के हृदय की गहराइयों में छिपी रहती हैं। भगवान का इन फणों पर उचक कर आरूढ़ होने का अर्थ प्रभुकृपा का उतरना है जिससे विष निष्कासित होकर वह स्थान और जीव पवित्र और सुरक्षित हो जाता है। जब कृष्ण फण-फण पर नृत्य करते हैं तो नाग निरापद और पालतू जैसा हो जाता है। अतः इन इच्छाओं का अन्त हुए बिना मानव दिव्य नहीं हो सकता। जब तक आप अपने में शिवत्व के गुणों का आह्वान नहीं करते हैं तो 'शिवोऽहम्' शिवोऽहम् की रट लगाने से क्या लाभ ? आप 'शिव' होने का दम भरकर अपने ऊपर भगवान् के अपराध का पाप सिर पर क्यों लादते हो ?

जो धन सम्पत्ति, पद, मानमर्यादा बुद्धि आदि आपको प्राप्त हैं उस पर इतराने की क्या आवश्यकता है ? यह सब तो आपको धरोहर के रूप में इसीलिए सौंपे गये हैं कि इसके द्वारा आप दूसरों को लाभ पहुँचावें। यह सब उसी प्रभु की कृपा के प्रमाण हैं। आपके लिए सेवा के सुयोग हैं और उत्तरदायित्व के प्रतीक हैं। दूसरों के अपराधों और त्रुटियों पर कभी आनन्दित नहीं होना चाहिए। दूसरों की त्रुटियों और भूलों पर सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए दूसरों के सद्गुणों का अनुसंधान करना चाहिए और उनके संबंध में केवल शुभ विचार ही प्रकट करना चाहिए। परनिन्दा तो श्रवण ही नहीं करना चाहिए। "परनिन्दा सम अघ न गिरीशा" दीप मालिका के इस शुभ अवसर पर नामस्मरण दीपक का अनुष्ठान कीजिए और इसे ही सदैव अपने ओष्ठ द्वार पर प्रज्ज्वलित रखिए। इस दीपक को भक्ति के तेल और लगन की बत्ती डालकर सदा आलोकित रखिये। यह दीपक आपके जीवन के प्रत्येक

क्षण को अलोकित करे। नाम का प्रकाश आपके आभ्यंतरिक और बाह्य अन्धकार को दूर भगादे। जिसे भी आपके संपर्क और निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हो उसे आप शांति और आनन्द का खील-खिलौना उपहार देने में समर्थ होवें।

प्रशान्ति निलयम्,
(नरक चतुर्दशी), २४-१०-१९६५

—०—

२१

दीप मालिका

भगवान् कृष्ण के द्वारा नरकासुर का वध किये जाने पर अमावस्या की घोर अन्धेरी रात के बाद अब शुक्लपक्ष का प्रारंभ होगा। दवत्व और दानवत्व मानव के मानस पर अधिकार जमाने के लिए प्रकाश और अन्धकार के रूप में सदा संघर्ष करते रहते हैं। दानवत्व मनुष्य पर विपत्तियों के पहाड़ लाद देता है जबकि दैवत्व मनुष्य को निराशा के सामने घुटने टेकने से रोकता है। दोनों ही का स्वागत करना है क्योंकि विपत्तियों के कड़ाह में पक कर मानव के दोष भस्म हो जाते हैं और मिश्रित धातु से शुद्ध स्वर्ण अलग हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति से लोभ, काम, घृणा, ईर्ष्या अभिमान दंभ के रूप में दानवत्व ही प्रज्वलित रहता है। रावण का काम, शिशुपाल का अभिमान, कंस की घृणा तथा हिरण्यकश्यप की ईर्ष्या प्रत्येक मानव हृदय को कलुषित करते हैं। जप, ध्यान के माध्यम से आत्मानुशासन ही इन लपटों को बुझाने में समर्थ होता है और ज्वाला शान्त हो जाती है। इन्हीं वृत्तियों के सामूहिक प्रतीक नरकासुर के विनाश को हम दीप मालिका उत्सव के रूप में मनाते हैं क्योंकि इन्हीं के फलस्वरूप ही तो मनुष्य को नरक में जाना होता है।

मनुष्य अपने हृदय में त्याग, श्रद्धा, सेवा, सहानुभूति, प्रेम और सत्य की जिस खेती को उन्नत करना चाहता है उसमें पूर्वो वृत्तियाँ अवांछनीय घास पात के समान बढ़कर कृषि को आच्छादित कर लेती हैं उपनिषदों में इस आंतरिक कृषि को समुन्नत करने के साधन और उप-

करणों का वर्णन है। कँटीली झाड़ी, घास पात को उखाड़कर, खेत की जुताई खुदाई करके क्यारियाँ बना कर उसमें प्रेम का पानी देना होता है तथा खाद, कीटाणुनाशक, निराई-गुड़ाई सभी इस विचित्र नवीन कृषि के अनुकूल कार्य करने होते हैं। साधक तो एक ऐसा किसान होता है जो अपनी कृषि को सफल बनाने के लिए कृतसंकल्प होता है क्योंकि उसे भली प्रकार ज्ञात है कि वह इस अद्भुत कृषि से अमूल्य, अलौकिक आनन्द की फसल प्राप्त करेगा। उसके लिए तो प्रत्येक क्षण का सदुपयोग इसी कृषि के लिए आवश्यक हो जाता है।

नगय्या, जिन्होंने पोतन त्यागय्या और रामदास जैसे महान भक्तों का अभिनय किया है, ने अभी आपके समक्ष तीन प्रकार के साधकों और भक्तों का वर्णन किया है (१) जो आवागमन के बंधन से मुक्त होकर परब्रह्म में लीन होने की कामना करते है (२) वे जो परिणाम कीं चिन्ता किये बिना अपने सभी कार्य और अनुभवों को भगवदार्पण कर देते हैं (३) वे जो लौकिक और पारलौकिक लाभ के लिए भगवदाराधन करते हैं। उन्होंने कुछ संकोच के साथ स्वीकार किया है कि वे इस अन्तिम कोटि में आते हैं। परन्तु किसी को भी इसके लिए लज्जित होने कारण नहीं है कि वह भगवान से सान्सारिक लाभ, सुख के लिए याचना करता है। अन्य किसी व्यक्ति के सामने घिघियाने से यह कहीं अच्छा है कि भगवान के चरणों में ही पड़कर अपना मनोरथ प्रकट कर दे। पोतन ने अपनी कृति, सिंह भूपति को, उस शासक की याचना करने पर भी, अर्पण करने से इनकार कर दिया था क्योंकि उन्होंने घोषणा की थी भगवान से बढ़कर अन्य कोई भी स्वामी नहीं हो सकता। तंजौर के महाराज की प्रचुर भेंट, दक्षिणा को त्यागय्या ने ठुकरा दिया था क्योंकि महाराज उनकी भक्ति और संगीत प्रतिभा को पुरस्कृत करना चाहते थे। उन्होंने कहा, "राम का सामीप्य उस सभी धन वैभव से कहीं अधिक आनन्ददायक है जो कि मनुष्य दे सकता है।" त्यागैय्या

वैरागियों का राजा था। पैरों में नेवर, तिलक, छाप, माला, और जटाओं से किसी की ईश्वर भक्ति नहीं नापी जा सकती। लक्ष्य, उद्देश्य और मनोभावों की पवित्रता का होना आवश्यक है जिससे कि भक्ति का अनिवार्य तत्व छलक कर हृदय से बाहर न गिर पड़े। सच्चे भक्त की पहिचान ३ बाहरी लक्षणों से की जा सकती है :—(१) अटूट विश्वास (२) विनम्रता और (३) कुसंगति से भयभीत रहना। उसे सत्य और प्रेम की अन्तिम विजय में अटूट विश्वास होता है। वह बड़ों और विद्वानों के प्रति विनम्र ही रहेगा। वह कुसंगति से सदा इसी लिए दूर रहना चाहेगा कि कहीं उनके संपर्क से उसके अन्दर भी कुविचार और कदाचार उत्पन्न होकर उसकी अन्तरात्मा की आवाज को ही न दबादें।

भक्ति कहीं बाहर से नहीं लाई जाती है; वह तो व्यक्ति के अपने उस प्रयास से उत्पन्न हो जाती है जिससे मनुष्य अपने मस्तिष्क को को शुद्ध और पवित्र करना चाहता है; जिससे वह मानव और विश्व के उद्भव, कारण, पर विचार कर सके और विचार कर सके उन कारणों पर भी कि क्यों व्यक्ति अपने चारों ओर के पदार्थों से आकर्षित होता है, उसका इनसे क्या सम्बन्ध है ?

जनक ऐसे ही अथक जिज्ञासु थे। वे यद्यपि एक विशाल राज्य के अधिपति थे, फिर भी वे विद्वानों और सन्तों के मध्य रहने के ही लिए दरबार लगाते थे, और उनके शास्त्रार्थों से सत्य के स्वरूप से परिचित होते रहते थे। वे प्रत्येक आगत विद्वान से प्रश्न करते थे। उदाहरण के लिए उन्होंने याज्ञवल्क्य जी से पूछा था, "आपका पदार्पण किस लिए हुआ है ? आप कुछ गायें चाहते है ? अथवा आपको किसी सूक्ष्म विषय पर शंका समाधान करना है ? सभी लोग लगभग याज्ञवल्क्य की भांति यही उत्तर देते वे "महाराज हमें दोनों ही की आवश्यकता है।"

बृहदारण्यक उपनिषद के कई अध्यायों में जनक की सभा के ऐसे शास्त्रार्थों का वर्णन आता है। याज्ञवल्क्य जी ने अपने असीम ब्रह्मज्ञान से अनेकों ऐसे उलझे हुये दार्शनिक प्रश्नों का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से उत्तर दिया। जनक ने एक ऐसा यज्ञ किया था जिसमें उन्हें अनेकों वस्तुओं का दान करना था। सोने से मढ़े हुये खुर और सींगों वाली एक सहस्त्र गौयें उसको विशेष पुरस्कार में दी जाने को थीं जिसे विद्वानों की सभा सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी घोषित करे। ज्यों ही याज्ञवल्वय को, जिन्हें अपनी विद्वता और ब्रह्म वेत्ता होने का स्वाभिमान था, यह ज्ञात हुआ उन्होंने अपने शिष्य को आज्ञा दी "पुत्र इन गायों को हाँक कर आश्रम ले चलो।" ब्राह्मणों को उनकी इस धृष्टता पर क्रोध आया और उन्होंने यज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। जिसमें वे अपनी योग्यता को प्रमाणित भी करें। यज्ञशाला के अध्यक्ष ने उन से यज्ञ के फल के सम्बंध में प्रश्न पूछे। इन्द्रियों और भोगों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रश्न पूछे गये। भुज्यु जैसे कई विद्वानों ने उनसे अलौकिक ज्ञान के केन्द्र के विषय में प्रश्न पूछ कर भ्रमित करना और उखाड़ देना चाहा। अन्य लोगों ने आत्मा और सर्वान्तिर्यामी के सम्बन्ध में प्रश्न किये। प्रश्नकर्ताओं में सबसे तीखे प्रश्न गार्गी नाम की एक स्त्री ने किये। जिसके तूणीर में अचूक और तीखे अनेकों प्रश्न रूपी बाण भरे पड़े थे। अन्त में उसी ने अपने स्थान पर खड़े होकर घोषणा की, "अब मैं दो प्रश्न पूछूंगी। यदि इनका उत्तर संतोषजनक हुआ तो निश्चय है कि हम से कोई भी इनके ब्रह्मज्ञान को पराजित नहीं कर सकेगा। "वह क्या है ? जो इस सब ब्रह्माण्ड में ताने-बाने की तरह समाया हुआ है जो स्वर्ग से भी ऊपर और पृथ्वी के भी नीचे है और जो इन दोनों में भी है, इनके मध्य में भी है, जो पहले था, अब है और आगे भी रहेगा ?" यज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया "आकाश" और गार्गी को यह उत्तर पसंद आया। तब गार्गी ने दूसरा प्रश्न पूछा, "आकाश में ताने-बाने के रूप में क्या समाया हुआ

है ? यज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "यह अक्षर ब्रह्म है; जो कि न तो स्थूल है, न सूक्ष्म है, जो न लम्बा है न छोटा है। यह न तो वायु है और न अन्य कोई अदृश्य पदार्थ है। उसके आँख, कान जैसे कोई अंग भी नहीं है तथा उसका कुछ बाह्य या आभ्यान्तरिक भेद भी नहीं है। वह सब कुछ देखता है पर उसे कोई नहीं देख पाता है। उसे कोई विचार करके नहीं जान पाता है वही सब कुछ सोचता है। उसे कोई जान भी नहीं सकता परन्तु वही सब कुछ जानता भी है।" गार्गी ने मान लिया कि वे (यज्ञवल्क्य जी) ही ब्रह्मज्ञों में सर्वोपरि हैं। उन्हें कोई भी पराजित नहीं कर सकता। अपनी सभा के ऐसे प्रश्नोत्तरों और शास्त्रार्थों से जनक बड़े ज्ञानी हो गये थे। "जाने बिनु न होय परतीती + बिनु परतीति होय नहीं प्रीती।"

आप जैसा सत्संग करेंगे वैसी ही आपकी प्राप्ति होगी। लोहार की दूकान पर बैठते-बैठते आपके वस्त्रों पर काली धूलि और खाल पर भी ऐसा ही मैल जम जावेगा। इसी से आध्यात्मिक जीवन के लिये सत्संग का बड़ा ही महत्त्व है।

दैनिक जाप, ध्यान के लिये आपका एक एकान्त और निश्चित स्थान होना चाहिये। जिससे आपको नित्यप्रति के कार्य-कलाप में उच्च भावनाओं और विचारों की सुगन्धि प्राप्त होती रहे। यदि स्थान परिवर्तन होता रहता है तो वह सत्संग बदलने के समान होगा; उससे जितना स्थायी लाभ और शीघ्र प्रभाव होना चाहिये, नहीं होगा। अभिभावकों और सयाने लोगों को चाहिये कि अपने अभिभाव्यों का "वहीं का वहीं" पर सुधार करें जबकि उन्हें पथभ्रष्ट होते हुये या भूलते हुये पावें। एक गोपीचन्द जी लखनऊ से इलाहाबाद जा रहे थे। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को स्टेशन पर भेंट के लिये बुलाया। छोटे ने भेंट होते ही पिता के स्टेशन पर चरणस्पर्श किये, बड़े ने नहीं किये।

गोपीचन्द को क्रोध आ गया। उनकी पत्नी ने समझाया कि, "लेखक और कवि तो छोटी-छोटी बातों को बड़ा तूल दे दिया करते हैं।" परन्तु गोपीचन्द ने कहा, "उसका व्यवहार उसके हृदय की झांकी उपस्थित करता है। उसमें कृतज्ञता लेशमात्र भी नहीं है। इससे यह भविष्य में क्रूर और निर्मम ही बनेगा।"

आप भले ही दावा करें कि पुट्टिपर्ती आते हुये आपको बीसों वर्ष हो गये हैं; अथवा यहीं आपने स्थाई निवास बना लिया है; परन्तु जबतक आप मेरे उपदेशों पर आचरण नहीं करते हैं, आपका यह दावा खोखला और दम्भपूर्ण है। यदि आपके हृदय में जीवमात्र के लिये प्रेम है और यह विश्वास करते हैं कि सभी के हृदय में ईश्वर का निवास है, आप चाहे जहाँ भी हों, आपकी प्रार्थना मुझे प्राप्त होती रहेगी और मेरी कृपा आपको प्राप्त होगी। मैंने अपने पिछले जीवन में नानासाहब को बताया कि मैं चींटियों में, कीड़ों में और जानवरों में भी हूँ। बाबा के लिये रखी भेंट को जब एक कुत्ता खा गया तो यह घोषित किया गया कि वह बाबा को प्राप्त हो गई है क्योंकि बाबा उसे उसी रूप में प्राप्त करने पधारे थे। नाना कहते हैं कि वह मुझे खिलाता है परन्तु जब मैं वहाँ कुत्ते के रूप में जाता हूँ तो वह मुझे भगा देता है।"

सदा प्रेम से परिपूर्ण रहो। किसी के प्रति भी विषाक्त, कटु-वाक्यों का प्रयोग न करो, क्योंकि बाणों की अपेक्षा शब्दों की पीड़ा अधिक मर्मभेदी होती है। पीड़ितों से सदा धीरे से मृदुभाषण द्वारा उनके कष्टों, हानि और अज्ञान के लिये सहानुभूति प्रकट करो। उन्हें सामयिक सहायता दो और ढाढ़स दिलाओ। धर्म, सदाचार और दैवत्व में किसी के विश्वास को मत तोड़ो। स्वयं अपने आचरण द्वारा सिद्ध करो कि सदाचार के लिये किसी अतिरिक्त पुरस्कार की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार दूसरों के विश्वास को प्रोत्साहित करो कि दैयत्व सर्वत्र और सर्वशक्तिमान है।

(प्रशान्ति निलयम दीपावली १९६९, (२५-१०-६५

२२

दैनिक-आहार

अन्य देशों की अपेक्षा भारत के रोटैरियन लोगों का उत्तरदायित्व अधिक है क्योंकि यह देश अत्यन्त प्राचीन काल से कर्म-भूमि, एक योग-भूमि और एक त्याग-भूमि बनने का आकांक्षी रहा है। इस देश का ऋषि-मुनियों के द्वारा जो वर्णन किया गया है कि यह देश त्याग, आत्म संयम, आत्म-ज्ञान और प्रभु को अर्पित कार्यों में संलग्न रहने वालों का है, यह उसी वर्णन को सत्य सिद्ध करने का प्रयास करता रहा है। वास्तव में हजारों वर्ष पूर्व ऋषियों ने यहां के लोगों को यह उपदेश दिया था कि अमरत्व, विद्वता से नहीं, गृहस्थाश्रमोचित कर्तव्यों के पालन से नहीं, सुखोपभोग के लिए धन संग्रह से नहीं, बल्कि त्याग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। शास्त्रों में कहा गया है कि देवता भी यहां जन्म लेने की आकांक्षा रखते हैं जिससे वे कल्याणकारी कार्यों को कर सकें। इसीलिए इसे कर्म-भूमि कहा जाता है। योग, अर्थात् मन को वशीभूत करने का विज्ञान, का विकास भी यहीं किया गया है, अत्यन्त प्राचीन काल से प्रत्येक युग में यहां हजारों लोगों ने सफलतापूर्वक योगाभ्यास किया है और अन्त में इसके फलस्वरूप आत्म साक्षात्कार किया है। इस आत्म-साक्षात्कार का एक फल यह हुआ है कि प्रत्येक जीवधारी की आत्मा को अपनी आत्मा का ही प्रतिबम्बि मान लिया गया है। मानव मात्र की एकता का यही तो सच्चा आधार है।

ऐसी धारणा रखने वाले लोगों के बीच में निवास करते हुये, कि जिनका आदर्श और आकांक्षा इतनी ऊँची हो, रोटैरियन लोगों के कार्यों

का यहां, अन्य देशों की अपेक्षा, अधिक स्वागत और सराहना होगी। इस ब्रह्माण्ड, जो स्वयं ईश्वर ही है, के समस्त मानवों, वे चाहे किसी देश, धर्म के क्यों न हों, की एकता का पाठ सनातन धर्म सदा से ही पढ़ाता रहा है। "ईशावास्यमिदं सर्वं, वासुदेवस्सर्वमिदं।" कौन किसका है ? भारत की विचारधारा के लिए यह जिज्ञासा विदेशी है। प्रत्येक सभी का है और सब उसी एक के हैं—काल के प्रारम्भ से भारत की खूराक में यह विचार रहता आया है।

जब किसी के पेट में शूल की तीखी पीड़ा होती है तो आंखों से आँसू निकलने लगते हैं; क्योंकि एक ही चेतना समस्त शरीर के विभिन्न अंगों को संचालित करती है और उनमें व्याप्त रहती है और सर्वत्र समुचित प्रतिक्रिया प्रकट करती है। इसी प्रकार से सम्पूर्ण विश्व भी एक शरीर के समान है; कहीं एक स्थान का कष्ट, अन्य सभी देशों का कष्ट बन जाना चाहिए। कोई भी एक देश प्रसन्नता का अनुभव नहीं करता है जबकि अन्य भाग, चाहे जितना छोटा और दूर क्यों न हो, कष्ट में होता है। मैं, अन्तर्जातीय शब्द का प्रयोग आप लोगों के कथन में पाता हूं इसका अर्थ यह कि आप अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के एक अंग हैं। अन्तर का अर्थ है भीतरी सम्बन्ध; इस प्रकार एक भीतरी तार से सभी सम्बद्ध हैं जिसके द्वारा सभी में विद्युत संचार होता है। एक आन्तरिक प्रेरक है जो प्रत्येक अंग को संचालित, एवं निरीक्षण, करता है; न केवल शरीर को, जिसमें कि व्यक्ति की आत्मा का निवास होता है; परन्तु सम्पूर्ण विश्व में जोकि भगवान का मंदिर है। भगवान् ने गीता में कहा है कि वे "सर्वभूत-अन्तरात्मा" है, अर्थात् सभी प्राणियों में स्थित परम तत्व हैं। ईश्वर में सम्पूर्ण प्राणियों की एकता भाव का ज्ञान अपने में सदा जाग्रत रक्खो। इसी एक सत्य को अनुभव करना, साक्षात्कार करना, और घोषित करना है। व्यक्तिगत और सामाजिक

जीवन का यह सर्वोत्तम सुदृढ़ आधार है। आपके अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण की यह अटल और अचल आधार शिला है।

मैंने आपके अध्यक्ष से अन्तर्राष्ट्रीय रोटरी क्लब का आदर्श पूछा था और उन्होंने कहा कि एक शब्द में इसे 'परोपकार' दूसरों के साथ भलाई करना कह सकते हैं। भारत ऐसे आदर्श के लिए बड़ा ही उपयुक्त देश है। यहां आप लोगों से सदैव स्वेच्छापूर्ण सहयोग करने वाले अनेकों लोग मिलेंगे। यहां ऐसे कार्यों के लिए अनेकों अवसर अपने सद्गुणों, चातुर्य्य और उदार वृत्ति को चरितार्थ करने के लिए, परोपकार के लिए मिलेंगे। परन्तु मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं कि वह 'पर' अथवा 'अन्य कोई' है ही नहीं जो आपकी उपकार या कृपा को प्राप्त करे। ये 'पर' अथवा 'अन्य कोई' भी आपकी ही आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं। आप और यह सभी उसी एक महासागर की उठती, गिरती, आगे बढ़ती, पीछे हटती लहरें मात्र हो और तत्वत: उसी एक ही महासागर का रूप और अंग हो। फिर कौन किसकी सहायता कर सकता है? कौन किस पर कृपा करता है? यह सहायक बाहु किसकी है? यह सब कृपा उसी एक की, उसी एक के प्रति है। वह कष्ट तो जिसे कोई भोग रहा है और आप दूर करना चाहते हैं, आप ही का कष्ट है; जब वह दूर हो जाता है तो आपका कष्ट ही दूर होता है। सेवा भाव तभी सार्थक और प्रभावशाली है जबकि 'मैं' और 'मेरे' की भावना दूर होकर 'भगवान्' और 'भगवान् के प्रति' भावना का उदय होता है। जब तक आप का ध्यान शरीर और उसकी आवश्यकताओं के प्रति सीमित है आप में अहंकार की भावना की वृद्धि होगी। जब अन्तरात्मा की ओर, जोकि भगवान् है, आपका ध्यान जावेगा, तो आप को सभी में उसी एक भगवान् की अनुभूति होगी। आपके हृदय में भक्ति-भाव की बाढ़ सी उमड़ पड़ेगी और आपके प्रत्येक कार्य को

दिव्य और प्रभु-मय कर देगी। देह से देही के प्रति ध्यान को केन्द्रित करने के लिए साधना की आवश्यकता है।

सभी प्राणी तो दिन की समाप्ति से पूर्व ही खिलने, मुर्झाकर गिरने वाले पुष्पों की भांति होते हैं; परन्तु इस माला की तरह जो आपने मुझे तब अर्पित की है, जब मैं आप लोगों के बीच में आया था यह सभी पुष्प परस्पर एक दृढ़ और शाश्वत सूत्र से नथे हुए बंधे हुये हैं; यह सूत्र ब्रह्म ही है। अपने मस्तिष्क में इसी भावाद्वैतम् को स्थापित करो। इससे आपके द्वारा की हुयी सेवा, प्राप्त करने वाले को अधिक आनन्द प्रद, अधिक फलप्रद और अधिक मधुर और सुखप्रद लगेगी। इस भाव के बिना परोपकार सहायता मात्र, जिसे एक धनी या सम्पन्न व्यक्ति किसी दीन दुखी को, जो उससे घटिया या क्षुद्र है, भिक्षामात्र समझ कर उसकी झोली में डाल देता है, रह जाता है। ऐसी सभी सहायता पर शंका की जाती है और कभी-कभी बुरा भी मनाया जाता है, यह आदि से अंत तक दाता से प्राप्ति कर्त्ता तक, दूषित होती है। निस्सन्देह सभी के साथ एक सा व्यवहार नहीं करना चाहिये सब के लिए एक उपचार ठीक नहीं होता है। प्रत्येक को उसकी आवश्यकता और उससे लाभ उठा सकने क्षमता को देख समझ कर देना चाहिए। यद्यपि सभी में एक ही अन्तरात्मा का निवास है, आपको एक पागल व्यक्ति के हाथ में चाकू या बच्चे को स्वर्ण हार नहीं देना चाहिये। बच्चा हार को कुछ देर खेल कर फेंक देगा और पागल व्यक्ति किसी की हत्या भी कर सकता है।

सब से मूल्यवान वस्तु तो मन की समता और शान्ति है, यह वह वस्तु है कि यदि यह आपके पास होगी तो, आप दूसरों को दे नहीं सकते। यह तो प्रत्येक अपने लिये स्वयं कठोर श्रम से ही कमा पाता है। परन्तु आप लोगों को बतला सकते हैं कि किस प्रकार का आचरण

करने, अनुशासन पालन करने से, मन की समता प्राप्त की जा सकती है या शान्ति जीती, जा सकती है। उच्च स्तर का जीवन बिताने मात्र (ऊँची या कीमती रहन-सहन) से यह प्राप्त नहीं हो सकते। बुश्शर्ट ट्रान्जिस्टर्स, सोफासेट और वायु अनुकूलन की तरह शान्ति और मन की समता प्राप्त नहीं की जा सकती। आप चाहे जितना धन क्यों न दान कर दें। धन के द्वारा, शक्ति के द्वारा, शारीरिक बल, द्वारा तितिक्षा अथवा सत्ता के अधिकार द्वारा ये नहीं प्राप्त किये जा सकते। जब भी आप सेवा कार्य की योजना बनावें तो इस तुलनात्मक मूल्यांकन को स्मरण रक्खें। धनी, स्वस्थ, बलवान, शक्तिवान् और प्रभावशाली सभी असन्तोष, चिन्ता, भय और उद्विग्नता से पीड़ित हैं। उनको मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त है।

शान्ति तो व्यक्ति अन्दर से ही प्राप्त करता है। सन्तोष मन की एक दशा का नाम है। सांसारिक सुख-सुविधाओं की आसक्ति की जड़ों को आवश्यकता से अधिक मत सींचते रहो। इससे तो चिन्ता और भय की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। वे मानव की अन्तरतम आकांक्षा को कभी संतुष्ट नहीं कर सकते हैं। भक्ति और समर्पण के मार्ग पर उन्हें (सुखेच्छाओं को) चलाओ तभी वह संतोष और आनन्द के मार्ग के यात्री होंगे। सार्वभौम आत्मतत्व पर जोर दो, प्रार्थना, ध्यान, भगवान की महिमा का शान्त होकर विचार करना, प्रकृति में उसकी परछांई और भगवन्नाम का जप, शान्ति और एकान्त को प्रोत्साहन दो, आत्मनिरीक्षण तथा अपने अन्दर ही स्थित आनन्द के स्रोत को खोजने का अभ्यास करो।

आप सभी शिक्षित व्यक्ति हैं; कार्यक्षेत्र के अनेक उद्यमों के अनुभवी और दक्ष हैं; अनेक कला कौशल के ज्ञान और क्षमताओं से युक्त हैं। दूसरों की सहायता करने के वास्तविक उत्साह से पूर्ण हैं; आप को

अन्य क्लबों के उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त होकर अनेक योजनाओं को जो देश और समाज के लिए कल्याणकारी हो, चलाने की इच्छा होती है। यही तो वास्तविक धन है। हृदय को हृदय से भेंट करनी है, जिससे सेवा कार्य सफल होवे। मृदु भाषण, वह भी धीरे से, करो, स्वयं भी मृदु और मधुर हो जाओ। सहानुभूति पूर्वक बोलो, दिखावे के लिए नहीं, बनावट से रहित होकर। सदा दूषित श्रवण, दूषित कार्य, दूषित शब्द, दूषित विचारों से दूर रहो। ऐसी प्रत्येक वस्तु से दूर रहो जो सेवा भाव और सेवा करने की दक्षता और क्षमता को दूषित करने वाली हो।

आपके अपने आनन्द में मुझे भागीदार बनाया इससे मुझे प्रसन्नता हुयी है। मैं इसलिए भी प्रसन्न हूं कि मैंने अपने आनन्द में आप सभी को भागीदार बनाने का अवसर पाया। मैं आशा करता हूं, आशीर्वाद देता हूं; कि आप लोग दूसरों के दुख को अपना दुख समझ कर उसे घटाने का प्रयास करेंगे। मैं आशा करता हूं और आशीर्वाद देता हूं कि आप दूसरों की प्रसन्नता को अपनी प्रसन्नता मानकर उसके भागीदार बनेंगे और उसे बढ़ावेंगे।

हिन्दूपुर, रोटरी क्लब,
४-११-६५

—o—

२३

कर्मयोगियों का सतत् धारा-प्रवाह

मैं इस नव स्थापित कालेज में आकर प्रसन्न हूँ। मैंने यहाँ आकर इन छात्रों को जो भावी भारत के निर्माता हैं, देखा है। जीवन रूपी वृक्ष जिन पुष्पों को उगता है उनमें सद्गुण रूपी सुगन्धित होती है। शिक्षित व्यक्ति समाज में प्रदर्शित अपने सद्गुण और सदाचार निष्ठा से सदा पहचान लिया जाता है, न कि अपनी चालाकी और चतुराई से कि जिससे वह अपने पापों के परिणामों से बच निकलने का प्रयास करता है। आजकल तो जीविका के साधन प्राप्त करने के लिए प्रायः शिक्षा प्राप्त की जाती है अनेक माता-पिता और बच्चों का प्रयत्न अच्छी नौकरी के पाने के लिए उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करने के लिए होता है। चाहे यह नौकरी किसी फैक्टरी में लगे या किसी व्यापारिक संस्थान, बैंक में हो; वेतन अच्छा होना चाहिए। निस्सन्देह मानव जिये, और सुखपूर्वक जिये। इसलिए कुछ न कुछ लाभदायक शिक्षा में अवश्य दक्षता प्राप्त कर लेना चाहिये। परन्तु मनुष्य को, संतोषप्रद और सुखप्रद वस्तुओं के अतिरिक्त, कहीं अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं की आवश्यकता होती है। उसे आत्म-विश्वास होना चाहिए ताकि वह अपना सम्मान स्वयं कर सके। यह आत्म-विश्वास ही आनन्द का मूल होता है।

भारत में तो अनेक युगों से ही ऐसी शिक्षा, जिससे आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्वास प्राप्त हो सके, पूर्णरूपेण विकसित की जा चुकी है। उस शिक्षा से वस्तुओं के वास्तविक तुलनात्मक मूल्य ज्ञात हो जाते हैं; विषयों को अस्थाई रूप से अस्थाई उद्देश्य के लिए आपेक्षिक महत्व

ही दिया गया है; और मनुष्यों को जिस अनुशासन से आन्तरिक शान्ति प्राप्त हो, उसी का दृढ़ता से पालन करने के लिए उत्साहित किया जाता है। आत्मतत्व से अमृत अथवा अमरत्व की प्राप्ति होती है। देहतत्त्व अनृत अथवा अपंग जैसा होने से पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं करा सकता। मनुष्य बन्दर का विकसित स्वरूप नहीं है। वह तो अमरत्व का पुत्र है। इसी से वह मृत्यु को कभी अंत के रूप में स्वीकार ही नहीं करता है। इसी से वह सदा सर्वदा जीवित रहना चाहता है। मृत्यु से बचने की मनुष्य में प्रबल भूख होती है; वह यह नहीं मानता है कि वह बुलबुले के समान है, जिसे छेदकर उसका अंत किया जा सकता है और उसका अस्तित्व ही समाप्त किया जा सकता हो।

शिक्षा का विधान बदलने की बड़ी आवश्यकता है जिससे कि इस देश के बच्चे बड़े होकर ऋषि और ज्ञानी हो सकें। वह विधान ऐसा हो जिससे भारत माता के पुत्रों और पुत्रियों को उनकी वह बहुमूल्य पैतृक संपत्ति, जिसमें भागीदार बनने के लिये विश्व लालायित है, सौंपी जा सके। यज्ञ, दान, तपस्या, तितिक्षा, साधना, संयम, वेदों के महावाक्य, तीनों प्रकार के योग (भक्ति, कर्म, ज्ञान) जैसा कि उनका गीता में वर्णन है, दैवी और आसुरी प्रकृति, यह सब और भारतीय संस्कृति की अन्य मौलिक धारणाओं का महत्व बच्चों को स्कूल कालेजों में पढ़ाया जाना चाहिये। उनके अभ्यास के लिये छात्र, छात्राओं को उत्साहित किया जावे जिससे उनका, उसके समाज का और उनके देश का भी कल्याण होवे।

प्रधानाचार्य ने मुझसे सभी परीक्षार्थियों को, जिन्होंने परीक्षा दी है, आशीर्वाद देने की प्रार्थना की है जिससे कि सबके सब पास हो जावें मेरे आशीर्वाद उनके साथ हैं; परन्तु मैं परीक्षाओं को इतना गंभीर और महत्वपूर्ण नहीं मानता। एक स्थानीय व्यापारी द्वारा एक लाख रुपये का

बड़ा दान देने से इस कालेज को स्थापित किया गया है। अपने अनुशासन, चरित्र, बलिदान तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों से यह प्रमाणित करो कि दान का धन व्यर्थ नहीं हुआ है। दानकर्ता को यह सन्तोष और प्रसन्नता प्राप्त होवे कि उनके दान से स्थापित इस संस्था से देश को निर्बाध रूप से ईमानदार, दक्ष, विश्वसनीय, कार्यकर्ताओं की लगातार प्राप्ति होती रहे जो भारत के सम्मान को आध्यात्मिक क्षेत्र में भी ऊँचा उठा सकें।

यह वह देश है जहां उपनिषद छात्रों से आग्रह करते हैं कि वे सत्य का पालन करे, धर्म का आचरण करें, और माता-पिता गुरुजनों का सम्मान करें, यदि आप इन महान पाठों को पढ़ चुके हैं तो निश्चय ही जीवन में आपको व्याकुलता और शोक के अवसर नहीं आवेंगे; परन्तु आजकल तो माता-पिता की न केवल उपेक्षा बल्कि अवमानना तक होती है। फिर वह देश, जो पूज्यों को पूज्य मानकर व्यवहार नहीं करता है, स्वयं कैसे सम्मानित हो सकता है ? यदि गुरुजनों को उनकी विद्वता, वय के अनुसार सम्मानपूर्वक नहीं सुना जावेगा तो फिर छात्र उनसे उस आदर्श को, जिसके आधार पर वे अपना जीवन ढालना चाहते हैं, कैसे सीख सकेंगे ? सत्य, धर्म रेल की दो पटरियां हैं जिन पर राष्ट्र रूपी रेलगाड़ी चलती है। यदि सत्य को त्याग दिया जाता है तो अव्यवस्था फैल जाती है; जब धर्म त्याग दिया जाता है तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

इसलिये, चाहे पाठ्यक्रम में इसकी व्यवस्था हो अथवा नहीं, आप अपने गुरुओं और बड़ों से सनातन धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा लो, कम से कम साधना के प्रथम चरण, जैसे मौनम्, भगवन्नामजप, धर्मशास्त्रों का अध्ययन इत्यादि को तो अपनालो। हानिप्रद, और व्यर्थ के मनोविनोदों से दूर रहो। संयम के द्वारा अपना स्वास्थ्य उत्तम बनाओ। अपने देश के योग्य पुत्र और योग्य पुत्री बनो।

हिन्दूपुर कालेज, १४-११-६५

२४

छात्र इन्द्रियों के स्वामी बनें

इस कालेज की हीरक जयंती एक दुर्लभ उत्सव है। मुझे प्रसन्नता है कि इसका शुभारंभ करने की आपने मुझसे प्रार्थना की है। किसी स्थान को लगातार ६० वर्ष तक ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करना सैकड़ों हजारों व्यक्तियों को जीवन भर के लिये प्रशिक्षित करना, कोई साधारण उपलब्धि नहीं हैं। मुझे प्रसन्नता है कि अपने एक कार्यक्रम के द्वारा प्रधानाचार्यों और अध्यापकों के प्रति, जिन्होंने परिश्रमपूर्वक इस विद्यालय को, इस क्षेत्र में, एक सफल प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में विकसित किया है; आभार प्रदर्शन का आयोजन किया है। मैं २५ वर्ष के बाद यहाँ पुनः आया हूँ जोकि भौगोलिक दृष्टि से पुट्टिपर्ती के इतना समीप है। अमेरिका, योरोप, अफ्रीका, हाँगकाँग, आस्ट्रेलिया में सत्य साई भक्त मंडलियों और अध्ययन केन्द्रों की स्थापना कर रहे हैं। वे तेलगू कक्षाओं को लगा रहे हैं जिससे कि वे मेरी वार्तायें सुन सकें और सीधे-सीधे मुझसे ही अनेक बातों की शिक्षा ले सकें। परन्तु, पुट्टिपर्ती के समीप वाले स्थान मुझसे लाभ उठाने में दीर्घकाल लगा रहे हैं। मेरे लेखे न कोई मुझसे दूर है, न निकट। सभी मेरे निकट हैं; केवल उन्हीं को छोड़ कर जो स्वयं ही बचते रहते हैं। वे लोग भी मेरे ही निकट हैं जो किसी अन्य नाम रूप से भी भगवान को अर्पित हैं।

अब से ६० वर्ष पूर्व, जब इस विद्यालय की स्थापना हुई थी, शिक्षा का जो विधान प्रचलित था, यद्यपि उनमें अनेक परिवर्तन और प्रयोग किये जा चुके हैं, फिर भी यह कहना पड़ता है कि उस प्राचीन पद्धति

की अनेक लाभकारी विशिष्टतायें खो दी गई हैं। संख्या में वृद्धि अवश्य हुई है परन्तु स्तर गिर गया है। आजकल दिमागों में अनेक अनावश्यक सूचनायें तो ठूंस-ठूंस कर भर दी जाती हैं परन्तु छात्रों में दृढ़ता नहीं आ पाती जिससे वे जीवन की विषम परिस्थितियों का सामना कर सकें। कला-कुशलता को तो जोड़ा जा रहा है परन्तु सद्गुणों को घटाया गया है। महान धर्मशास्त्रों और पवित्र पुस्तकों के प्रति श्रद्धा में कमी हो गई है, फिर देशभक्ति की जड़ कैसे हरी हो ? भारत के प्रति भक्ति भावना का उदय तभी हो सकता है जब कि हम विश्व इतिहास के निर्माण में भारत के योगदान का सही मूल्यांकन हृदयंगम करें कि मानव के उत्थान में भारत ने क्या योगदान दिया है। आजकल छात्रों को यह ज्ञान नहीं कराया जाता है कि हमारे भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने, जिस परम सत्य का मनुष्य साक्षात्कार करने की महत्त्वाकांक्षा रखता है, उसे स्वयं अनुभव करके हमारे लिए इन शास्त्रों और पवित्र ग्रन्थों में वर्णन किया है। आजकल के छात्र अपने पूर्वजों को अशिक्षित और मूर्ख समझ कर उनकी उपेक्षा और अवमानना करते हैं वे उन्हें 'दकियानूस' और रूढ़िवादी समझ लेते हैं। उनका आदर्श दूसरे लोग और अन्य देश हो रहे हैं। क्योंकि वे चन्द्रयान, रॉकेट और अंतरिक्ष-यान जैसी भौतिक उपलब्धियों से भौचक्के हैं। उन्हें इन यात्राओं में, जो अंतरिक्ष में की जाती हैं, पड़ने वाले घोर संकटों का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं है और न वे उस भव्य-दिव्य आत्म-ज्ञान के वैभव से ही परिचित हैं जिसे भारत के ऋषियों-मुनियों और योगियों ने सहस्रों वर्ष पूर्व ही अपने उत्कट साहस तपस्या और ज्ञान के बल से प्राप्त किया था।

जुबिली, जिसे कि प्रत्येक जीवधारी को मनाना है वह डायमंड (हीरक) नहीं बल्कि 'डाई-माइन्ड' अर्थात 'मन को मार दो' की जुबिली होना चाहिये, जब कि साधना के द्वारा मन को वशीभूत कर लिया गया हो।

आधुनिक सभ्यता प्रतियोगिता मूलक है जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थों को सामाजिक हित पर वरीयता दी जाती है। इसी लिये मानव कहीं भी जाये भय उसका पीछा नहीं छोड़ता; यह भय संपत्तिनाश का, हानि का, मृत्यु का, अथवा अन्य किसी कारण से भी हो सकता है। मन इन्द्रियों को प्रेरित कर अपने लिये सुख, सुविधा, सुगन्धि, सौन्दर्य की खोज भगवान् में, जोकि मक्खन के समान कोमल, दयालु, जिनका यश अमृत के समान मधुर और चमेली के समान सुरभित है, जिनकी प्रशंसा, स्तुति कानों के लिये सुन्दर संगीतमय और जिनका विग्रह सौन्दर्य की पराकाष्ठा है, न करके भौतिक जड़-पदार्थों के तुच्छ आकर्षण में खोजता है। इसी लिये मन को मारना ही उचित है, जिससे इसे मुक्ति का, पूर्णत्व की प्राप्ति का मंत्र बनने के लिये दुबारा ढाला जा सके।

६० वर्ष पूर्व, और कुछ प्राइमरी पाठशालाओं में तो अभी हाल तक "सुमति शतक" और "वेमन" के छंद बच्चों को हृदयंगम करा दिये जाते थे। जिससे कोमलमति बच्चों के मानस पर सनातन धर्म के बीजारोपण का कार्य सम्पन्न हो जाता था। अब इनके स्थान पर "नर्सरी राइम" के गीत रटाये जाते हैं "हू किल्ड काक राबिन ?" (राबिन मुर्गे को किसने मारा ?) "जैक एन्ड जिल वेन्ट अप दि हिल" (जैक और जिल पहाड़ी पर चढ़ गये) ऐसे नर्सरी गीतों से बच्चों के मस्तिष्क अथवा हृदय पर क्या कल्याणकारी प्रभाव पड़ सकता है। संस्कृत भाषा और साहित्य के अध्ययन की उपेक्षा से हमारे छात्र उस बुद्धिमता के स्रोत, जिससे पीढ़ियों दर पीढ़ियों को साहस, आत्म विश्वास की जीवन में प्राप्ति होती रही है, से वंचित रह जाते हैं। शास्त्रों का यही संदेश है कि जिन वस्तुओं को प्राथमिकता देनी है उन पर पहले विचार करना चाहिए। भारत ही वह देश है जहाँ मानव के अन्तरतम में स्थित आनन्द की खान का पता लगाकर उसे खूब खोदा गया है।

इसके अतिरिक्त भारत ने सदा ही विश्व-प्रेम को जाग्रत करने के लिये अनुशासन पालन पर जोर दिया है। वेदों में जिन यज्ञ-याग की संस्तुति की गई है वे लोक कल्याण और लोकसंग्रह के लिए हैं और सभी मानवों के हित में, उनकी रक्षा के लिए हैं। इसीलिए तो भारत को एक इंजिन कहना चाहिए जो अन्य डिब्बों को, जो उससे संलग्न हैं, अपने साथ घसीटे लिए जा सकता है। यह अन्य डिब्बे अन्य राष्ट्र हैं। "लोका ! समस्ता सुखिनों भवन्तु" सभी लोक और उनके वासी सुखी हों ऐसी प्रार्थना इस देश के बच्चे करते हैं और हजारों वर्ष पहले से ही करते आये हैं। ईश्वर सर्वत्र और सर्वव्यापक है। वह समान रूप से प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है। इसीलिए मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् को अपने में और सभी में समान रूप से अनुभव करे, देखे। अर्थात् वह सर्वत्र ही भगवान् का दर्शन करे। इसलिए वह किसी को कैसे चोट पहुँचा सकता है; अथवा किसी से क्यों भयभीत हो सकता है ? भारतीय अहिंसा का यही आदर्श है। प्राचीन शास्त्रों में ऐसे ही विश्व परिवर्तनकारी सत्यों का उल्लेख है। परन्तु शास्त्रों में वर्णित होने अथवा मस्तिष्क में भरे रहने मात्र से कुछ लाभ नहीं हो सकता जब तक कि उन्हें आचरण-व्यवहार में, अभ्यास में, दृढ़-विश्वास से लगातार व क्रियात्मक रूप न दिया जाये।

जब आपको घड़ी प्राप्त होती है आप प्रसन्न हो जाते हैं। जब गर्दन से ट्रांजिस्टर रेडियो लटका कर चलते हो ; तो आपको प्रसन्नता इसलिए प्राप्त होती है कि वैभव प्रदर्शन का यह साधन अन्य लोगों के पास नहीं है। अधिकार लिप्सा "मामकार" ही तो प्रसन्नता की जड़ में विद्यमान है। परन्तु उस वस्तु में कोई शक्ति नहीं है कि वह किसी को आनन्द दे सके; क्योंकि यदि आनन्द वस्तु में होता तो वह उसी मात्रा में हर व्यक्ति को प्राप्त होता कि जिसके अधिकार में वह वस्तु होवे। यदि पड़ोसी ट्रांजिस्टर लाता है तो तुम्हें रंचमात्र भी हर्ष नहीं होता है, हो

सकता है कि तुम्हें वह दुखदायी प्रतीत होवे। विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रसन्नता तो हमारे अन्दर ही है, हमारे लिए है और हमसे ही उत्पन्न होती है। आत्मा जो असीम अखण्ड आनन्द का भंडार है उसके प्रतिबिम्ब स्वरूप ही यह आनन्द यत्र-तत्र भासता है। इसलिए अपने ध्यान को विभिन्न दिशाओं में दौड़ाने की अपेक्षा, जब तक मनुष्य यहाँ शरीर में जीवित रहे उसे आत्मा के असीम आनन्द को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। लाखों झीलों में प्रतिबिम्बित होने वाला चन्द्र एक ही है, उसी की चमक सभी झीलों में है, सोचो और इस सत्य को समझो। इस भ्रम में मत रहो कि प्रत्येक झील में एक-एक अलग चन्द्रमा है। शरीर तो अनेकों हैं परन्तु उन सभी में एक ही ईश्वर प्रतिबिम्बित हो रहा है।

उसी सर्व शक्तिमान शक्ति से संबंध जोड़ो। वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तत्व है, तभी सभी कुछ, शक्ति, बुद्धि, विशाल, दृष्टि, मुक्ति तुम्हें प्राप्त हो जावेंगे। आजकल की शिक्षापद्धति, जो बच्चों के कोमल मस्तिष्क को प्रभावित करती है, दूषित है। उन्हें वेदान्त का स्थायी ज्ञान नहीं दिया जाता है। उन्हें गुण और शील की शुद्ध वायु में सांस लेते हुये सरल और दृढ़ता पूर्ण जीवन में नहीं विकसित किया जा रहा है। उन्हें प्रेम और सहिष्णुता में नहीं विकसित किया जाता है। जिस घृणा और दलबंदी में आज वृद्धजन संलग्न हैं वह छात्रों के लिये उदाहरण और प्रेरणा बने हुये हैं। उनकी शक्ति और उत्साह को कल्याणकारी दिशा में विधि-निषेध के द्वारा कहीं निर्देशित किया जाता है। इस दिशा में, चाहे प्रारम्भिक प्रयत्न ही हों, यदि आग्रहपूर्वक किये जावें तो उनका परिणाम शुभ ही होगा। आज ही से इस कार्य को प्रारम्भ किया जावे कि छात्र अपनी इन्द्रियों के स्वामी बनकर स्थायी आनन्द की प्राप्ति के लिए जाग्रत हो जावें।

हिन्दूपुर म्युनिसिपल हाई स्कूल,
हीरक जयंती १४-११-६५

२५

स्वयंसेवकों को बैज प्रदान का उद्बोधन

वितरण के लिए मेरे द्वारा लाये हुये इन बैजों को देखकर आप लोग बड़े प्रसन्न हो रहे होंगे कि शीघ्र ही आप इन्हें धारण कर अलंकृत होंगे और इनको धारण करने से आप लोगों को यह आशा होगी अब दूसरे लोगों पर अधिकार दिखावेंगे, जन्मदिवस के इस उत्सव पर भारी काम से बच जावेंगे। मैं आपको यह बैज लगाकर कोई 'अधिकार' नहीं दे रहा हूं, और न कोई मौज करने का अवसर ही। क्योंकि ऐसे अवसरों पर बैज लगाकर इधर-उधर चहल कदमी करने की परम्परा होती ही है। इसके धारण करने से आप पर भारी जिम्मेदारी आ जावेंगी। यदि इसे आप कार्य-भार समझें तो अच्छा होगा कि आप बैज न लें। संसार के विभिन्न भागों से जो आपके आत्मीय जन ही यहाँ पधार रहे हैं, उन लोगों के स्वागत करने का अधिकार यह बैज आप-को प्रदान करता है। इस बैज के धारण करने से आपको अभिमान नहीं होना चाहिए; और न स्वयं को अन्य लोगों से श्रेष्ठ ही मान लेना चाहिये कि मानो आप कृपा कर रहे हैं और आप की सेवा का लाभ उठाने वाला आप से घटकर है। आप उसे वरदान नहीं, विनम्रतापूर्वक सेवा की भेंट ही अर्पण करेंगे। यह सेवा-भावना ही कर्त्ता और प्रापक का मधुर सम्बन्ध होती है। आत्म-तत्व के रूप में तो आप और वे लोग एक उसी आत्म सिन्धु की विभिन्न लहरें मात्र हो।

यह बैज तो आप के लिए साधना का आह्वान है। यह आध्यात्मिक अभियान है, प्रेम के अभ्यास की व्यावहारिक प्रक्रिया है। "क्या सीखना

है" यह वेद शिक्षा देता है। शास्त्र अनुशासन का पाठ पढ़ाकर मानव को माधव बनने की राह दिखाते हैं। साधना के द्वारा ही आपको अपने प्रत्येक कार्य की नयी व्याख्या, और नया दृष्टिकोण, नई चेतना प्राप्त होती है। मैं इसके लिये उत्सुक हूं कि आप यह सब जाने; और साधना के मार्ग पर आगे बढ़ें। माता अपने बच्चों के स्वास्थ्य और उत्कर्ष की उपेक्षा नहीं कर पाती। वे चाहे उसकी शिक्षा की अवहेलना कर जावे, परन्तु माता सदैव वही उन्हें सुधार कर सत्पथ पर चलाना चाहेगी। "मैं" "मेरा" की भावना और अनुभूति से ऊपर उठ जाना ही साधना का मुख्य लक्ष्य है। एक वाक्य में आत्म विद्या की यही परिभाषा है। अब स्वयं सेवकों के रूप में आप को अपनी निजी सुखसुविधा का त्याग तो करना ही होगा; यह भी संभव है कि आपको "दर्शन" "संभाषण" लाभ से भी वंचित हो जाना पड़ जाय; क्योंकि आप को कहीं दूसरी जगह का सेवा भार मिला हुआ होगा। इस त्याग को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना ही साधक के लिये एक अनिवार्य योग्यता होती है। यदि आप में यह भावना है कि "मैं और मेरी आवश्यकता पहले, बाद में दूसरों की सेवा, तो निश्चय मानिये कि जो कुछ आप कर रहे हैं वह 'सेवा' नहीं 'चाल' मात्र है। जो वृद्ध, दुर्बल, रोगी अथवा अधिक पात्रता वाले हैं, उन्हें आप अपना स्थान दे दें, यही सेवा है। ऐसे लोग स्थान पाने के लिये निराश हो रहे हों तो आप अपने स्थान से न चिपके रहें। ऐसी सेवा और, स्वार्थ त्याग, से आप को मेरी कृपा अधिकाधिक प्राप्त होगी बजाय उस दशा के जबकि आप पहली पंक्ति में बैठकर तन्मयता से मेरी वार्ता को श्रवण करते। लोगों को न खींचो, न धकियाओ, उनसे मृदुवाणी भी में धीरे से बात करो। यदि आप वृद्ध और दुर्बल लोगों को कहें कि आप उनको इस से अधिक सुविधा जनक, सुखद, स्थान पर पहुंचाने की सहायता करना चाहते हैं; तो वे आपकी बात भी मान लेंगे और अत्यन्त कृतज्ञ भी होंगे। ऐसा न हो कि वे धूप में झुलसते रहें और रक्त चाप वृद्धि के शिकार हो जावें।

पर अन्य कोई ऐसा ही विकार अपने में उत्पन्न कर लें। भीड़ में ऐसे लोगों को खोज निकालो और उनकी उचित व्यवस्था कर दो। उनसे इतनी कोमलता का व्यवहार करो कि मानों आप एक दुर्लभ, कोमल पुष्प को अथवा बहुमूल्य फल को हाथ लगा रहे हों।

मैंने अनेक स्वयंसेवकों को बहाना करते सुना है, "स्वामी जी, वे लोग कहना ही नहीं मानते। यदि हम लोग खुशामद की बात करते तो हमारी उपेक्षा की जाती है। वे तो कठोर व्यवहार के ही पात्र हैं।" ऐसे स्वयंसेवकों को मैं नहीं क्षमा करता। दोष तो सदा व्यवहार करने के ढंग में ही होता है, जिस प्रकार से वे लोग समझाते हैं, मिज़ाज़ दिखाते हैं, ऐसे स्वयंसेवकों का दृष्टिकोण ही दूषित होता है। जो उत्तरदायित्व आपको सौंपा जा रहा है उस पर भी कभी आप ने विचार किया है? यहाँ पर आये हुये हजारों लोगों में और आप में क्या अन्तर है? यह केवल इस बैज के ही कारण तो नहीं है। आप को प्रशान्ति निलयम् का प्रतिनिधि बनाया गया है। आत्मीय जनों के, जो यहाँ पधार रहे हैं, स्वागत सत्कार का परम्परागत भार आप ही पर है। इसलिये आप में तो विशेष रूप से शान्ति होना अनिवार्य है। आप को उत्तेजित और क्षुब्ध किसी भी दशा और परिस्थिति में नहीं होना है। क्रोध को तो पास मत फटकने दो। जो महत्त्व आप को दिया जा रहा है उसी के अनुकूल आपका व्यवहार रहे। जब अतिथि आता है तो गृहिणी पति से यह नहीं कह पाती है कि "पहले हम सब लोग खा चुकेंगे तब अतिथि को खिलावेंगे।" अतिथि की आवश्यकता को प्राथमिकता देकर सावधानी से सहानुभूति से व्यवहार करना होता है। इसलिए यहाँ पधारे हुये सभी स्त्री, पुरुषों से प्रेम और सावधानी का व्यवहार करना है, इसमें आपको चाहे जितनी असुविधा और कष्ट क्यों न हो। मुझे रिझाने और कृपा प्राप्त करने का अचूक उपाय है।

उन्हें समझदार, उत्तम, आदरणीय भक्त मान कर, व्यवहार करना ही उनके प्रति आदर प्रकट करने का सर्वोत्तम ढंग है। यदि कोई अनजाने ही जोर-जोर से बात करे और यह भूल जावे कि वह अन्य लोगों की शान्ति में बाधा डाल रहा है तो आप झपटकर न पहुंचे, शी, शू करें अथवा उसके मुँह पर हथेली लगा दें। उसके समीप जाकर, उसके कान में चुपके से इस स्थान के नियम, अनुशासन को समझाते हुये निवेदन करें कि यहाँ आये हुये अनेक लोगों के जप, मौन अध्ययन में बाधा पड़ रही है। शान्ति मनुष्य की वासनाओं और उत्तेजनाओं पर नियंत्रण का कार्य करती है। तब वह निश्चय ही न केवल आप से सहयोग करेगा बल्कि अन्य लोगों को भी शान्ति सेना में भर्ती करता जावेगा। वह अनुशासन का महत्व भी समझेगा और कदाचित् प्रशान्ति निलयम् से प्रस्थान कर जाने के बाद भी इस पर आचरण करता रहेगा।

आपको केवल यहाँ के इस सप्ताह के लिए ही स्वयंसेवक का अस्थाई पद निर्वाह नहीं करना है। जिस प्रकार नगर के प्रख्यात झूठे व्यक्ति भी हरिश्चन्द्र का अभिनय कर जाते हैं; आपको वैसा अभिनय करने की दीक्षा नहीं दी जा रही है। जीवन में कैसे-कैसे अवसर आये ? हरिश्चन्द्र सत्य पथ से कभी भी विचलित नहीं हुये चाहे राजमहल या श्मशान घाट। कुछ लोगों का विचार रहता है कि प्रशान्ति निलयम् की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत ही संयम नियम पालन हो सकता है। जब व्यक्ति इस फाटक के बाहर हो जावे फिर यह बन्धन नहीं रह जाता है। वे चीख-पुकार, गाली-गलौज, शेखीवघारना, धूम्रपान, लड़ने-धमकाने, चुगली, परनिन्दा, बकवास और फाटक के बाहर काफी-गृहों में मटरगश्ती और गुलछर्रे उड़ाने के पूर्वाभ्यास में पुनः रत हो जाते हैं। किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए ऐसा आचरण निन्द्य है। तीर्थ यात्रा पर आये हुए व्यक्तियों को आध्यात्मिक आनन्द में

मग्न होने की ही कामना करनी उचित है। एक स्वयंसेवक के लिये तो ऐसा आचरण विनाशकारी है; क्योंकि वह तो प्रभु कृपा का, आनंद प्राप्ति का, अभ्यर्थी होता है। आपके लिये तो समग्र विश्व ही प्रशान्ति निलयम् है, वह केवल लोहे, सीमेंट से निर्मित एक भवन नहीं हैं। वास्तव में समूची दुनिया, तात्विक दृष्टि से, एक प्रशान्ति निलयम् है जिसे मानव ने अपने अज्ञान और विकृति से गन्दा करके अपराध और घृणा की सर्प-बांबी बना डाला है।

मैं चाहता हूँ, आप में से प्रत्येक अपने आपको इसी अवधि में ऐसा बदल डालें कि जहां भी आप जावें अपने साथ प्रशान्ति निलयम् का वातावरण साथ लेते जावें, क्योंकि आप उस वायुमंडल में प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकते जहां कि प्रेम, विनम्रता, अनुशासन और संयम की सुगंधि न आती हो। स्वाभाविक है कि जहाँ कहीं भी आप होंगे आप ऐसा प्रयास करेंगे कि वहाँ का वातावरण पहले की अपेक्षा उत्तरोत्तर अधिक आध्यात्मिक होता जावे।

आप में सेवा का केवल उत्साह ही नहीं होना चाहिए बल्कि इसके लिये पर्याप्त बुद्धि और शऊर भी होना चाहिए तभी आप दक्ष और समाज के लिये उपयोगी हो सकेंगे। दक्षता के बिना उत्साह सदा शोक और हानिप्रद ही होता है। दो मित्रों को एक परीक्षा देनी थी। मन्द बुद्धि चाहता था कि कुशाग्र बुद्धि परीक्षा भवन में उसे प्रश्नों के उत्तर लिखवा दे। परन्तु दुर्भाग्य से उनके बैठने के स्थान एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर के अतः फुसफुसाहट की कोई संभावना न थी। फिर भी उन्होंने एक बिल्ली के माध्यम से जवाब प्राप्त करने की यह योजना बनायी। कुशाग्र बुद्धि बिल्ली की दुम से लिखित उत्तर बाँध देगा और मंद बुद्धि अपने पास बिल्ली को सुगंधित मिठाइयाँ खिलाते हुये उत्तर खोल लेगा। बिल्ली स्कूल की पालतू थी और स्वतन्त्रतापूर्वक परीक्षा भवन में

भी घूमती थी। इस योजना का पूर्वार्ध तो पूरा हो गया। परन्तु बिल्ली को अपने दुमछल्ले की इतनी असुविधा लगी कि उसने अभूतपूर्व चहल कदमी करके निरीक्षक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। स्पष्ट है कि यह योजना आगे न बढ़ सकी। आपको ऐसी तिकड़मों के फलीभूत होने की मूर्खता कभी भी नहीं सोचना चाहिए। जो सेवा आपको सौंपी जावे आप उसे सतत् जागरूकता से सम्पन्न करें। आप बिना किसी भय या प्रलोभन के अपना कर्त्तव्य पूरा कीजिये, भले ही आपकी सेवा का पात्र पूर्णतया संतुष्ट हो या न हो।

लड्डुओं का थाल लेकर भोजन करने वालों की पंक्ति में "लड्डू-लड्डू" चिल्लाते हुये शीघ्रता से निकल जाने से क्या लाभ ? जब कि आप कहीं भी किसी को एक भी लड्डू परोसने के लिए न झुकें। नाम तो दावत का हो परन्तु पल्ले किसी के भी कुछ न पड़े। आजकल "सेवा" का भी ऐसा ही फैशन चल पड़ा है। सभी कोई "सेवा" शब्द का प्रयोग करते हैं परन्तु सेवा और उनके कार्यों में कोई तालमेल नहीं होता। इस प्रकार भगवान को तो धोखा नहीं दिया जा सकता क्योंकि वे सर्वव्यापक सर्वज्ञ, और सर्वान्तर्यामी हैं। एक बार काशी के ऊपर होकर शंकर जी और पार्वती जी आकाश-मार्ग से जा रहे थे उस दिन शिवरात्रि का पर्व था। काशी के घाट, गलियां और मंदिरों में तीर्थ यात्रियों की अपार भीड़ थी। बाबा विश्वनाथ जी के दरबार में भक्तों की भीड़ को देखकर पार्वती जी को आशंका हुई कि अब स्वर्ग में भी इन पुण्यात्मा भक्तों को स्थान दे सकना कठिन होगा। इनकी भक्ति से स्वर्ग तो इन्हें सहज ही प्राप्त होगा। शिवजी ने हंसकर कहा, "यदि यहां शिवरात्रि को आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को स्वर्ग प्राप्त होता हो तो यह काशी ही स्वर्ग हो जावेगी। नहीं, हम दोनों ही स्वर्ग में हैं क्योकि हम में कोई आसक्ति और अहंमूलक इच्छा नहीं है। जबकि ये सब लोग आपादमस्तक स्वार्थ पूर्ण कामनाओं से संपृक्त हैं। इनमें से किसी को भी स्वर्ग-प्राप्ति

की आशा नहीं करनी चाहिए। चोरी की कमाई से टिकट खरीद कर काशी आजाने से क्या कभी चोर को स्वर्ग प्राप्त हो सकेगा ? पवित्रता, प्रेम और सत्य से ही स्वर्ग के आनन्द का द्वार खुलता है। आओ हम लोग अपंग-वृद्ध-भिक्षुक के रूप में नगर में चलें; वहाँ मैं अपने अनुमान की सत्यता सिद्ध कर दूंगा, जिस गली से भक्त लोग लोटे में गंगाजल लेकर मन्दिर की ओर जा रहे थे कि उसे विश्वनाथ जी के शिवलिंग पर चढ़ावेंगे उसी मार्ग में बैठकर यह शतायु वृद्ध-भिक्षुक अस्थिमात्र शरीर से उनकी ओर याचनापूर्ण नेत्रों से ताकने लगे वृद्ध अपने शुष्क ओठों पर जिह्वा फिरा कर 'प्यास प्यास' की रट लगा रहा था और वृद्धा अपने वृद्ध पति के नाम पर लोगों से एक घूंट जल की भीख मांगती थी। बहुत से उसकी तीखी पुकार को सुनकर झिड़की देते थे। कुछ लोगों ने सड़क से हटकर अलग जाने को कहा। कुछ लोगों ने अपना जल चढ़ाकर बाद में सहायता करने की बात कही। कुछ सरकार और पुलिस को कोसते थे कि क्यों नहीं वे ऐसे भिखारियों के लिए कानूनन् सार्वजनिक स्थानों पर भीख मांगना जुर्म करार देते हैं। कुछ लोग वृद्धा की खिल्ली उड़ाते थे कि इसने यहां पर नयी चहल-पहल बढ़ा दी है। उस वृद्ध दम्पति के कष्टों पर कोई भी नहीं पसीजा।

अंत में एक गंठकटा द्रवित होकर उनके समीप आया। वैसे तो वह भी भीड़ में अपने धन्धे के ही लिए आया था पर इन दोनों को देख कर उसका हृदय करुणा से भर गया। उसने वृद्ध के समीप बैठकर अपनी तुम्बी, जिसमें उसने अपना जल भर रक्खा था, की डाट खोलकर जल पिलाना चाहा। पार्वती जी उसकी परीक्षा और भी करना चाहती थी। बोलीं, "प्यारे बेटा ! धन्यवाद। परन्तु मेरा पति तभी तुम्हारे हाथ से जल पियेगा यदि तुम यह वताओ कि तुमने जीवन में और कब-कब क्या पुण्य कार्य किये हैं ? उस पुण्य को भी इन्हें अर्पण कर दो तो इनके प्राण बचना संभव होगा।" उस पक्के चोर ने कहा, "अभी तक मैंने कोई भी

पुण्य कार्य नहीं किया है। जीवन में यह पहला अवसर है जब किसी के कष्ट को देखकर मेरा हृदय द्रवित हुआ है। इस बात की साक्षी बाबा विश्वनाथ से सामने वाले मन्दिर में जाकर पूछ लो" और इतना कहते हुये उसने अपना अमूल्य जल पिला दिया। तत्काल साक्षात शिव-पार्वती ने अपने असली रूप में प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। उन्होंने लाखों रिक्त हृदय वाले भक्तों की भीड़ में केवल उसे ही स्वर्ग प्राप्त होने का पात्र घोषित किया। सत्य और प्रेम के द्वारा उसने भगवत्कृपा प्राप्त की।

एक स्वयंसेवक के हृदय को सहानुभूति से द्रवित होना ही चाहिए जबकि वह किसी अज्ञानी, निर्धन, भूखे-प्यासे, या भीड़ में माता-पिता से बिछुड़े बच्चे को दुखी देखे। बीमार, अपंग और इसी प्रकार के अन्य संकटग्रस्त लोग भी उसकी करुणा के पात्र ही हैं। जो यहां चोरी और गिरहकटी करने आते हैं, ऐसे संदिग्ध व्यक्तियों से सावधान रहो क्योंकि उत्सव और भीड़ में ही उन्हें अवसर मिलता है। तीर्थयात्रियों को सावधान करते रहो कि इन लोगों से सावधान रहें और इन यात्रियों के सामान की रक्षा में योगदान दो जबकि वे अपना सामान छोड़कर यहां के कार्यक्रमों में भाग लेने अन्यत्र जावें। उन्हें सुरक्षा और निश्चिन्तता की भावना से भर दो।

सेवा के अवसरों की सतत खोज में रहो। यह मत सोचो कि "मेरा कर्त्तव्य तो इतना ही था, मैं दूसरों के कर्त्तव्य की सीमा में क्यों आगे बढ़ूं ?" जब बसें आती हैं, लोग उतरते हैं तो सामान के सामने उतारने के समय बड़ी अव्यवस्था और गड़बड़ी फैल जाती है। बस की छत पर से सामान उतारने में सहायता करो। उनकी बात सुनो और ध्यान देकर उनकी सहायता करो। प्यार से उन्हें उन स्थानों पर टिकादो जहां जगह हो। क्योंकि एक विशेष कार्य आपको नहीं सौंपा गया है इसीलिए दूर

खड़े-खड़े मत ताकते रहो। वे लोग आपके यहां आ रहे हैं, उनका हार्दिक स्वागत और मृदु व्यवहार आपके द्वारा होना ही चाहिए। यदि आप उनकी जगह पर होते तो आप किस व्यवहार की आशा करते, वही व्यवहार अब आप उनसे कीजिए। वे लोग वर्षों की मनौती और तैयारी के बाद आज प्रशान्ति निलयम् आ पाये हैं; उन्हें यहां वास्तविक आनन्द की प्राप्ति की आशा है। गाड़ी के ड्राइवर और कन्डक्टर तो उन्हें उतार कर चल ही देंगे। लेकिन इस हड़बड़ी में यदि यात्रियों की कोई वस्तु खो जाती है तो यह आपकी सावधानी पर कलंक के धब्बे के समान होगी। यदि आप वहाँ उपस्थित होंगे तो वे कहेंगे, "किसी सच्चे मित्र ने हमारी वस्तु खोज कर हमें दिला दी वह कैसी भरोसा देने वाली बातें कर रहा था। ज्योंही हम वहाँ पहुँचे हमने देखा वहाँ का बच्चा-बच्चा हमसें इतने प्रेम से मिला। ऐसे तो हमारे सगे सम्बन्धी भी नहीं होते। वह एक ऐसी जगह है जहाँ हमें दयालुता, सहानुभूति, सावधानी और प्रेम से बिना किसी ऊंच-नीच के भेद की सेवा प्राप्त होने का पक्का विश्वास है"।

मुझे देखो। मुझे इन सब कामों का क्या लाभ मिलता है? मैं, ही तो लोगों को उनकी पात्रता देख कर कार्यभार सौंपता हूँ फिर भी मुझे प्रातःकाल से सायंकाल तक और सांझ से सबेरे तक आप व्यस्त ही पाते हैं। मैं मिनटों में ही भोजन, प्रातराश आदि, से निवृत्त हो जाता हूँ, जिससे आपको समय का महत्व समझा सकूं। मैं कार्य के प्रत्येक छोटे से छोटे विवरण को स्वयं देखता हूँ। संभावित परिस्थितियों की कल्पना करके दक्षतापूर्ण व्यवहार का आदर्श मैं अपने व्यवहार में लाने का प्रयत्न करता हूं। मैं जानता हूँ आप में से अनेक व्यक्ति चौराहे पर खड़े-खड़े बातें करते हुये घंटों बिता देते हैं। इस गपशप और बकवास से क्या बनता है? जब आप भगवान को सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी भी और जगत दृष्टा मानते हैं तो सदैव यही स्मरण रखते हुये व्यक्तियों से व्यव-

हार को कि उनमें बैठा हुआ भी भगवान है वह आपको सावधानी से देख रहा है। जब आपका ऐसा व्यवहार स्वभावतः होने लगेगा आप को भगवद्दर्शन अवश्य प्राप्त होगा। आपको यह अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है, इसे उपेक्षा, आलस्य और अज्ञान से व्यर्थ न जाने दो; अवसर को पकड़ कर आगे बढ़ो। प्रभु कृपा प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय आज्ञा पालन है, मेरी सलाह मानकर उस अनुशासन का पालन करो जो इतने प्रगाढ़ प्रेम से आपको संबोधित किया गया है। मुझे चिन्ता है कि लोग मुझसे उतना लाभ नहीं उठा पा रहे हैं जितना कि मैं उन्हें लाभान्वित देखना चाहता हूँ। उस कमल सरोवर में अनेकों मेढक हैं; दूर-दूर से आने वाली मधुमक्खियां इन मेढकों को आश्वस्त और विश्वस्त नहीं कर पाती हैं कि खिले हुये कमल पुष्प का पराग-मधु कितना सुरभित, मृदु और अमृतोपम होता है।

जो लोग यहां दूर-दूर से दर्शन और प्रवचन-श्रवण के लिये पधारे हुये हैं उनकी सेवा प्रेम-पूर्वक और भली प्रकार से करते हुये आपको अपना विवेक जागृत करने का अपूर्व अवसर मिला है। जिससे आप में वैराग्य का विकास हो भक्ति-भावना गहरी हो, और आप यह अनुभव कर सकें कि साईं ही सभी का प्रेरक है। आपका कल्याण हो। मृदु-भाषी, विनयी और सत्यनिष्ठ बनो।

जन्मदिवस उत्सव प्रशान्ति निलयम्,
२२-११-६५



२६

जन्म-दिन उत्सव

(झंडारोहण)

(अ)

सत्य की खोज तो आपकी दैनिक साधना हो जाना है। प्रत्येक क्षण इस मौलिक कर्त्तव्य के पालन के लिए प्रयोग करना चाहिए। जब तपस्या से बुद्धि निर्मल हो जाती है तभी उसमें सत्य प्रतिबिम्बित होता है। और तपस्या का अर्थ है, सभी कार्य महान उद्देश्यों से प्रेरित होना, सभी कार्यों से आत्म-दर्शन की लालसा प्रकट होना, भूतकाल के पापों के प्रति पश्चाताप, पुण्याचरण का दृढ़ संकल्प, सफलता-असफलता दोनों की दशा में अविचलित शान्ति रखना। तप का अर्थ गर्मी अर्थात् तीव्रता, दहन करना, प्रयास की उत्कट क्रिया। वह तपस्या ही है जो त्याग और अनुशासन को पुष्ट करती है।

आज के युग में, जबकि पथ से विचलित करने वाले प्रलोभनों का बाहुल्य है, अनुशासन की बड़ी आवश्यकता है। इस लौह युग में, जब कि अन्धकार मानव के मस्तिष्क पर छाता जा रहा है, वह नन्हा सा दीपक भी जो सीढ़ियों को अलोकित कर सके, हमारे लिए एक वरदान ही होगा। इसीलिए तो मैं आपको सत्कर्म, सदाचार और सद्प्रवर्तन का परामर्श देता हूँ; जिससे आप भगवान के निरंतर साक्षात्कार में स्थिर रहें। आप कल्याणकारी दिव्य वचनों को सुनने के सदा अभिलाषी रहें, और उन पर मनन भी करें, और जब उन वचनों की सत्यता हृदयंगम करलें तो पूर्ण श्रद्धा से ध्यान भी करें। अन्य सभी कार्य गौण हैं, यही एक कार्य कल्याणकारी है और महत्वपूर्ण है।

आज सूर्यग्रहण भी पड़ने को है। बहुतों को संशय था कि जन्मोत्सव मनाया जावेगा या स्थगित कर दिया जावेगा। चन्द्रमा की छाया सूर्य पर पड़ना इतनी बड़ी दुर्घटना नहीं है कि लोग भयभीत हो जावें। इससे कहीं अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और अशुभ योग तब होता है जब माया की छाया बुद्धि पर पड़कर उसे आवृत कर देती है। मन चन्द्रमा और बुद्धि सूर्य है। सावधान कहीं इन्हें ग्रहण न लगे। तभी तक आप सुरक्षित हैं। बाह्याकाश में घटने वाली घटनाओं से उतना चिन्तित नहीं होना चाहिए। चिन्ता तो तब करना चाहिए जब कोई अनुचित लालसा, कुविचार या दुर्भावना आपके हृदयाकाश पर छा जावे और उसे मलिन करे। सावधान रहो कि भगवान् का प्रकाश और उनकी कृपा का आलोक आपके हृदय में धुंधला न होने पावे।

ऐसा मालूम होता है कि किसी ने पूर्व नियोजित व्यवस्था में कुछ गड़बड़ी कर दी है। स्त्रियां बाईं ओर और पुरुष बर्ग दाहिनी ओर हैं। इससे अधिकांश स्त्रियाँ धूप में झुलस रही हैं और पुरुष वर्ग प्रायः वृक्षों के साये में हैं। इसलिए मैं आपको अधिक देर तक नहीं रोकूंगा। अब मैं उस झंडे को फहराये देता हूँ जोकि प्रशान्ति का प्रतीक है। यह प्रशांति वह उच्च कोटि की साम्यावस्था है जिसमें जीवात्मा द्वन्दातीत होकर सर्वोच्च आनन्द की प्राप्ति करता है, जिसमें सुख-दुख हानि-लाभ जयपराजय, उत्थानपतन कुछ भी प्रभाव नहीं डालते हैं और सभी तरंगें शान्त हो जाती हैं और झंझावात भी नहीं उठते हैं। यहाँ पोर्टिको में जिस चिह्न को सीमेंट कन्क्रीट से भूमि पर बनाया गया है उसी का चिह्न पताका पर भी है। यह प्रतीक उस प्रगति का सूचक है जोकि किसी तीर्थयात्री ने अपने हृदय को प्रभु के सिंहासन में बदलने में कर पायी है।

तीर्थयात्री को काम रूपी उजाड़ विस्तृत प्रदेश को पार करना है, उसे क्रोध के गहरे दलदल से निकल कर घृणा और द्वेष की दुर्लंध्य

चोटियों को पार करना है जिससे वह प्रेम और समता की हरीतिमा पर विश्राम कर सके। इस प्रकार अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके उसे योगी की तरह अपने हृदय की उस शान्त गुफा में स्थित होना है जहां कि आन्तरिक क्षोभ और उद्वेग उठते ही नहीं हैं। यहां पर वृताकार केन्द्र में स्थित इस षट्चक्रों वाले स्तम्भ का भी यही अर्थ है। छः चक्र ही वह योगियों के षट्चक्र हैं जो मनुष्य की सुषुम्ना नाड़ी में होते हैं। अपनी गम्भीरतम चेतना (तुरीया) में अविचल स्थित होकर जब मनुष्य ध्यान मग्न होता है तब उसको हृदय चक्र का सहस्र दल कमल खिल उठता है। चित् शक्ति की ज्योति सत्य में प्रशान्ति के रूप में आलोकित हो उठती है। उस समय साधक को अद्वैत का भान और बोध होता है। "एको ब्रह्मद्वितीयो नाऽस्ति।" यह प्रगति, जो प्रत्येक को कभी न कभी, इसी जन्म में अथवा अनेक जन्म जन्मान्तरों में, करनी ही है, इसी प्रतीक में स्पष्ट रूप से अंकित है। इसलिए जब यह झंडा इस प्रशान्ति निलयम् पर फहराया जा रहा है आप भी अपने हृदय प्रदेश पर फहराने का संकल्प करें। इस तीर्थ यात्रा में आज आप भी पहला कदम उठा लें। लाभ के लिए त्याग कीजिये, प्राप्त करने के लिये संयम कीजिये, (सांसारिक आकर्षणों के प्रति) नेत्र बंद कर लीजिये जिससे आप अधिकाधिक स्पष्टता से देख सकें।

प्रशान्ति निलयम्
जन्मोत्सव १९६५, २३-११-६५

—०—

२७

खेल के नियम

(ब)

प्रत्येक व्यक्ति अपनी किसी खोई वस्तु की पुनः प्राप्ति के लिए खोज में व्यस्त है। पिछले जीवन में जो शान्ति और आनंद यहाँ खो दिये गये हैं, उन्हीं की खोज वर्तमान जीवन में की जा रही है। यदि वे प्राप्त हो गये तो जीव के पुनरागमन की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें जीव ने, रक्षण की योग्यता न रखने के कारण, अथवा उनके महत्व से अज्ञान होने के कारण खो दिया है। यदि वह "शिवोऽहम्" के ज्ञान में स्थित हो जावे अर्थात् ऐसा निदिध्यासन करे कि 'मैं शिव हूँ" 'मैं अजर अमर हूँ" तो वह चरम संतोष को प्राप्त करेगा। ऐसी वह, इस सत्य की धारणा और आत्म-ज्ञान से वंचित रहते हुये, सांसें लेता है तो वह अपनी असहाय स्थिति का रोना रोता ही रहेगा। उसे अभाव, निर्धनता और निरंतर-क्षरण सताते ही रहेंगे। इस दुखद स्थिति से मानव का उद्धार होना ही चाहिए।

इन्द्रिय लोलुपता के कारण ही मृग को जाल में फंसाया जाता है; हाथी को गड्ढे में गिराकर वशीभूत करते हैं और सांप को सम्मोहित कर लिया जाता है। इन इन्द्रियों को वशीभूत करके मनुष्य को अन्य पशुओं से अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करना है। उसे अपने "पशुत्व" पाश से निकल कर "मानवता"—जोकि वास्तव में दैवत्व है; में प्रतिष्ठित होना है। जब महाराज भर्तृहरि राजगद्दी त्याग कर बन में चले, तो उनके आधीन करदाता राजाओं ने उनके इस कार्य की

खिल्ली उड़ाई कि उन्होंने यह मूर्खतापूर्ण कदम क्यों उठाया और पूछा भी, ऐसी सनक उन्हें किसने लगा दी। भर्तृहरि ने उत्तर दिया, "अब मुझे उससे भी बड़ा साम्राज्य प्राप्त हो गया है जो पिछले से कहीं अधिक वैभवशाली और शांति से भरपूर है। मैंने तो इस वर्तमान राज्य के बदले में एक निर्धन, उजाड़ राज्य ही दिया है। देखो मैं तो लाभ में ही रहा न ?" अपनी रक्षा के लिए बलिदान कीजिये। आपको एक मिमियाती हुई भेड़, घोड़ा अथवा गाय का बलिदान नहीं करना है। तुम्हें तो अपने पशुत्व, काम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष का ही बलिदान करना है। इनका बलिदान करने पर आपको पूर्ण शांति वाला स्वर्ग प्राप्त होगा। भेड़ का बलिदान तो बहुत ही सस्ती तिकड़म है, इससे आप किसी को भी धोखा नहीं दे सकते। पहले अपने अन्दर की "मैं, मैं" करती हुई भेड़ का बलिदान करो। भेड़ तो एक ऐसा निरीह पशु है जो झुंड में ही आचरण करता है और क्रोधित होने पर भीड़ की ही तरह अन्धा आचरण करता है। किसी यज्ञ में बलिदान के लिए हाँकी जाने वाली भेड़ों के एक झुण्ड को देखकर गौतमबुद्ध ने एक कोमल काय मेमने को अपने कंधे पर उठाकर भेड़ों के झुण्ड के साथ चलकर यज्ञ स्थल में प्रवेश किया। यह बताये जाने पर कि मेमने के बलिदान से राजा और राज्य का महान् कल्याण होगा और यह सब कार्य शास्त्र सम्मत तथा परम्परागत हो रहा है, बुद्ध जी ने कहा, "आपको यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि एक मानव, एक राजकुमार, एक साधु तो एक बेचारी भेड़ से कहीं अधिक श्रेष्ठ बलिपशु सिद्ध होगा। अतः मेरा बलिदान देकर सौगुने पुण्य का लाभ प्राप्त कीजिये" अन्त में उन्हें अपनी आभ्यंतरिक कुप्रवृत्तियों और पाप वृत्तियों के बलिदान की सलाह दी।

शास्त्र सम्मत खोखली और भ्रान्त धारणा से अल्प लाभ की आशा में कुकर्म पूर्ण बलिदान को रोकने के लिए बुद्ध जी ने उनसे शास्त्रार्थ

किया। उन्होंने प्रत्येक भारतीय की प्रातःकालीन प्रार्थना की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया "सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु"। सभी सुखी होवें। चाहे मंत्रोच्चारण के साथ ही क्यों न हो, एक जीवित प्राणी के बलिदान से इहलोक या परलोक में आनन्द प्राप्ति का आश्वासन पूर्ण कर्मकाण्ड एक स्वार्थी क्रिया है, इसको तो यथासम्भव निरुत्साहित ही करना चाहिये। स्वयं दीर्घायु और सम्पन्न जीवन प्राप्त करने के लिए किसी जीव की हत्या करना घोर निन्द्यकर्म है। इसकी समानता तो उन शेखीखोरों से ही की जा सकती है जो अपने परमाणु बमों से राज्यों और नगरों को राख में मिला देने की डींग मारते हैं। जिस प्रकार से यज्ञ "बलिपशु" को कंपित करते थे आज उसी प्रकार ये लोग भी समस्त मानवता को आतंकित और त्रस्त किये हुए हैं।

जो व्यक्ति, सभी प्राणियों में विद्यमान मन, वचन, कर्म के प्रेरक भगवान् के अस्तित्व को मौलिक मान्यता के साथ, अपने कार्यों की योजना बनाते हैं, वे ही मानवता की कृतज्ञता के उपयुक्त पात्र हैं। सभी प्राणी, उसी एक अनुस्यूत ब्रह्म के धागे में पुही हुई रंग-बिरंगे पुष्पों की माला के समान है जोकि भगवान् को अर्पित करने के योग्य है। आप अन्तर्राष्ट्रीय चेतना और सज्ञानता की बात करते हैं, परन्तु यह तभी हो सकेगा जब कि संसार के राष्ट्रों में भेद-भाव की भिन्नता-मूलक वृत्ति समाप्त हो और जब कि सभी मनुष्यों में समान रूप से उसी प्रभु का निवास स्वीकार कर वैयक्तिक और सामाजिक तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय योजनायें की जावें। जब आपके पैर में तो कांटा चुभता है परन्तु आँसू आँख में आ जाता है। क्योंकि दोनों ही एक अंगी के विभिन्न अंग हैं। इसी प्रकार जब कि एक कीड़ा भी कुचल जावे तो आपके हृदय में पीड़ा होनी चाहिए। इसे तो साधना के रूप में तब तक चलाया जावे जब तक कि यह स्वभाव ही बन जावे। एक तोता, जिसे 'राम-राम' कहना सिखाया गया था, जब एक बिल्ली

के द्वारा झपेटा गया और इसके पेट में बिल्ली के दांत गड़े तो अन्य तोतों की तरह इसने भी "चीं-चीं" की और राम-राम न कह सका इसी प्रकार जब राष्ट्रों के स्वार्थ को धक्का लगता है तो 'मानवता की एकता' सभी में प्रभु का निवास और व्यापकता की भावना और बातें एक ओर धरी रह जाती हैं।

एक सुल्तान की पुत्री सदा ईश्वर के ध्यान में मग्न रहने वाली थी। उसकी पवित्रता और धार्मिकता को देखकर पिता ने संकल्प किया कि वह पुत्री का विवाह उसी व्यक्ति से करेगा जो उसकी पुत्री के समान ही सदा आध्यात्मिक साधना तथा स्वाध्याय में लीन रहने वाला होगा। आसपास के राजा लोगों ने उस राजपुत्री से विवाह करने की इतनी इच्छा प्रकट की कि सुल्तान को विवाह की समस्या का समाधान अवि-लम्ब खोजना पड़ा। वर की खोज में व्यस्त सुल्तान को एक संध्या को एक ध्यान मग्न तरुण फकीर दिखाई दिया जो मस्जिद के एक कोने में बैठा था। उसका मुखमण्डल एक आन्तरिक अनिर्वचनीय आह्लाद से दमक रहा था। वह उसे कई घंटे तक अवलोकन करता रहा। अंत में जब ध्यान की समाप्ति पर वह प्रकृतिस्थ हुआ तो पूछा कि क्या वह विवाहित है। जब ज्ञात हुआ कि वह अब तक अविवाहित है तो सुल्तान को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपना परिचय देकर पुत्री से विवाह करने की प्रार्थना की। फकीर ने कहा कि उसके जैसा निर्धन फकीर राजपुत्री को कैसे सुखी कर सकेगा। राजा ने अपनी पुत्री की साधना का वर्णन करके उसे निश्चिन्त कर दिया। इस शर्त पर कि यदि सुल्तान विवाह का पूर्ण व्यय तीन पैसे में निबटा सके तो वह विवाह के लिए सहमत हो गया। सुल्तान ने एक पैसे की पान-सुपारी एक पैसे का गुड़ और तीसरे पैसे की धूप खरीद कर विवाह सम्पन्न कर दिया। वर-वधू जाकर सराय में रहने लगे।

कुछ दिनों बाद राजकुमारी ने उसके खूंट में एक रोटी बंधी हुई पाई उसने पूछा कि "यह रोटी क्यों बांध रक्खी है ?" जवाब मिला कि "प्रातः काम में आ जावेगी।" राजकुमारी ने निर्णय किया कि "यह तो कोई अविश्वासी और अयोग्य फकीर है। इसे तो ईश्वरीय प्रेम में और उसकी सामर्थ्य में अविश्वास है कि ईश्वर अपने बच्चों का भरण-पोषण कर सकता है। इसे तो ईश्वर की दया और स्वयं ईश्वर में विश्वास नहीं है।" इतना कहकर राजकुमारी अपने पिता के यहां लौटकर पुनः निर्बाध साधना में लग गयी। जो पेड़ लगाता है उसे उसको सींच कर सुदृढ़ वृक्ष के रूप में विकसित देखने की लालसा भी होती है। विश्वास रखो। केवल वाणी से विश्वास प्रकट करना और कार्यों से अविश्वास प्रकट करना ठीक नहीं है।

ईश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता है। सभी वृक्षों में उनके बीज के अनुसार फल लगता है। खट्टे आम का पौधा लगा कर मीठे फलों की कामना क्यों करते हो ? फिर आपकी जिह्वा फलों के मीठे न होने पर क्यों पश्चाताप करती है ? नेकी करो और इस नेकी के सुन्दर फल की आशा करो—तब तो क्षम्य है। यह उतनी बुरी बात नहीं है जितनी कि बुरा करना फिर ईश्वर पर दोषारोपण करना कि उसी ने तो आपको दुष्कर्म का प्रतिफल प्रदान किया हैं।

एक बार नानक के गुरु ने उनसे प्रश्न किया जबकि वे ध्यान मग्न हो कर कुछ लिख रहे थे। नानक ने कोई उत्तर नहीं दिया। बाद में जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो नानक बोले, "मेरा हृदय मस्तिष्क रूपी कागज पर ईश्वर केन्द्रित बिचार रूपी कलम से बासना भस्म की स्याही से लिख रहा था।" देश का भाग्य देशवासियों के चरित्र पर निर्भर करेगा; चरित्र तभी उन्नत होता है जब साधना के द्वारा उसे पवित्र बनाकर व्यवहार को सुव्यवस्थित रूप से दृढ़ और इच्छाओं को

संयमित किया जाता है। ईश्वर ही अविभावक है; अतः अभिभावक के नाते उसे लोगों को चेतावनी देनी पड़ती है, दण्ड देना पड़ता है और लोगों को कुटेवों से हटाना होता है। आवश्यक होने पर सुधार के लिए भगवान् द्वारा कष्ट, यंत्रणा भी दिये जाते हैं कि लोग सुधरें।

सीमा, नियंत्रण, नियमन, बाड़ और परकोटा यही सब तो सफलता प्राप्ति के उपाय हैं। यदि लोग अपने विचारों, वचनों और कर्मों को खुली छूट दें तो परिणाम विनाश ही होता है। शास्त्र का अर्थ ही होता है कि वह "मर्यादा की सीमाओं" को निर्धारित करे। इन नियमों से जीवन में रुचि उत्पन्न होती है। फुटबाल के खेल में यदि कोई भी नियम न हो, न कभी गेंद सीमोल्लंघन करे, न हस्तस्पर्श (हैंड), कार्नर, आफसाइड की भूलें दण्डित की जावें तो उस 'धींगामुश्ती' के खेल में किसे क्या रुचि होगी। यह तो खुली धक्का-मुक्की ही होगी। व्यवहार और आचरण के नियम तो सभी को मानने ही चाहियें चाहे वह राजनयिक शासक या संन्यासी कोई भी क्यों न हो; चाहे वे सामाजिक नेता हों, मठाधीश हों, विद्वान हों या अन्य कोई। उन्हीं का अनुकरण तो जनता करती है। अतःएव उनका उत्तरदायित्व भी जन साधारण से कहीं अधिक होता है।

लोग एक ओर "अद्वैत' और "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थात् सब एक ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है, की बड़ी-वड़ी उच्च बातें करते हैं और दूसरी ओर यही लोग मामूली भेदभाव और विशिष्टताओं की भी खूब बढ़ा चढ़ाकर चर्चा करते रहते हैं। लोग इस बात की बड़ी डींग मारते हैं कि वे गत २०, १५ अथवा १० वर्षों से पुट्टिपर्ती आते रहे हैं मानों कि यहां पर भी वर्षों के हिसाब से वरष्ठिता और कनिष्ठता के दर्जे हैं जिनमें लोगों को उनके सम्पर्क के पुरानेपन के आधार पर दर्ज किया जाता हो। वास्तव में देखना तो यह है कि इस संपर्क से उनके अन्दर

कितना कुछ फेर बदल हुआ है; उनके चरित्र और व्यवहार में क्या-क्या श्रेष्ठ परिवर्तन हो गये हैं। जो पाठ यहां से पढ़ कर गये उनमें से कितनों पर अमल किया है। बहिर्मुखी वृत्तियां, जो निरंतर आपके विवेक और आन्तरिक आनन्द को निरंतर रिक्त करती रही है उन्हें आप कितना संयमित कर पाये हैं। चक्षु आपकी दृष्टि को सैकड़ों दिशाओं में बिखरा देते हैं; कान आपके मस्तिष्क को अनेकों झूठी तानों और संगीत में भुलाये रखते हैं; हाथ अनेकों खुराफात के कार्य करने में लगे रहते हैं। ये सब मानव को पतन और विनाश की ओर ले जाने की चेष्टा करते हैं। मानव स्वयं दिव्य है; उसे अपने चारों ओर दिव्यता का वातावरण रखना चाहिए जैसे कि मछली के चारों ओर जल ही जल रहता है तभी वह सुखी रहती है। इसी प्रकार आपके चारों ओर भी दिव्य आनन्द का जल भरा रहना चाहिए । खेद है कि आजकल लोग बनावटी सांस और बाहरी रक्त रूपी कृत्रिम आनन्द साधनों से जीवित रहने का प्रयास कर रहे हैं। मानव तो अमृत-स्वरूप है, आनन्द-स्वरूप है; फिर क्यों बाहर से आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न करता है ?

इस पर भी "साई सभी में है" इस सत्य को तो मानों। जब आप किसी से घृणा करते हैं तो साई से ही घृणा करते हैं ; जब आप साई से ही घृणा करते हैं तो अपने से ही घृणा करते हैं। जब आप किसी को दुख देते हैं तो याद रखिए इस दूसरे स्वरूप में भी आप ही हैं, नाम ही बदला हुआ है आत्मा तो एक ही है। जिनसे आप घृणा करते हैं उन्हें घृणा से दुख ही तो होता है। दूसरों की सम्पत्ति की हरियाली देखकर आपकी आंखों में लाली क्यों आती है ? जब दूसरा भर पेट रोटी खा पाता है तो आपको क्यों जलन होती है ? इस ईर्ष्या करने की बात को त्याग दो; दूसरों को प्रसन्न देखकर आप भी प्रसन्न होवें। यह स्वभाव भगवान् को, आपके सभी मंत्रों के जाप से, कहीं अधिक प्रसन्न करता है। आपकी सभी पूजा की सामग्री किसी चित्र अथवा मूर्ति

पर अर्पित करने से भी कुछ नहीं होता है; यहां तक कि घंटों जप ध्यान का भी वैसा उत्तम प्रभाव नहीं होता है जैसा कि दूसरों के दुख-सुख में दुखी-सुखी होने वाला स्वभाव रखने से होता है।

भारत अनेक धर्मों और दर्शनों का देश है; परन्तु कोई वर्ग भी अपने धर्म और दर्शन का ढंग से श्रद्धापूर्वक पालन नहीं कर रहा है। ये धर्म और दर्शन तो एक लेबिल की तरह व्यक्तियों पर बाहरी तौर से चिपके हुए प्रतीत होते हैं जिससे उनकी पृथकता का बोध होता रहे; मानों किसी विशेष उद्देश्य अथवा अवसर पर पहनी हुई कोई यूनीफार्म (वस्त्र) मात्र हो। लोग जब किसी क्लब, जुआघर, या सिनेमा जाते है तो बड़े गर्व से उसका उल्लेख कर देते हैं कि वहां जा रहा हूं, वहां गया था। परन्तु किसी मन्दिर या सत्संग में या किसी संत के यहां जाने में अकारण लज्जित से हो जाते हैं और बतलाने में हिचकिचाते हैं। लोग अपनी आय के बाहर होकर ठाठ-बाठ का रूप बनाये रखते हैं चाहे उन्हें कर्ज में डूब ही क्यों न जाना पड़े। क्योंकि वे सभी पर अपनी "स्टैन्डर्ड लाइफ" आभिजात्य जीवनस्तर की धाक जमाना चाहते हैं। इसके लिए वे ट्रांजिस्टर, बुशकोट, रेफ्रीजरेटर, केमरा इत्यादि अनावश्यक होने पर भी रखते ही हैं। आडम्बर प्रदर्शन, और दूसरों को अपने जीवनयापन के स्तर से नीचा दिखाने की प्रवृत्ति मनुष्यों में असन्तोष और बनावट की सृष्टि करती है। आपका जीवनयापन सादगी से पूर्ण होना चाहिये। आपका भोजन और मनोविनोद सात्विक होवें। आपका आदर्श सेवा हो, और विचार सत्य, धर्म शान्ति प्रेम से ओतप्रोत होवें। आज मैं आप लोगों के प्रति इन्हीं की प्राप्ति के लिए मंगल कामना करता हूं।

प्रशान्ति निलयम्
जन्मोत्सव १९६५, २३-११-६५

—o—

२८

पुकार और उसकी सुनवाई

(स)

एक साधक, आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करके किसी जंगल में गया। जब वह किसी घने और हिन्स्र जानवरों से युक्त भाग में से होकर जा रहा था उसे सिंह की क्रोधित दहाड़ सुनाई पड़ी। आत्म-रक्षा के लिए वह किसी वृक्ष पर चढ़ गया। परन्तु सिंह ने उसे देख लिया और उसी वृक्ष के आसपास टहलने लगा। उसी वृक्ष पर एक रीछ भी चढ़ा था उसने मनुष्य पर आक्रमण किया। एक शाख से जो जड़ें लटक रही थीं उन्हीं के सहारे मनुष्य नीचे की ओर सरक गया। सौभाग्य से जड़ें दो थीं जिनके सहारे वह हवा में एक-एक हाथ में लेकर झूल रहा था। उसी समय उसने देखा कि दो काले और श्वेत चूहे इन जड़ों को काट रहे थे। हर बार दांत मारने पर इन जड़ों में से कुछ न कुछ कट ही जाता था और मनुष्य का जीवन प्रतिक्षण अधिकाधिक संकटग्रस्त होता जाता था। इसी संकट काल में ऊपर एक मधुमक्खी के छत्ते से शहद की बूंदें टपक रही थीं जिन्हें अपनी जिह्वा पर लेने के लिए वह मनुष्य भी आतुर था। परन्तु दुर्भाग्य से उसे कोई बूंद भी प्राप्त नहीं होती थी। अंत में निराशा और भय से आतंकित उसने अपने गुरुदेव का स्मरण कर पुकारा, "गुरुदेव भगवान् आओ और मुझे बचाओ।" गुरुजी ने जो कहीं उधर ही आसपास से होकर निकल रहे थे, उसकी पुकार सुनली। तीरकमान लाकर सिंह और रीछ को मार डाला और चूहों को भगा दिया। और इस प्रकार मृत्यु से भयभीत अपने शिष्य को बचा लिया। उसे अपने आश्रम पर ले जाकर मुक्ति मार्ग की साधना की दीक्षा दी।

आप में से प्रत्येक की यही कहानी है। यह दुनियाँ ही वह बन है जिसमें आप घूम रहे हैं। भय ही सिंह है जिसके कारण आप संसार—दुनियादारी के वृक्ष पर आरूढ़ होते हैं। चिन्ता वह रीछ है जो दुनियादारी में पग-पग पर आपका पीछा करती है इसी से आप आशा निराशा की दो जड़ों के सहारे आसक्ति और बंधन के कार्यों को कर रहे हैं। काले और श्वेत चूहे रात और दिन हैं, जो आपकी आयु को निरंतर क्षीण कर रहे हैं। अहंकार और ममत्व रूपी शहद की बूंदों से आप सुखी होना चाहते हैं। अंत में उन बूंदों को महत्वहीन तथा अप्राप्य समझकर आप त्याग की छटपटाहट से गुरु का स्मरण करते हो। यह गुरु अंतरात्मा अथवा बाहर से भी आकर आपको भय और चिन्ता से मुक्त कर देता है।

यदि आप सच्चे हृदय से पुकारेंगे तो पुकार की सुनवाई अवश्य होगी। क्षुद्र कामनाओं को त्याग कर दुखी हृदय से कातर होकर पुकारो। जैसा कि अभी तक आप करते आये हैं केवल ओठों से ही मत पुकारो, चौके के एक कोने में बैठकर पूजा के आसन से पुकारने से क्या लाभ ? वहाँ तो आप एक आँख भगवान् पर और दूसरी भोज्य सामग्री पर रखते हुये, आकर्षक सुगन्ध सूँघते हुये, मसालों की उत्तेजक, रोचक गंध में मग्न पूजा की औपचारिकता मात्र निबाहते हैं। ईश्वर सम्बन्धी आपके विचार विषय वासना से, इन्द्रिय भोगों से लिप्त रहते हैं। जो आप कहते हैं और करते हैं उसमें बड़ा व्यवधान होता है; जितनी कि आपकी सामर्थ्य है तथा जितना कुछ आप कर पाते हो। आपने उत्तर कुमार के विषय में पढ़, सुन ही रक्खा होगा कि वह कितना भीरु और उत्साह हीन था, फिर भी वह डींग मारता था कि कौरवों की सेना को चुटकी बजाते मसल देगा। वह युद्ध संचालन पर घंटों बोल सकता था, परन्तु वास्तविक युद्ध से अज्ञात था।

ईश्वर उस प्रेरणा का ही मूल्यांकन करता है कि जिससे प्रेरित होकर मनुष्य किसी कार्य को करता है। अब्दुल्ला तो मक्का की मस्जिद के एक कोने में सो रहा था, जबकि दो देवदूतों को अपने सिर पर बतलाते सुनकर जाग पड़ा। वे लोग भाग्यशाली लोगों की सूची बना रहे थे। उनमें से एक दूसरे से कह रहा था कि सिकंदर नगर का महबूब नामक व्यक्ति ही इन सबसे श्रेष्ठ है यद्यपि वह एक बार भी हज्ज करने नहीं आ सका है। अब्दुल्ला ने सिकंदर नगर में जाकर देखा कि महबूब तो एक साधारण मोची है और लोगों के जूते गाँठ रहा था। वह अत्यंत निर्धन और अधपेटे रह कर जीवनयापन कर रहा था। क्योंकि उसकी कमाई ही इतनी थी कि वह किसी प्रकार जिये जा रहा था। वर्षों में पेट काट कर उसने कुछ धन जोड़ पाया था जिससे वह एक स्वादिष्ट भोज्यपदार्थ बनवाकर अपनी आसन्न प्रसवा पत्नी को भेंट कर संतुष्ट और आश्चर्यान्वित करना चाहता था। जब वह 'भेंट' लिये घर आ रहा था उसने भूख से मरते हुये भिक्षुक की कातर पुकार सुनी। महबूब आगे न बढ़ सका। उसने बहुमूल्य भोज्य की हाँडी उस व्यक्ति को देदी और स्वयं उसके पास बैठकर उसके मुखमंडल पर खिलने वाली संतोष और तृप्ति की कान्ति को देखता रहा। इसी कार्य से देवदूतों की सूची में उसे वह स्थान दिया गया था जिसे अनेकों तीर्थ यात्रियों ने लाखों अशर्फियाँ और दान लुटा कर भी न प्राप्त कर पाया था। भगवान् तो कार्य के पीछे लगी हुई प्रेरणा का मूल्य लगाते हैं न कि कार्य की तड़क-भड़क और आडम्बर का।

कई सौ वर्ष पूर्व गोवर्धन नामक कस्बे में श्रीनाथ जी का एक मंदिर था। उस नगर में एक निर्धन ब्राह्मण के एक ६ वर्ष का इकलौता पुत्र था जो श्रीकृष्ण जी की लीलाओं और कहानियों को सुनकर बड़ा प्रसन्न होता था। एक दिन वह ढोर चराने उसी मंदिर के आसपास जा निकला। मंदिर की मूर्ति को देखकर उसने मूर्ति को ही श्रीकृष्ण

भगवान् समझ लिया। उसने बड़े ही करुण स्वरों में भगवान् को अपने साथ चाँदनी रात में खेलने को पुकारा। यद्यपि मंदिर का पुजारी दोपहर को ही मंदिर को बंदकर के ताला लगा कर घर चला गया था, भगवान् आये और उस बालक के हाथ में हाथ डालकर दूर खेतों में शीतल चाँदनी रात में उस लड़के को अत्यंत प्रसन्नता प्रदान करते हुए खेलते रहे। श्रीकृष्ण जी के पास बंशी भी थी जिसे उन्होंने एक पत्थर पर बैठकर बजाया और ब्राह्मण पुत्र को आनंद विभोर कर दिया। कई घंटों के बाद वे अपने उस तथाकथित बन्धु के साथ लौटे और ब्राह्मण पुत्र को बिना बताये ही पुन: उसी मंदिर में, जिसके सूराख से होकर मूर्ति का दर्शन होता था, अदृश्य हो गये। लड़का अपने इस अलौकिक क्रीड़ा सहचर का वियोग न सह सका। वह शेष रात्रि और प्रात:काल वहीं बैठा-बैठा विलखता रहा। तब तक उसे खोजते हुए उसके माता-पिता और पुजारी भी वहां आ गये। माता-पिता ने इतना हड़ाने पर बालक की पिटाई भी की परन्तु पुजारी ने देखा कि चोटों के पड़ने से मूर्ति में से रक्त बहने लगा था। जब आप उसे नन्हें क्रीड़ा सहचर के रूप में पुकारते हैं तो वह उसी रूप में आपको प्राप्त होता है। यदि गुरु के रूप में उसे पुकारें तो वह गुरु के रूप में आकर आपको उपदेश और प्रेरणा देगा। जो भी उसे सच्चे हृदय से, विश्वासपूर्वक पुकारता है भगवान् भक्तों की पुकार पर सदा ही आये हैं।

प्रशान्ति निलयम्
जन्मोत्सव १९६५, २४-११-६५



२६

माता और मातृ-भूमि

इस गांव तथा आसपास के ग्रामों से आये हुए इतने हजारों लोगों को यहां देख कर मुझे यहां आने से प्रसन्नता ही हुई है। आज अन्तर्तः और बाह्यतः यहां इतनी आनन्द और उत्सव की भावना व्याप्त है कि सर्वत्र शीतल सन्तोष की लहर आई हुई है। प्रेम, सहकारिता और समरसता के इस वातावरण की वृद्धि करते रहो तो निश्चय ही आपकी प्रसन्नता सदा के लिए दृढ़ रह सकेगी। दूसरों से पृथक रहने के लिए तर्कों की खोज मत करो, बल्कि सामान्य हित में कार्य करने की पद्धति का निर्णय कर लो। अंहकार और मामकार—'मैं और मेरे' भावना की अधिकता से प्रेम और सहकारिता नष्ट होते हैं। इन्हें न्यूनतम की स्थिति तक कम कर डालो; और तब संकटग्रस्त और जरूरतमन्दों की सेवा करना प्रारम्भ कर दो।

'तत्त्वमसि' की आधार शिला पर ही सेवा का महल खड़ा किया जा सकता है 'वह सब तूही है' वह और यह सब एक ही है; अभेद हैं। अन्य कोई कुछ है ही नहीं। पतंगें ऊंचे आकाश में उड़ती हैं; परन्तु सभी को एक ही वायु ऊपर उठाती है और साधे रहती है। पतंगों की अपनी कोई स्वतंत्र कामना नहीं होती। सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने वाले घड़े अनेकों होते हैं; परन्तु सूर्य एक ही होता है जो घड़ों के टूट जाने, या पानी सूख जाने पर भी अप्रभावित रहता है इसलिए जो भी सहायता या सेवा आप करते हैं वह एक ही विश्वात्मा है। जब कोई निर्धन है तो तुम धनवान् कैसे हो सकते हो; जब कोई दुखी है तो तुम सुखी

या प्रसन्न कैसे रह सकते हो ? वह धारा एक ही है जो सभी को अनुप्राणित कर रही है। 'ईशावास्यमिदं सर्वं' 'यह सब ईश्वर ही है' 'वासुदेव सर्वमिदं' 'ईश्वर ही यह सब दृश्यमान है' न कुछ और है और न ही ईश्वर से कुछ निम्नकोटि का है।

भारत अपने बच्चों को यही पाठ युगों-युगों से पढ़ा रहा है। वेदों में कहा है 'मातृ देवोभव' अपनी माका ईश्वर की तरह सम्मान करो। यही उस देश पर भी लागू होती है जहां आपने जन्म लिया है। इसलिए आपको उस देश का सम्मान करना चाहिए, उसकी संस्कृति का अनुसरण करना चाहिए। जिस माता ने आपका प्रेम, बलिदान और चिन्ता करते हुए पालन-पोषण किया है उसका सम्मान आपको अवश्य करना चाहिए। एक व्यक्ति चाहे जितना प्रसिद्ध क्यों न हो जावे यदि वह अपनी मां का सम्मान नहीं करता है तो उसे भी सम्मान पाने का कोई अधिकार नहीं है। जिस कठोर हृदय व्यक्ति का हृदय मां की पुकार पर भी द्रवित नहीं होता है उसे तो 'उपहास' के अतिरिक्त और कुछ मिलना ही नहीं चाहिए।

हमें स्वराज्य तो मिल गया है; जो लोग देश पर सौ वर्ष से ऊपर समय से शासन करते चले आ रहे थे उनसे देश स्वतंत्र हो गया है। यद्यपि शासक तो चले गये परन्तु उनका कुप्रभाव अभी तक छाया हुआ है। पश्चिमी लोगों की आदतें और दृष्टिकोण यहां के नेताओं और शिक्षित लोगों पर अब भी हावी हैं। वेश-भूषा, भाषा, सम्मतियां और आचरण में अभी तक लोग पश्चिमी लोगों के अनुकरण में गौरव मानते हैं। यद्यपि हम अपने को स्वतंत्र घोषित करते हैं, परन्तु यह मानसिक दासवृत्ति चलती ही जा रही है। माता वक्ष को सुशोभित करने वाले सनातन धर्म रूपी हीरों के हार को हटाकर हम प्लास्टिक की माला से बदल देना चाहते हैं। इस विद्यालय के अध्यापक और अधिकारीगण इस

बात की प्रतिज्ञा लेलें कि इस विद्यालय से निकलने वाले छात्र सभी सनातन धर्म के महत्व को हृदय में स्थापित कर चुके हों। इसी से उन्हें शांति, साहस और आभेद की प्राप्ति होगी। यीशु से प्रेरित मिशनरी लोगों को हम देखते हैं कि वे अपने देश से हजारों मील दूर, विदेशों में, विभिन्न संस्कृति और सभ्यता वाले अनजान लोगों में जिनकी भाषा और भोजन, स्वभाव, वेशभूषा उनसे नितान्त भिन्न है, स्कूल, अस्पताल खोलते हैं और अपने धर्म का प्रचार करते हैं। सुदूर देशों से वे इस देश में भी आये हैं। परन्तु, इस प्राचीन धर्म के बच्चे सनातन धर्म की उपेक्षा और अवमानना करते हैं। ऋषियों ने जो मूल्यवान् उत्तराधिकार हमें दिया है उसे ये खो रहे हैं। स्कूलों में बच्चे "बा, बा, ब्लैक शीप" 'का, का, काली भेड़' की तुकें रटते हैं। "क्या तुम पर कोई ऊन उगी है?" यह सब अंग्रेज बच्चों के उदाहरण का अंधानुकरण(भेड़ चाल) है। बच्चों को अब वह सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र नहीं याद कराये जाते जो पहले प्राचीन काल की प्रारम्भिक पाठशालाओं में गवाये जाते थे। यह स्तोत्र वह स्थाई निधि के रूप में व्यक्तियों के अधिकार में सदैव रहते थे और इनसे सन्तोष और शक्ति जीवन भर प्राप्त होते रहते थे।

इस सबका आशय यह नहीं है कि आप अपने हृदय में किसी भी भाषा के प्रति अरुचि उत्पन्न कर लें; जबकि आप अपनी मातृभाषा का सम्मान करते हैं और उसका भली प्रकार से प्रयोग करना सीखते हैं, तो अन्य लोगों की भाषा के प्रति घृणा के भाव न उत्पन्न करलें। अपनी सम्पूर्ण शक्ति से मातृभाषा, और मातृभूमि की रक्षा करो। विद्यालय में प्राप्त सुअवसर का पूर्णलाभ उठाकर अपने को इस कार्य के लिए सक्षम और दक्ष बनाओ। अबाधगति से, अपनी शक्ति भर उन्नति कर जाओ। साथ ही में स्वास्थ्य और बुद्धि का भी विकास करते जाओ चरित्र को उन्नत बनाओ। सबसे अधिक विश्वसनीय शक्ति, धन में नहीं, संबंधियों में नहीं, भौतिक तीक्ष्णता या प्रखरता में नहीं, तुममें केवल तुम्हीं में है

जोकि आत्मा हो। इसको जानो, इसमें डुबकी लगाओ, इससे धारणा शक्ति प्राप्त करो, सबमें इसी का दर्शन करो, सभी में इसकी सेवा करो।

इस अवस्था में आपको अनुशासन का महत्त्व सीखना चाहिए। आप तभी अनुशासित हो सकते हैं, यदि अध्यापक, माता-पिता और समाज के नेतागण सभी अनुशासन का पालन करने वाले हों। समस्त राष्ट्र को उद्दाम मनोविकारों और भावों को संयमित करना सीखना चाहिए। इनके प्रति आत्मसमपर्ण करने से अंत में विनाश ही होता है। अनुशासन, आत्मसंयम सेवा-भावना के हथियारों से पाकिस्तान और उसके साथी चीन को पराभूत किया जा सकता है। यह प्रार्थना और नम्रता का अवसर है। अपने घरों के पूजा घर में, गाँव के मंदिरों में और अपने-अपने हृदयों में सर्वशक्तिमान् से प्रार्थना करो कि वह आपको बचावे और रक्षा करे। इस अस्त्र को तो सबसे निर्बल व्यक्ति भी प्रयोग कर सकता है, और इससे सबसे शक्तिशाली शत्रु को भी हराया जा सकता है। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि सनातन धर्म की सुयोग्य प्राचीन माता—भारत, को कुछ हानि नहीं पहुँचेगी।

धर्मावरम्
जिला परिषद हाई स्कूल दिवस २६-११-६३

—०—

२६

परीक्षा होने पर प्रसन्नता अनुभव करो

भारत का अर्थ है कि वह देश जहां 'रति' (लगाव) हो, 'भगवान्' से (भा=भगवान) इसलिए इस देश में जन्म लेने वालों के लिए सभी दिन पवित्र हैं, सभी नदियां पवित्र हैं, सभी पहाड़ पवित्र हैं। गंगा तो उद्गम से समुद्र में संगम तक सर्वत्र पवित्र है; परंतु फिर भी कुछ स्थान जो किसी ऋषि-मुनि, पवित्र घटना या मंदिर होने से विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। यह स्थान ऋषिकेश, वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार इत्यादि हैं। इसी प्रकार वर्ष में कुछ दिन अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक पवित्र माने जाते हैं; जबकि साधकों द्वारा विशेष पूजा विधि से भगवान की भक्ति जाप, ध्यान या साधना की जाती है। शिवरात्रि एक ऐसा ही पर्व है।

और आप सब लोगों के लिये, जो इस अवसर पर यहाँ एकत्र हुए हो, यह दिन जीवन भर स्मरणीय रहेगा। अन्य भक्तों तथा संबंधी साधकों से भेंट का अवसर परम सौभाग्य की बात होती है। हृदय में भगवान् की उपस्थिति से आप में से प्रत्येक एक मंदिर के समान है, चाहे आप इस तथ्य से परिचित हों अथवा नहीं। भगवान् को 'पुरुषसूक्त' में 'सहस्रशीर्षा' कहा गया है; इसका यह अर्थ नहीं कि भगवान् के ठीक १००० मस्तक हैं न कम न ज्यादा। इसका अर्थ है कि मेरे समक्ष 'हजारों मस्तकों' में हृदय केवल एक ही है जो सभी को जीवन और शक्ति प्रदान कर रहा है वह है "भगवान्"। कोई भी अपने पड़ोसी से दूर नहीं होता। सभी असंख्य शरीरों में प्रवाहित एक

जीवन-रस से संबंधित हैं। सनातन धर्म की यह विशेष शिक्षा है; जिसकी आज विश्व को बड़ी आवश्यकता है। और इसी महत्त्वपूर्ण शिक्षा को भारत के बच्चे दुर्भाग्य से भूल भी गये हैं।

भगवान ने मनुष्य को शरीर, अंग प्रत्यंग प्रदान किये हैं, इसलिए प्रत्येक को समुचित सम्मान और देख-रेख मिलनी ही चाहिए प्रत्येक का उपयोग उसी प्रभु की महिमा के लिये होना चाहिए। जब ईश्वर की अद्‌भुत लीलाओं को सुनने का अवसर प्राप्त हो तो कानों को प्रसन्नता होनी चाहिए। जब भगवान की प्रशंसा-स्तुति, कथा कहने का अवसर मिले तो जिह्वा को प्रसन्नता होनी चाहिये। अन्यथा दलदली किनारों पर बैठे हुये मेढकों की तरह, जो रात-दिन टर्र, टर्र, किया करते हैं, मनुष्य की जिह्वा व्यर्थ है। जब दुर्योधन ने कहा कि वह मनुष्य या ईश्वर किसी से भी भय नहीं खाता है तो कृष्ण ने कहा कि उसकी दशा तो वास्तव में दयनीय है। पशु और मृग भय खाते हैं तथा एक दूसरे को डराते भी हैं। मनुष्य तो इन दोनों में से कोई नहीं है; अतः न तो उसे भय खाना चाहिए और न किसी को डराना ही चाहिए। न तो वह डरपोक हो और न दूसरों को डराने वाला गुंडा ही। यदि वह डरता है तो जानवर है, और डराता है तो दानव है, राक्षस है।

चूंकि आप यह सोचते हैं कि इस प्राप्त शरीर का उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग होना चाहिए, आप यहाँ प्रशान्ति निलयम् में आये हैं। आप सब में और मुझ में एक अनादि, युगों-युगों का, शाश्वत संबंध है। यह लौकिक संबंधों पर आधारित नहीं है। यह तो हृदय की आकांक्षा पर आधारित है, यह "प्रशान्ति निलयम् संबंध" है। शाश्वत शान्ति के आलय, निधि से सम्बध है।

मानव शरीर आपको एक महान उद्देश्य के लिए प्रदान किया गया है और वह है अंतःकरण में स्थित भगवान् का अनुभव करना। यदि

आपके पास पूर्णतया सुसज्जित और अच्छी चालू दशा में कार है तो क्या आप उसे मोटरगाड़ी खाने में बन्द पड़ा रहने देंगे ? कार तो प्रधानतया यात्रा करने के लिए होती है। इसमें बैठो और यात्रा करो। तभी कार रखने का कुछ अर्थ है। ऐसा ही शरीर के संबंध में भी होता है। आगे बढ़ो लक्ष्य की प्राप्ति करो। शरीर की शक्तियों का उपयोग करना सीखलो, इन्द्रियों, मन, बुद्धि को इसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन बना डालो और आगे बढ़ो।

देवताओं के गुरु बृहस्पति से उनके पुत्र ने एक दिन पूछा, "तो फिर इस जन्म-मृत्यु दुख के बार-बार पाने से मुक्ति पाने का कोई उपाय भी है ?" उन्होंने उत्तर दिया कि, "है क्यों नहीं। वह केवल आकांक्षी होवे, साधना करे और उस मुक्ति को स्वयं ही प्राप्त करे।" अनेक लोग शिक्षित या दुर्बल विश्वास से प्रारम्भ तो कर देते हैं "क्या मैं कर सकूंगा ?" "क्या मैं सफल हो सकता हूँ ?" "इस प्रकार कब तक मुझे करना होगा ?" ऐसे सन्देहात्मक प्रश्न उनके मन में उठते रहते हैं। परन्तु सत्य, धर्म और प्रेम पर आचरण किया जावे तो आवश्यक "शांति" अवश्य प्राप्त होवेगी जो मुक्ति से ही प्राप्त होती है। तब पुत्र ने पूछा कि उसे क्या करना है। पिता ने उत्तर दिया कि "सर्व-संग-परित्याग" से ही उसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। उन्हें प्रसन्नता थी कि उनके एक पुत्र है जो जीवन के उस उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है। वे आजकल के पिताओं से, जो अपने पुत्रों को ताश खेलने को अथवा अन्य क्षुद्र कार्यों में समय नष्ट करने को स्वयं आमंत्रित करते हैं, बिल्कुल भिन्न प्रकार के थे। यदि आज कोई पुत्र ऐसा प्रश्न पूछे तो पिता समझेगा कि यह तो पागल हो गया है और पिता को अनेक दुश्चिन्तायें आ घेरेंगी, भय लगेगा और वह नाना प्रकार के यंत्र, मंत्र और उपचार प्रारम्भ करावेगा। हमारे देश का यह दुर्भाग्य ही समझना चाहिए।

पुत्र घरबार छोड़ कर निकल गया और आठ वर्ष की तपस्या के पश्चात् भूख-प्यास पर विजय प्राप्त कर घर लौटा। पिता ने परीक्षा ली। परीक्षाओं का स्वागत करना चाहिए क्योंकि केवल उन्हीं में सफलता प्राप्ति से आत्म विश्वास की प्राप्ति होती है। जब आप दीवाल में एक कील गाड़ते हैं तो आप उसे गड़ जाने पर हिलाडुला कर भी देख लेते हैं कि मज़बूत गड़ी है कि नहीं। परीक्षायें तो सर्वत्र आवश्यक हैं परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में तो और अधिक अपरिहार्य हैं जहाँ कि प्रायः सफलता क्षणिक अथवा धोके से भरी हुई होती है। पुत्र ने स्वीकार किया कि तब तक उसे मानसिक शान्ति या अडिग साहस नहीं प्राप्त हुए हैं। पिता ने कहा कि उसे 'सर्व संग परित्याग' सभी आसक्तियों से रहित हो जाना चाहिए। पुत्र पुनः जंगलों में गया और पूरे वर्ष भर वहाँ रहा। उसने इस बात की कोई चिन्ता नहीं की कि वह साये में है या धूप में है, सर्दी है अथवा गर्मी। जब वह लौटा तो तब भी पिता को सन्तोष नहीं हुआ; क्योंकि अब भी पुत्र ने एक मौलिक आसक्ति, अहंकार को नहीं त्यागा था। अभी तक वह 'मैं' और 'मेरे' के चक्कर में था। एक बार ज्योंही 'अहंकार' छूटता है कि तत्काल दो परिणाम, शोक से मुक्ति और आनंद की प्राप्ति, होते हैं।

इस एक महान लक्ष्य की प्राप्ति तक कदम-कदम आगे बढ़ाते जाओ। सत्कार्य, पूजा, जप, ध्यान, यही कदम हैं। प्रार्थना सदृश शुभ विचार, बढ़ा हुआ विवेक, दूसरों के साथ परोपकार के अनेक कृत्यों से सहायता प्राप्त होती है। शनैः शनैः परन्तु लगातार मन को निर्मल बनाते रहो, बुद्धि को प्रखर बनाओ, इन्द्रियों को पवित्र बनाओ और प्रभु कृपा प्राप्त करो। प्रेम के कारण ही तो आप यहां आये हैं, उसी प्रेम में अभिवृद्धि करो और प्रेम के साथ ही संसार में व्यवहार करो। यहां आये हुये बीमार और वृद्धजनों की विशेष सावधानी रक्खो। उन्हें साये में रहने

का अवसर दो, सभास्थल में भी। आपमें जो लोग तरुण और तगड़े हैं वे ऐसा अवश्य करें। आपके लिये अनुशासन के जो नियम निर्धारित हैं उनका पालन करो और ११ बजे पूर्वान्ह में अभिषेकम् और रात्रि में 'लिंगोद्भव' का दर्शन कर लाभान्वित होओ।

प्रशान्ति निलयम्
शिवरात्रि १८-२-६६

—०—

३०

मानव को प्रसन्न करना भगवान् को प्रसन्न करना है

आप आकाश में एक गूंजते हुये वायुयान को देखते हो; कोई आप से कहता है कि इसे एक यानचालक उड़ा रहा है परन्तु, चूंकि तुम यानचालक को अपनी जगह से देख नहीं पाते हो, तुम उक्त कथन पर अविश्वास भी प्रकट कर सकते हो। क्या यह सही है ? यानचालक को देखने के लिये तो आपको यान के अन्दर जाकर देखना पड़ेगा। तुम उसके अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकते हो, चाहे जमीन पर भले ही खड़े हो। आपको अनुमान करना होगा कि यान में यानचालक अवश्य ही होगा। इसी प्रकार इस विश्व को देखकर तुम्हें भगवान् के अस्तित्व का अनुमान करना होगा, उसके होने से इनकार इस आधार पर नहीं कर सकते हो कि तुम भगवान् को देख नहीं पाते हो। लोग ईश्वर में विश्वास नहीं करते हैं; परन्तु वे अख़बारों और उनमें छपी खबरों को, चाहे उन्होंने उन स्थानों, व्यक्तियों और घटनाओं को कभी न देखा हो, विश्वास कर लेते हैं जो कुछ उनके कान सुन पाते हैं, आंख देख पाती हैं या मस्तिष्क सोच पाता है, अनुभव करता है, उस सब पर विश्वास कर लेते हैं। एक अंधा, अंधकार में ही रहता है और जब वह प्रकाश के अस्तित्व से इनकार करता है तो हमें उसकी इनकारी पर कुछ ध्यान नहीं देना है।

यदि मानव ईश्वर को खोजने का प्रयत्न न भी करता है तो भी वह शान्ति, सन्तोष सौख्यम् और स्वातन्त्र्य, को प्राप्त कर सकता है।

वह तो इनको भी नहीं खोजता है। न वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार इन्हें प्राप्त किया जा सकता है। लट्टू लगातार घूमता रहता है, स्थिर नहीं होता है, मनुष्य भी चक्कर में निरंतर ही भ्रमित रहता है और इस चक्कर से उसे कोई विश्राम भी प्राप्त नहीं होता है। जो कुछ स्वल्प शान्ति और आनन्द वह पाता है वह भी अस्थाई होता है। एक क्षण को आनंद की अनुभूति होती भी है तो दूसरे ही क्षण वह नहीं रहती है। कष्ट इस प्रसन्नता का अंत कर देता है। आनंद या प्रसन्नता कष्ट की अनुपस्थिति मात्र होती है। यदि मनुष्य अपने लिये अथवा दूसरों के लिये शान्ति और प्रसन्नता अर्जित नहीं कर पाता है तो इतने वर्षों तक जीते रहने, बोरों गेहूं और चावल प्रतिवर्ष खाते हुये पृथ्वी का भार बना रहने से क्या लाभ है? पेट्रोमैक्स-लालटेन से तभी प्रकाश तीव्रता से प्राप्त होता है जब उसमें शीघ्र गति से, वेगपूर्वक हवा भरी जाती है। तुम्हारा प्रकाश भी मध्यम पड़ गया है और लगभग बुझने को है। इसमें शीघ्रता से वेग से हवा भरो अर्थात् साधना में लग जाओ; अपने मस्तिष्क को आलोकित करो और जो तुम्हारे निकट आवें उन्हें भी प्रकाश दे सको।

तुमने तो उतनी छोटी साधना को भी त्याग दिया है जो कि शिव-रात्रि-पर्व को मनाने के लिये अपेक्षित है। प्राचीन काल में तो लोग आज के दिन अपनी जिह्वा पर एक बूंद पानी भी नहीं आने देते थे। आज वह कठोरता लुप्त हो गयी है। वे लोग रात्रि-जागरण किया करते थे, पूरी रात भर "ऊं नमः शिवाय" बिना रुके जपते रहते थे। अब तो शिवजी का नाम ही लोगों की जिह्वा पर रह गया है। ईश्वर का नाम आते ही लोग तर्क और विवाद करने लगते हैं। वे लोग सोचते हैं कि वे इस कार्य के लिये पर्याप्त उच्चता प्राप्त कर चुके हैं। उस दिव्य तत्त्व को तो अनवरत शास्त्राध्ययन करके चिन्ह संकेत विशिष्टता और उत्तमता को ज्ञात करके ही पहचाना जा सकता है। इस विषय

का पृथक ही एक विज्ञान है। चूंकि आपके मुंह में जिह्वा है और उसे आप कतरनी की तरह चलाने में भी समर्थ हैं इसीलिये ईश्वर के मार्ग पर लांछन मत लगाओ, न धार्मिक पुरुषों की निन्दा करो। निस्सन्देह यदि किसी को ईश्वर के अस्तित्व से इनकार करने से ही शोक, कष्ट से छुटकारा मिलता हो और शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो सके तो वह प्रयत्न कर सकता है। परन्तु नास्तिको और धर्म के विरोधियों को भी तो शोक और दुःख होता है। नास्तिकता, आस्तिकता से अधिक लाभप्रद नहीं है। नास्तिक तो सिर का बोझा उतार कर कंधों पर रख लेता है और सिर के अस्तित्व से ही इनकार कर देता है बोझा तो ढोना ही पड़ता है, शायद अधिक कष्ट के साथ।

एक तूफानी झील में एक नौका में राजा, मंत्री और एक नौकर यात्रा कर रहे थे। चारों ओर पानी ही पानी देखकर नौकर भय से आतंकित हो गया। उसकी हड़बड़ी से नाव के उलट जाने की भी आशंका होने लगी। मंत्री ने बलात् नौकर को पकड़ कर झील के पानी में कई डुबकियां दी नौकर इस बीच खूब चिल्लाता रोता रहा। जब वह फिर "नाव, नाव" चिल्लाया तो पुनः उसे खींच कर नाव पर लाया गया। जब वह नाव पर पहुँचा, वह जान गया था कि जिस पानी से वह इतना भयभीत है उससे नाव पर सुरक्षित है। इसी प्रकार हम लोग भी भगवान् में निवास करते हैं, फिर भी संसाररूपी भवसागर से भयभीत हैं। तो जब हम सांसारिक कष्टों को भोगते हैं, तभी ईश्वर में विश्वास करने की सुरक्षा और निरापद होने का अनुभव करते हैं।

आंख जो केवल एक इंच लम्बी होती है करोड़ों मील दूर आकाश के तारों को देखती है; परन्तु क्या वास्तव में देखने की क्रिया आंख सम्पन्न करती है ? क्या आंख स्वयं को देख सकती है ? नहीं। तुम्हें दूसरों को जानने की क्रिया सीखना चाहिये और इससे भी अधिक अपने

को जानना आवश्यक है। तुम दूसरों के विषय में जानने के लिये अत्यंत उत्सुक रहते हो यहां तक कि यदि रेलयात्रा में ही कोई साधारण सा परिचय हो गया तो आप उन लोगों के पारिवारिक मामलों, कारबार सम्पत्ति, सन्तति इत्यादि के विषय में विस्तार से पूछने लगते हो; जबकि आपको अपनी वंश परम्परा, सम्पत्ति, उत्तराधिकार और स्थिति के विषय में कोई ज्ञान नहीं होता है। आप मनुज, अर्थात् मनु की संतान हो; उन्हीं मनु की जिन्होंने आपके लिए मनुस्मृति, मानवीय आचार का नीतिशास्त्र, रचा है, वही आपका उत्तराधिकार है चूंकि भगवान् का आपके हृदय में निवास है, आप भी दिव्य हैं। इस महान सम्पत्ति को भूलकर आप गरीब बने दुर्बलता का नाटक कर रहे हो। अपनी आंखों को स्वयं देखने के लिये एक दर्पण की आवश्यकता होती है? अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये आपको एक गुरु की आवश्यकता है।

जो भगवान के अस्तित्व से इनकार करते हैं वे स्वयं अपने और अपनी सम्पत्ति से इनकार करते हैं। किसी न किसी रूप में, सभी के हृदयों में प्रेम होता है; चाहे वह बच्चों के प्रति, निर्धनों के प्रति, अपने कार्य अथवा लक्ष्य के प्रति ही क्यों न हो। वह प्रेम ही ईश्वर है; उनमें भागवत्, दिव्यता की चिनगारी है। चाहे कितनी ही स्वल्प अथवा अस्थाई मात्रा में हो वह आनन्द ही भगवान् की एक किरण या चिनगारी है। लोगों में शान्ति, वैराग्य और सहानुभूति का होना ही भगवान् का प्रतिबिम्ब समझना चाहिये जो कि उनके मन और हृदय रूपी दर्पण से प्रतिबिम्बित होता है। यह सब मानसिक सद्गुण, सदाचार के प्रति आदरभाव रखने से ही प्राप्त होते हैं। यदि वे किसी असहाय अवस्था के कारण प्रकट होते हैं, जैसा कि तेनाली रामकृष्ण की एक कहानी में एक चोर में हुए थे, तो वे अच्छे नहीं कहे जा सकते।

उस चोर ने महान शान्ति, सहिष्णुता, स्थिर साहस का प्रदर्शन किया था। यह देख कर कि रात्रि में एक चोर घुस कर चचेंड़ें की झाड़ी के पीछे छिप गया है, रामकृष्ण ने अपनी पत्नी को अपने सामने कुयें के पास बुलाया और रस्सी, बाल्टी कुयें से पानी खींचने के लिये मंगवाई। पत्नी ने पानी की बाल्टी भर कर पति को देदी। वह चोर छिपे-छिपे उन दम्पति की गतिविधि देखता रहा और अंधेरे में इस आशा से छिपा रहा कि शीघ्र ही दम्पति घर के अन्दर चले जावेंगे। उसने योजना बनायी कि वाद में घुस कर लूट का माल इकट्ठा कर लेगा और पकड़ा भी न जावेगा। इसी बीच में रामकृष्ण ने अपने गले में कुछ अड़चन सी महसूस करने का अभिनय किया और पानी मुंह में भर कर उसी चचेंड़े की झाड़ी के ऊपर गलगला कर कुल्ले करके जोर-जोर से ठीक उसी जगह जहां चोर छिपा हुआ था, थूकने लगा। वह पानी चोर के मुंह पर ही पड़ता रहा, यही तो रामकृष्ण भी चाहते थे। बेचारा भाग भी नहीं सकता था, विरोध भी नहीं कर सकता था, वह हिलने-डुलने में भी भय खाता था। उसने बड़े धैर्य का परिचय दिया। क्या आप ऐसे धैर्य को सद्गुण कह सकते हैं? क्या इसके लिये आप चोर की सराहना करते हैं? वह तो भय के कारण डटा रहा न कि किसी विश्वास के कारण जमा हुआ था। अडिग विश्वासपूर्वक जब आत्मसंयम का जहां प्रदर्शन होता है तो उसकी सराहना की जाती है।

मोह रूपी व्याधि, जिसने आपके विवेक को जड़ कर दिया है, आपके जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों का मान घटा दिया है, आपकी दृष्टि धूमिल करके आपके दृष्टिकोण को ही विकृत करा दिया है, गीता अध्ययन से आप इस अपनी व्याधि से मुक्ति पा सकते हैं। परन्तु इस औषधि का लाभ उठाने के लिये पहले अपने मन में, अर्जुन की भांति "विषाद" भी तो उत्पन्न होना चाहिये। जैसा 'प्रपत्ति' शरणागत होने का भाव अर्जुन में था, जिस वैराग्य को उसने अपने में विकसित किया

था, जैसी एकाग्रता अर्जुन में थी वैसी ही आप में भी होनी चाहिये। वह भिक्षाटन करके भी पेट पालने को तैयार हो गया था परन्तु इतने सब असंख्य लोगों को मारकर राजसिंहासन नहीं चाहता था जिसमें अनेक संबंधी, जातिभाई, गुरु और पूज्य लोग भी सम्मिलित हों। तीखी आकांक्षा उत्पन्न करो गीता आपके मोह को नष्ट कर देगी।

आप अपनी आध्यात्मिक स्थिति स्वयं खोज कर समझो, कि आप किस कक्षा में प्रवेश पाने योग्य हो फिर उस कक्षा का पाठ्यक्रम पूरा कर अगली कक्षा में जाओ। डटकर, जमकर, शक्ति भर प्रयास करो आपको प्रभुकृपा अवश्य प्राप्त होगी। न तो सौदाबाजी करो, न निराश होओ। एक समय में एक कदम बढ़ जाना पर्याप्त होता है, परन्तु वह ही लक्ष्य के समीप पहुँचाने वाला; न कि दूर हटाने वाला हो। धन, विद्वत्ता और हैसियत के घमंड से बचे रहना; इसी से अहंकार की वृद्धि होती है। परछिद्रान्वेषण मत करो, अपने दोषों को खोजो। दूसरों को समृद्ध देख कर प्रसन्न होओ, अपनी प्रसन्नता में अन्य लोगों को भी भागीदार बनाओ।

आप विद्वत्ता की सीढ़ी पर चाहे जितना ऊंचा चढ़ जाओ परन्तु भारतीय संस्कृति की जड़ें आपके हृदय में सूखने न पावें। एक महान पंडित थे जो सनातन धर्म के मर्मज्ञ थे और इसके नियमों पर अच्छी तरह आचरण भी करते थे। उन्होंने अपने पुत्र को समुद्र पार उच्च शिक्षा के लिये भेजा। वह अपने पुत्र को अपने कुलदेवता के मंदिर में ले गये जो उनके परिवार का इष्ट थीं,—कालीमाता। उनके नेत्र कृतज्ञता से अश्रुपूर्ण थे। उन्होंने कालीमाता के पवित्र प्रसाद को पुत्र के मस्तक पर, जबकि वह स्टीमर पर सवार हो रहा था, रखा। वह पुत्र को प्रायः अपने पत्र में यही लिखा करते थे कि वह जिस विदेश में गया है वहां भी अपनी दैनिक पूजा का क्रम पूर्ववत चलाता रहे।

उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनका पुत्र प्रातः सायं संध्योपासन तथा स्वाध्याय जारी रक्खेगा। कुछ वर्षों के बाद जब लड़का वायुयान से विदेशी वेश-भूषा में लौटा तब भी पिता की यही धारणा थी कि उनका पुत्र हृदय से पूर्णतया भारतीय और सनातन धर्म में निष्ठा रखने वाला बना है। सबसे पहले वे उसे कालीमाता के मन्दिर में ले गये क्योंकि उन्हें विश्वास था कि देवी के वरदान से ही पुत्र सकुशल, स्वस्थ लौट सका है। उन्होंने स्तोत्र पाठ किया और पुत्र से भी प्रार्थना करने को कहा। उन्हें बहुत वेदना हुयी जब उन्होंने पुत्र को यह कहते सुना कि "श्रीमती शिवा आप कैसी हैं (Hallo, Mrs. Siva How do you do?)" उस वृद्ध पंडित का यह सुनकर, कि उनके पुत्र ने अपने आपको सनातन धर्म से पूर्णतया पृथक कर लिया है, हृदय ही विदीर्ण हो गया।

सत्य, धर्म, शान्ति और प्रेम सनातन धर्म के मौलिक सूत्र हैं। ज्येष्ठ पांडव धर्मराज, सत्य पर चलने वाले थे। परन्तु कुरुक्षेत्र के युद्ध में उन्हें भी एक सफेद झूठ कहने के लिए फुसला लिया गया। वह एक प्रच्छन्न झूठ ही था जिसे उन्होंने क्षम्य समझा होगा यद्यपि वह शत प्रति शत सत्य तो नहीं ही था। शत्रुपक्ष के प्रधान सेनापति और धनुर्विद्या के आचार्य द्रोण से वह किसी न किसी प्रकार धनुष रखवा देना चाहते थे इसीलिए एक तिकड़म खेली गई। उन्होंने एक हाथी का नाम गुरुपुत्र अश्वत्थामा के नाम पर रख कर उस हाथी को भीमसेन के हाथों मरवा दिया और द्रोण को सुनाते हुए घोषित किया गया कि "अश्वत्थामा मारा गया—हाथी" अंतिम शब्द धीमे स्वर से कहा भी गया और कोलाहल और हर्षोल्लास से दबा दिया गया। वैसे एक प्रकार से यह बात सत्य थी भी। परन्तु अंतिम शब्द कहने से पूर्व ही ढोल, बिगुल, बजाकर इतना कोलाहल किया गया कि द्रोण को अंतिम शब्द सुनाई ही नहीं पड़ा। स्वाभाविक था कि उन्होंने यही समझा कि उनका इकलौता पुत्र युद्ध में शत्रु के द्वारा वीरगति को प्राप्त हो गया है। द्रोण

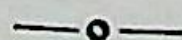
को अपार शोक हुआ। अब उनके हाथों में धनुषवाण क्षमतापूर्वक धारण करने और प्रयोग करने की शक्ति ही न रही। उन्हें पराभूत करके वध कर दिया गया। इसी एक पाप के लिए, जिसे धर्मराज ने अपने जीवन में जानबूझ कर किया था, धर्मराज को भी कुछ क्षणों तक नरक में जाना पड़ा; ऐसा पुराणों में लिखा है। सत्य से एक बाल भर भी विचलित होने का यह परिणाम होता है।

आगे की घटनाओं को भी सुनो। मृत्योपरांत जब धर्मराज को परलोक के देवदूत नरक में उनके कुछ काल वहां रहने के लिए ले गए तो नरक की कोठरियों में एकाएक अभूतपूर्व विचित्र शान्ति, आनन्द की शीतल और सुगंधित वायु के रोमांचकारी झोंके अनुभव किए गए और वहां के निवासियों को लगा कि वैसा आनंद और उत्साह तो पहले कभी अनुभव में आया ही न था। एक धर्माचरण करने वाली पवित्र आत्मा की उपस्थिति का यातना और भय के उस क्षेत्र में पहुँच जाने का यह प्रभाव था। अभागे पापी लोग धर्मराज के सान्निध्य में पहुँच कर उनके दर्शन मात्र पाकर ही कुछ आराम, सान्त्वना और शान्ति लाभ करना चाहते थे। उनके नरक-निवास की अवधि समाप्त होने पर जब धर्मराज को स्वर्ग की ओर मुड़ने के लिए कहा गया तो नरक के निवासियों ने एक स्वर से धर्मराज से वहीं और ठहरने का अनुरोध किया; वे लोग पुनः उसी अग्नि और दुखदायी स्थिति में वापस जाने के अनिच्छुक थे। उनके करुण चीत्कार को सुनकर धर्मराज ने घोषणा की कि वे दुखियों और पापियों के लिए अपने समस्त अर्जित पुण्य का उत्सर्ग करते हैं और उन्हीं के साथ वहीं ठहरने के इच्छुक हैं। इस महान त्याग से न केवल यातना भोगने वालों को लाभ हुआ बल्कि धर्मराज के स्वर्ग-निवास की अवधि में और वृद्धि हो गई और स्वर्ग में उन्हें पहले की अपेक्षा अधिक सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ। जीवन का सर्वोत्तम उपयोग तो कष्टों को

दूर करने, संकटों में सहायक होने और शान्ति तथा आनंद की वृद्धि करने में है।

आपकी तथाकथित "भगवान की सेवा" से मानव की सेवा कहीं अधिक मूल्यवान होती है। भगवान् को आपकी सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को आनन्द प्रदान करने से भगवान् भी सन्तुष्ट और प्रसन्न होते हैं। पुरुषसूक्त में भगवान् को "सहस्र शीर्षा, पुरुष सहस्राक्ष और सहस्रपाद कह कर गाया गया है। तात्पर्य यह कि सभी प्राणियों के रूप में जिनके मस्तक, नेत्र और हाथ हैं, वही विद्यमान है। वे उससे पृथक कुछ और नहीं हैं। हृदय एक ही है। वही सभी लोगों में रक्त संचालन का कार्य करता है जो सभी मस्तकों, नेत्रों और हाथों में पहुंचता है। प्रत्येक प्राणी को एक अंग समझो। जब आप अंगों की सेवा करते हैं तो व्यक्ति की ही सेवा होती है। जब आप मनुष्य की सेवा करते हैं, तो आप ईश्वर की ही सेवा करते हैं।

प्रशान्ति निलयम्
शिवरात्रि १९-२-६६



३१

प्रेम के स्रोत को प्रेम करो

कल, परसों आपको यहां आनन्दरूपी अमृत के पान के अवसर प्राप्त हुए थे। मुझे प्रसन्नता है कि आज ! पुन: आपको धार्मिक प्रवचनों से प्रेरित होने का अवसर प्राप्त हुआ है। आप लोग चन्द्रोदय के अवसर पर उठने वाली सागर की लहरों के समान हो। इस आनन्द का वास्तविक कारण यही है कि आप लोगों के हृदय में आनन्द के स्रोत के प्रति प्रेम है; क्योंकि मैं आपके दमकते हुये चेहरों पर इसे प्रतिबिम्बित पाता हूं। इसी प्रेम के कारण ही तो मेरा यहां आना, और सनातन धर्म की पुनर्स्थापना का संकल्प हुआ है। यह तो भली प्रकार आप समझ ही सकते हैं।

परन्तु इस आनन्द को लाभदायक कार्यों की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए। जब हम अंधे हो जाते हैं तभी आंख का महत्व और उपयोगिता भली प्रकार से ज्ञात हो पाती है। जल का महत्व तभी ज्ञात होता है जब कि उसकी बड़ी कमी होती है; न कि तब जब सभी टोंटियाँ, बाल्टियों में जल भरने के लिए खुली हों। जब नदियाँ और तालाब सूख जाते हैं तो लोग चुल्लू भर जल के लिए चीख-पुकार करते हैं। ऐसा ही इस आनन्द के विषय में भी। इसे एकत्र कर लो, भंडार में भर लो, इसकी वृद्धि करो और जितना भी तुमसे हो सके इसे अन्य सूखे हृदयों तक पहुँचाकर सिंचित कर दो।

प्राचीन काल में शंकर ने यह विश्वास जमाने का प्रयत्न किया था कि भगवान् सर्व शक्तिमान् है। उन्होंने मनुष्यों में व्याप्त दुर्गुणों और

कुप्रवृत्तियों के चक्कर को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया था जिससे कि मनुष्य अपने वास्तविक रूप को जाने और उस दिशा में आगे बढ़े ।

जब मानव को उस तत्त्व की एक झलक भी प्राप्त हो जाती है तो वह अहंकार, घमंड और निराशा से रहित हो जाता है; तब उसे अपनी निन्दा स्तुति से दुख-सुख नहीं होता है । उसे दृढ़ और सुरक्षित स्थिति प्राप्त हो जाती है जैसे कि पर्वत का एक उन्नत शिखर होता है जिसे कोई तूफान या झंझावात टस से मस नहीं कर सकता । वह तो सिनेमा के पर्दे की तरह हो जाता है कि जिस पर अग्नि, आंधी, पानी तथा अन्य भीषण दृश्य अंकित होते रहते हैं परन्तु पर्दे पर कोई भी स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है, दर्शकों को चाहे कुछ भी दीखे या अनुभव हो । बुद्ध ने एक बार बुद्धगया में कहा था, "शुभ और अशुभ, निन्दा स्तुति, यश-अपयश, तो दो चरण के समान हैं, किसी एक के बगैर व्यक्ति चल फिर नहीं सकता । जीवन की क्रिया में दोनों अपरिहार्य हैं । भोजन और विष्ठा दोनों ही मनुष्य के अन्दर होते हैं । धमनी और शिरायें भी होती हैं । जैसे कि एक नगर के अन्दर पेय जल को लाने तथा गंदे पानी को बाहर निकालने के लिए नल और नालियां होती हैं ।" एक नास्तिक बुद्ध के पास आया और उसने बड़ी कर्कश भाषा में गालियाँ बकते हुए, दोषा-रोपण करते हुए निकृष्टतम व्यवहार का प्रदर्शन बुद्ध और उनके साथियों के प्रति किया । बुद्ध उसे सुनते रहे मगर कहा कुछ भी नहीं । बेचारे की जिह्वा की शक्ति क्षीण हो गई वह क्रोध से पागल हो गया । वह बड़ी अशान्ति से उनके सामने से टल गया । जब बुद्ध से उनकी चुप्पी का कारण पूछा गया तो उन्होंने बताया कि, "यदि कोई आपका अतिथि होने के लिए द्वार पर आता है तो आपकी ओर से लघुतम प्रति-क्रिया भी, जैसे "अच्छा" 'आप कहां से आये' इतना बोलना भी उसे आपके घर में टिकने के लिए पर्याप्त हो जाता है । परन्तु यदि उसे कोई

जवाब नहीं मिलता है, तो उसे यही लगता है कि इस घर में तो कोई है ही नहीं और वह टिकने की आशा छोड़ कर अन्यत्र स्थान खोजता है, बिना किसी और अगली कार्यवाही के वह आगे चला जाता है।"

कुछ लोग जिस प्रकार से मेरी निन्दा करते हैं उसे सुनकर आप में से अनेकों को बड़ा बुरा लगता है। बहुत से लोग मुझसे आग्रह करते हैं कि कुछ न कुछ तो प्रतिकार करना ही चाहिए। परन्तु मैं, उन्हें रोके हुए हूं क्योंकि निन्दा-स्तुति से निबटने का यही सर्वोत्तम ढंग है। महासागर में न तो बाढ़ आती है और न वह कभी सूखता ही है। वह सदा ही, शानदार पूर्ण और विरक्त सा रहता है।

मैं आपको परोपकार करने की शिक्षा देता रहा हूं, दूसरों को आनंदित करो और उन्हें सुखपूर्वक रहने में सहायता करो। इसे ही सत्कर्म कहते हैं। यह अखबार जो केवल असत्य पर ही जीवित है, निम्नकोटि के लोगों से कुछ पैसा बटोरने में समर्थ होते हैं। वह भी सत्कर्म है; फिर लोग तो यह जानते हुए कि इस प्रकार का असत्य और अनुचित प्रलाप उन्हीं के मस्तिष्क की उपज है; उन्हें इसी प्रकार के अभ्यास में प्रसन्नता होती है। उन्हें ऐसा करने से मत रोको क्योंकि आप एक नया पैसा बिना खर्च किए ही उन्हें इतनी प्रसन्नता का अवसर तो दे रहे हैं। उन्हें अपनी कीचड़ में ही लोटने दो। आनन्द मनुष्य अपने मन के अन्दर से ही प्राप्त करता है। जब मन ही गन्दा है तो इसे गंदगी से ही प्रसन्नता प्राप्त होती है। जब यह पवित्र होता है तो शुद्धता सत्य से इसे आनन्द प्राप्त होता है।

हिरण्यकश्यप ने घोषित किया था कि भगवान् कहीं है ही नहीं। प्रह्लाद ने कहा कि ईश्वर सर्वत्र है और यहां भी है। अन्ततोगत्वा पिता

को ही विनष्ट और अपमानित होना पड़ा। पुत्र की गणना सर्वश्रेष्ठ भक्तों में आज तक होती है। पुत्र जानता था कि इस विश्व रूप में दृश्यमान यह सब ब्रह्म ही है। एक तरुण बहू जब नई नई व्याह कर ससुराल में आई और परिवार के लोगों को भोजन परोसने लगी। भोजन करने वालों ने घी, मक्खन तक्र की मांग की, बहू ने सबकी मांग का सार समझ कर दूध परोस दिया क्योंकि उसमें यह सभी कुछ वस्तुएं थीं।

जब आप भगवान् के आनन्द में मग्न होते हैं तो आप सभी प्रकार के निचले आनन्दों के भी स्वामी होते हो। जब समुद्र में गोता लगाते हो तो मोती अवश्य खोजना चाहिए; यदि कल्पवृक्ष के नीचे पहुँच जाओ तो सर्वोत्कृष्ट वरदान की याचना करो। जब कि कुछ और अधिक प्रयास से महानतम मिल सकता है तो निम्नतम और क्षुद्र पदार्थों की कामना मत करो। मनुष्य के अन्दर स्वाभाविक अभिलाषा महान, असीम और सर्वोच्च से एकाकार होने की होती है; क्योंकि उसके हृदय में उसी का निवास है। यह तो नवजात बछड़े की गाय के लिए पुकार है। प्रत्येक बछड़ा अपनी मां को जानता है, पा लेता है। चाहे आप हजारों गायों और बछड़ों के झुंड में उसे छोड़ दें। इसी प्रकार आपको भी अपने आधार तत्व आत्मा को पहचानना चाहिए। जिस भगवान् से आप उत्पन्न हुए हो, उसी में आपको अपना आधार प्राप्त हो सकेगा।

जब आध्यात्मिक मार्ग पर चल ही पड़े तो आप में एक तत्परता की भावना होनी चाहिए। क्योंकि मृत्यु प्रतिक्षण अपनी घात में उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में आपके पीछे लगी हुई है। गंगा के दूसरे तट से नाव की वापसी की प्रतीक्षा में सैकड़ों व्यक्ति किनारे पर थे। नाव के आते ही वे सब हड़बड़ा कर नाव में सवार हो गये। जब मल्लाह नाव

चला रहा था, वे लोग स्थान और सुविधा के लिए आपस में ही और मल्लाह से लड़ने-झगड़ने और हाथापायी करने लगे। वे दलबन्दी में डूबे हुए थे, उतराई के पैसों के संबंध में वापसी की रेजगारी, कुछ खिसकने और जगह देने की सौदेबाजी में भूल गये कि उन पर क्या संकट आने वाला है जिसमें उनके जीवन के ही लिए संकट है। एक समझदार व्यक्ति ने उन लोगों से कहा, "भाइयो दस मिनट में ही हम दृढ़ और सूखी भूमि पर पहुँचने वाले हैं, तब तक के लिए चुपचाप रहो और इन छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा न करके भगवान् से सुरक्षित पार पहुँचने की प्रार्थना करो।" मानवता की आज यही दुखदायी दशा है। मृत्यु के किनारे पर खड़े हुए लोग अपने बहुमूल्य क्षणों को नष्ट करते हुए छूंछे आनन्द में बेसुध होकर मस्त हैं।

दोष यही है कि वे शरीर को ही अपनी आत्मा मान बैठे हैं। शरीर तो आत्मा के निवास का एक स्थान, यान या खोल मात्र है। आप अपने को इनके भीतर का निवासी समझ लो, अधिकांश शोक, दुख और पीड़ा से छुटकारा पा जाओगे। आप पर अहंकार की पकड़ शिथिल हो जावेगी, तब आप दूसरों से अधिक आत्मीयता का अनुभव कर सकोगे, वे लोग अन्य मकानों में रहने वाले प्रिय पड़ोसियों की भांति लगने लगेंगे। एक बार विवेकानंद विदेश में पर्यटन करते हुए एक नगर में पहुँचे। वहाँ के निवासियों ने उनको एक महान संत, विद्वान के रूप में पहचाना और लगातार तीन दिन तक अबाध रूप से दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहा। किसी ने साधना की सूक्ष्म बारीकियों पर प्रश्न किये, अनेक लोगों ने तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र पर विवाद किया। कुछ लोगों ने व्याकरण, नीति शास्त्र सम्बन्धी शास्त्रीय विषयों की चर्चा की। छात्रों ने उनसे राष्ट्रीय एकता और उसको प्राप्त करने पर उनके सुझाव जानना चाहा। परन्तु वहां एक वृद्धा भी थी जो विवेकानन्द को बड़े चाव से देख रही थी, और अभी तक उनसे

एक शब्द भी नहीं बोली थी। वह भी वहां तीनों दिनों से थी जो साधु के निकट पहुँचने की प्रतीक्षा में थी। जब वह वहाँ अन्त में पहुँची तो उसने पूछा, "पुत्र ! क्या मैं तुम्हारे लिये कुछ खाने को लाऊं ? इन लोगों ने तो तुम्हें खाने को कुछ दिया नहीं, और न इतना अवसर ही दिया कि तुम नगर में जाकर कुछ मांग खाते। बताओ, मैं अभी भाग कर तुम्हें खाने-पीने को कुछ ले आती हूँ"। उस मां के हृदय की दयालुता पर विवेकानन्द अत्यन्त प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा 'मां, तुम वास्तव में भाग्यवान् हो। केवल विद्वत्ता या केवल सेवा की इच्छा रखने से क्या लाभ ? सहानुभूति, सेवा और अपने को व्यक्ति के पड़ोसी की स्थिति में रखकर उसके कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करना इसी से प्रभु कृपा प्राप्त होती है। प्रेम और सेवाभाव से मन अहंकार रहित होकर शुद्ध हो जाता है। तब उसमें भगवान् का प्रतिबिम्ब झलकने लगता है।"

एक मनुष्य ने दूसरे से अगले दिन प्रातः सूर्योदय के समय वापस करने के वादे पर कुछ धन उधार लिया। परन्तु दूसरे व्यक्ति ने पूछा कि "आपको कैसे निश्चय है कि कल सूर्य उदय होवेगा ?" इस पर पहले ने उत्तर दिया कि "परन्तु इसका बिश्वास आपको कैसे है कि कल मैं या आप दोनों ही रुपये का भुगतान देने और लेने को जीवित रहेंगे ही ?" जीवन के सम्बन्ध में सभी कुछ अनिश्चित होता है। इसलिए इसी क्षण से आगे बढ़ो, अपने लक्ष्य की ओर दो चार कदम तो चलो, जितना भी हो सके। आपका प्रयत्न भगवान् को प्रेरित कर सकता है कि वे आपको अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ आयु और बढ़ा दें।

भगवान् के प्रति प्रेम को इतना संकुचित भाव में न लो कि आप अन्य नाम रूपों से घृणा करें अथवा धर्मान्धता के शिकार हो जावें। इस

प्रकार की असाध्य बीमारी से तो आजकल अनेक ख्याति प्राप्त व्यक्ति भी पीड़ित हैं। परन्तु तुम तो इससे बचो। विश्वास करो, वे सब लोग जो भगवान् की आराधना करते हैं और पापों से डरते है, आपके बन्धु हैं, वे आपके निकट आत्मीयजन हैं। उनकी भाषा, बाहरी वेशभूषा, शरीर का वर्ण अथवा अपनी पूजा-पद्धति में भिन्नता महत्त्वहीन और नगण्य हैं। शकर के खिलौनों का मूल्य शकर के मूल्य के आधार पर होता है न कि खिलौनों की आकृति के आधार पर निश्चित होता है। यदि आपके व्रत और कठोर उपवासों के कारण आपका शरीर छूट जाता है तो भगवान् को लोग दोष देंगे। इस प्रकार जिस भगवान् की आप पूजा करते हैं उसी पर लोगों की निन्दा को आप ला थोपते हैं। वे लोग आकर तुमसे कहेंगे "यह क्या, साई बाबा की पूजा प्रारम्भ करने से पूर्व तो आप अच्छे खासे हट्टे-कट्टे थे, अब अपनी दशा तो देखो! आप कितने दुर्बल और क्षीण काय हो गये हो। अब तो आप से चला फिरा भी नहीं जाता"। इसी तरंग में उनका वार्तालाप मेरे विरुद्ध चलता रहेगा।

•

किसी कार्य की अति न करो, मध्यमार्गी और बुद्धिमत्ता का रास्ता पकड़ो। आप मुझे 'सर्वभूतान्तरात्मा', 'सर्वव्यापी' कहते हैं और जब आपको यहाँ नवरात्रि या शिवरात्रि पर आने से रोका जाता है तो आप रुष्ट और क्रोधित होते हैं। जो विश्वास आपको 'सर्वव्यापक' में है उसे न झुठलाओ। विशेष रूप से स्त्रियों को तो अपने पति और गुरुजनों की आज्ञाकारिणी होना ही चाहिए। पति या बच्चे आपकी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक हैं ऐसी धारणा मत रक्खो। आप इनमें से किसी के भी प्रति रंचमात्र भी घृणा की भावना न रक्खो। पति को भगवान् मान कर पूजा करो। बच्चों की सेवा उसी भाव से करो जैसे यशोदा कृष्ण की सेवा करती थीं। जिस प्रभु की उपासना आप करती हो उसे इन लोगों में देखो।

सम्राट् कृष्ण देवराय के शासन काल में विजयानगरम् में एक छूत की बीमारी का प्रकोप हुआ और शीघ्र ही उसने विकराल रूप धारण कर लिया। राजा को सूचना दी गयी कि यह बीमारी चूहों से फैलती है। राज्य की ओर से प्रत्येक घर में एक-एक बिल्ली दी गयी और "बिल्ली-भत्ता" भी दिये जाने की आज्ञा जारी की गयी। परन्तु चूहों की संख्या में कोई कमी दृष्टिगोचर नहीं हुई। बाद में पता चला कि बिल्ली-भत्ते का दुरुपयोग घर-घर किया गया। बिल्लियाँ इतनी दुर्बल हो गयीं कि वे अब चूहों पर झपट्टा मारने में ही अशक्त हो गयीं। और न चूहों को मारकर खा सकीं। बिल्लियों को अवश्य खिलाया जाना चाहिए जिससे कि वे चूहों को पकड़ कर खा सकें। इसी प्रकार शरीर को भी स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रखना है जिससे कि कुप्रवृत्तियों, इन्द्रिय भोगेच्छाओं और दुष्ट विचारों को दृढ़तापूर्वक दबा कर वशीभूत किया जा सके। जब तक यह नहीं किया जावेगा, मानव में भगवान् का उदय नहीं खिल सकेगा। कुछ वृक्षों के तनों के आसपास की मिट्टी को उलट-पुलट इसीलिए करना आवश्यक होता है कि जड़ें मजबूत हो जावें। शाखाओं को इसीलिए छांट दिया जाता है कि नये नये किल्लों में बड़े-बड़े पुष्प आवें और फल भी खूब लगें। इसीलिए मनुष्य को भी मन के आस-पास खुदाई करनी चाहिए, चरित्र को काट-छाँट कर ठीक किया जावे और जीवन रूपी वृक्ष की सेवा की जावे।

अपने प्रत्येक कार्य को भगवान् के चरणों में पूजा के पुष्प की तरह अर्पण करने की भावना का अभ्यास करो। प्रत्येक श्वाँस उसी को भेंट कर दो। विपत्तियों से मत घबराओ, उनको भी भगवान् की कृपा मान कर स्वीकार करो। यदि दुर्घटना में किसी का एक हाथ ही जाता रहता है; तो उसे भगवान् के प्रति यह सोचकर कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए कि उसका जीवन भगवान् ने बचा दिया है। जब आप यह मानते हैं कि बिना भगवान् के संकल्प के कुछ भी नहीं घटित

होता है; तो फिर जो भी घटित होता है उसका भी कुछ न कुछ महत्त्व अवश्य होता है। आप अपने घर में लगी किसी लता की उपेक्षा करते रहते हैं; परन्तु यदि कोई महात्मा आकर आपको बता दे कि यह जड़ी तो सर्प-दंश की अचूक दवा है तब तो अवश्य ही आप उस लता के चारों ओर सुरक्षा-पंक्ति (विरबाई) खड़ी कर देंगे और बच्चों को उसके समीप विनोद में फूल, पत्ती तोड़ने को भी नहीं जाने देंगे। जब आपको यह ज्ञान हो जावे कि भगवान् ही इस विश्व के मूल कारण, आदि-स्रोत हैं तो आपको फिर प्रत्येक से विनम्रता और सम्मान-पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। आपको यह मार्ग सुगमता से और शीघ्र ही भगवान् तक पहुँचा देगा।

प्रशान्ति निलयम्
शिवरात्रि २०-२-६६

—०—

३२

आन्तरिक-चक्र

इस महानगरी के आकर्षण और प्रतिकर्षणों को त्याग कर आप यहाँ पधारे हैं, इस क्रीड़ांगन में आध्यात्मिक पिपासा को शान्त करने, आत्मा की पुकार पर आये हैं। आपने यह प्रशंसनीय कार्य किया है क्योंकि जो लोग सांसारिक पचड़ों में संघर्ष करते हुए अन्धेरे में भटक रहे हैं उनके लिए आत्मा का प्रकाश ही एक अचूक मार्ग-दर्शक होता है। यह अन्धकार भ्रमोत्पादक भी होता है; इसमें कुछ का कुछ समझ पड़ता है। किसी वृक्ष का ठूंठ चोर प्रतीत होता है मानों वह आपकी घात में छिपा बैठा हो और आपकी थैली को लूट लेना चाहता हो। आत्मज्ञान ही वह प्रकाश है जिससे अन्धकार रूपी अज्ञान, सन्देह और नानात्व की प्रतीति, नष्ट हो जाते हैं। इस ज्ञान के अभाव में मनुष्य इस सांसारिक जंगल में खोया, खोया, भटकता रहता है। उसका व्यवहार ऐसा लगता है कि मानों वह अपने सम्बन्ध में सभी स्मृति खो बैठा है, मानों कि वह अपना नाम, धाम और गन्तव्य ही भूल गया है। बुद्धिमानों को तो उस पर दया ही लगती है।

अपने सम्बन्ध में यह ज्ञान कि वह तो आत्मा है, शरीर नहीं, बुद्धिमानी का चिह्न है उस आलोक की किरण के समान है जो कि अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर देता है। वही आत्मा आनन्द, शान्ति और प्रेम की मूर्ति है; परन्तु विना यह जाने, कि ये सब उसी के अन्तर में है, मनुष्य इनके लिए बाहर भटकता रहता है और निराशापूर्ण अन्वेषण से थक कर बैठ जाता है। जहाज़ के मस्तूल पर से उड़कर पक्षी

भटकने के पश्चात् पुनः उसी मस्तूल पर आश्रय लेने, अपने थके हुए पंखों को विश्राम देने लौटता है क्योंकि और कोई आश्रय स्थान ही नहीं प्राप्त होता है। इस ज्ञान से रहित होने पर आध्यात्मिक आनन्द और शान्ति प्राप्त करने का सारा प्रत्यत्न निष्फल रहता है। आपके भंडार में चावल, दाल, नमक, इमली, शाक, सब्जी सभी कुछ हो परन्तु एक अग्नि के अभाव में आप सुस्वादु भोजन नहीं पका सकते अतः एक प्रकार से उनका होना न होने के बराबर ही है। इसलिए जप, ध्यान, पूजा और कर्म काण्ड·········यह सब तब तक अप्रभावी रहते हैं जब तक कि अपनी आत्मा और उसकी भगवान् से तात्विक एकता की ज्ञानाग्नि से आप उपरोक्त क्रियाओं को दीप्त नहीं कर पाते हैं। सभी आनन्द और शान्ति का स्रोत वही परमात्मा है इसे ही जानना और चिन्तन करना चाहिए। बिना यह ज्ञान प्राप्त किये मानव-जीवन एक खोये हुए अवसर के समान बीत जाता है। उसे बार-बार इसी जंगल में आना और भटकना पड़ता है जब तक कि यहाँ से बाहर निकलने का मार्ग खोज न ले। इस बीच में खाये भोजन की प्रचुर सामग्री, शय्या पर सोने में बिताया हुआ दीर्घकाल, कमाई, खर्ची हुई विशाल संपत्ति, यह सबका सब व्यर्थ की बर्बादी है; यदि जीवन का प्रधान उद्देश्य ही उपेक्षित रहता है।

जीवन तो शत्रु निर्मूलन के लिए एक अभियान है, यह तो बाधाओं, प्रलोभनों, कठिनाइयों और द्विविधाओं से पूर्ण युद्ध-क्षेत्र है। यह शत्रु भी मनुष्य के अन्दर ही रहते हैं; अतः युद्ध भी सदा से ही अविराम चल रहा है। उस विष की तरह जो रक्त प्रणाली में वृद्धि को प्राप्त होता रहता है, काम, लोभ, घृणा द्वेष अहंकार और ईर्ष्या की कुप्रवृत्तियाँ मानव जीवन की शक्ति को निरंतर क्षीण करते रहते हैं जिससे अन्त में असमय ही उसका पतन होता है। रावण को, विद्वत्ता, शक्ति, धन, बल, सत्ता, भगवान् की कृपा······सभी कुछ तो प्राप्त था, परन्तु

काम और अहंकार के विष ने, जो उसके मस्तिष्क में ही था उसकी सभी उपलब्धियों के होते हुये भी उसका नाश कर दिया। वह क्षण भी शान्ति और आनन्दपूर्वक न रह सका क्योंकि विष ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सद्गुण ही शक्ति और दुर्गुण ही दुर्बलता होते हैं।

इन आंतरिक शत्रुओं से संघर्ष करने में मनुष्य और मनुष्य में अन्तर होता है। जिसकी जैसी साधना होती है उसी के अनुसार उसे फल प्राप्त होता है, उसके वर्तमान और बीते हुए जन्मों के कर्मों के अनुसार भी फल होता है। जीवन कोई गणित का सीधा साधा सूत्र नहीं है कि जहाँ २ और २ का योग सदा ४ ही होता है। किसी स्थान पर यह ३ भी हो सकता है तो कहीं ५ भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि कौन कितना मूल्य २ का आंकता है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक मार्ग में प्रत्येक को वर्तमान स्थान से आगे बढ़ना होता है; यह अपनी गति के और उस दीपक के प्रकाश के अनुसार होता है जिसे कि वह अपने ही हाथ में पकड़े हुए है। राक्षस लोग भगवान् के आगे प्रणत होने में अभिमान करते थे; उन्हें अपने अस्त्र शस्त्रों और संख्या बल पर बड़ा गर्व था, भरोसा था। उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और शक्तिशाली आत्मिक बल की उपेक्षा की थी जोकि पर्वतों, पुलों, महासागरों को धारण किये हुए है, और जो पंचमहाभूतों के क्रोध को भी निवारण कर सकता है। आप अपने चरित्र का स्वयं विश्लेषण करें और निदान करें कि कौन-कौन से दोष उसमें व्याप्त हैं; अन्य लोगों के चरित्र का विश्लेषण करना व्यर्थ है; उनके दोषों को ढूंढ निकालना बेकार है। यह आत्मनिरीक्षण अपने आध्यात्मिक विकास को क्षीण करने वाले दोषों का पता लगाने के लिए नितान्त आवश्यक है। लोग गहरे रंग के कपड़े इसीलिए खरीदते हैं कि वह कपड़े पर जमी धूल और मैल को छिपाये रखता है। उन्हें श्वेत वस्त्र

नहीं पसन्द आते हैं क्योंकि वह वस्त्र के मिट्टी भरे होने अथवा मैले होने को प्रकट करता रहता है। परन्तु आप अपनी गंदगी को अन्धकार में मत छिपाकर रखिये। मटमैले स्वभावों पर लज्जित होना चाहिए और उन्हें बिल्कुल स्वच्छ करके रखना चाहिए। जिसे आजकल 'भोग' या 'मजा' कहा जाता है, वह उन्हें उत्तेजक स्थिति में लाकर उन्हें पागल-पन के व्यसनों में फँसा देता है। भोजन के विविध व्यंजन, जिनमें रंग, सुगन्धि, स्वाद और आकृति की भिन्नता होती है जिसकी आप प्रशंसा करते हैं वह केवल भूख की बीमारी की औषधि मात्र होते हैं। आज तक जितने पेयों का मनुष्य आविष्कार कर सका है वह उसकी पिपासा नामक बीमारी को शान्त करने की औषधि है। मनुष्य इन्द्रियों के बुखार का रोगी है वह मनोरंजन या मजे, सैर, दावत, नृत्य को उक्त बीमारी के बाजारू औषधि के रूप में प्रयोग करने लगता है और अंत में होता यही है कि यह बीमारी घटती नहीं है। बीमारी तभी घट सकती है जब कि अन्तःकरण में व्याप्त विष का निराकरण कर दिया जावे। जब ज्ञान की किरणों से इस विष को झुलस दिया जावे तभी यह नष्ट हो सकेगा।

मनुष्य के मस्तिष्क को 'श्रेय' और 'प्रेय' पदार्थ अपनी ओर आ-कर्षित करते हैं। श्रेय जिनसे मनुष्य का कल्याण होता है और प्रेय जो उसे सुखदायक प्रतीत होते हैं। अतः प्रेय के ऊपर श्रेय को वरीयता देनी चाहिये। संभव है प्रेय पतन की ओर ले जाने वाले सिद्ध होवें। विभीषण ने रावण से 'श्रेय' की बात कही परन्तु उसने अपने मंत्रियों के 'प्रेय' वचनों को, जो चापलूसी से पूर्ण थे, स्वीकार किया। उसने भाई को देश से बहिष्कृत और दरबारियों को सम्मानित किया। इस प्रकार श्रेय के ऊपर प्रेय को वरीयता देकर उसने अपने भाग्य को नष्ट कर लिया। एक सच्चा हितैषी डाक्टर तो रोगी की बीमारी को दूर करने और उसे स्वस्थ बनाने की इच्छा करता है वह सदा श्रेय को

ही प्रेय पर वरीयता देगा। गुरु ऐसा ही डाक्टर है। उसकी आज्ञा मानों, चाहे उसके द्वारा निर्धारित औषधि अरुचिकर और बुरे स्वादु की ही क्यों न हो परन्तु अंत में आप नीरोग और स्वस्थ तो हो जावेंगे।

यह देश तो इस समय श्रेय की उपेक्षा कर प्रेय के पीछे भाग रहा है। वर्तमान संकट और असन्तोष का यही कारण है। भारतीय संस्कृति ने सदा ही कठोर मार्ग चुना है, कल्याणकारी पथ का अनुसरण करने का परामर्श दिया है; परन्तु आजकल तो लोग उस सभ्यता के पीछे चलना चाहते हैं जो इन्द्रियों की तुष्टिकारक हो, जो बाह्य तड़क भड़क, कल्पनायुक्त, क्षणिक, परिवर्तनशील और छलना के समान है। भारती संस्कृति "इन्द्रिय निग्रह" का पाठ पढ़ाती है न कि उनका तुष्टि करण। मोटरकार एक ऐसे चक्र द्वारा निर्देशित एवं चालित की जाती है जो उसी कार के अन्दर ही होता है। जब आंतरिक चक्र घुमाया जाता है तो बाहर के पहिये घूमने लगते हैं। इसी प्रकार मानव के अन्दर का चक्र घुमाना चाहिये जिससे उसकी उन्नति हो सके। बाहरी पहियों को घुमाने का प्रयत्न अज्ञान को प्रकट करता है, यह तो बहुमूल्य शक्ति को बर्बाद करना है। आन्तरिक एकाग्रता का विकास करना, बाह्य आकर्षणों में भटकने से कहीं श्रेयस्कार है। नीरवता, सादगी विनम्रता ...इनकी वृद्धि करो; शोर, उलझन और दम्भ को घटाते जाओ। रात-दिन के २४ घंटों में से ६ घंटे कमाने खर्च करने को रक्खो, ६ घंटा भगवच्चिन्तन के लिये, ६ घंटे निद्रा के लिये और ६ घंटे परोपकार के लिये रक्खो। आज तो आप केवल ५ मिनट ही भगवच्चिन्तन करते हैं फिर भी आपको लज्जा नहीं आती। कैसी दुखान्त घटना है ?

अपनी स्थिति, गति, शक्ति और मति के विषय में विचार करो। तब साधना के मार्ग पर कदम, कदम आगे चल पड़ो जिससे कि आप प्रतिदिन, प्रतिघंटा, प्रतिक्षण अपने लक्ष्य के निकट से निकटतर

बढ़ते जाओ। अर्जुन स्वयं भगवान् से गीता का उपदेश प्राप्त करने का अधिकारी तभी बन सके जब उन्होंने विषाद, वैराग्य, शरणागति और एकाग्रता, जो उस महान संदेश के लिये आवश्यक हैं, को अपने में विकसित और भगवान् के समक्ष प्रकट किया था। जब मुक्ति की आकांक्षा अकथनीय रूप से प्रबल हो जाती है, मनुष्य उन सभी सामाजिक परम्पराओं, सांसारिक विधि-निषेध और नैतिक आदर्शों को, जो उसके महान् उद्देश्य की पूर्ति में सहायक नहीं होते हैं, एक ओर हटा देता है, तब प्रह्लाद पिता को त्याग सकते हैं, भीष्म अपने गुरु का विरोध कर सकते हैं, मीरा अपने पति को त्याग सकती है और शंकराचार्य को भी अपनी मां से तिकड़म द्वारा अलग होना पड़ता है। मुक्ति की उस अभीप्सा को जागृत और विकसित करने के लिये भगवान् की महिमा को स्मरण करते हुए उनके किसी नाम को, जो भी अपने को मधुर और प्रिय लगे, जाप करने लगो; । यही सर्वोतम उपाय है। यह अभ्यास सभी कोई, सदैव और सर्वत्र कर सकते हैं; इससे जाति, लिंग, आय, धर्म, आयु का कोई बंधन नहीं होता है, न किसी सामाजिक स्थिति की ही अपेक्षा होती है। यह आपको सदा अनंत, अनादि और अपार से संयुक्त और संपर्क में रखेगा और आपको उसी की कुछ बुद्धि और शक्ति प्राप्त होने लगेगी।

सरदार पटेल क्रीड़ांगन बम्बई
दिनांक १६-३-१६६६

—o—

३३

मन को दर्पण बना लो

भारतवर्ष एक ऐसा आकर्षक देश है जहां प्रकृति आंख को मनोरम सौंदर्य, तथा कान को मधुर तान, सुगंध, कोमल शीतल स्पर्श, प्राप्त कराती है। विवेक और वैराग्य के अभ्यास के लिये यह एक उत्साहप्रद अखाड़ा है। भारतवर्ष उत्तम गंभीर दर्शनशास्त्र का उत्तराधिकार, व्यावहारिक अध्यात्मवाद, महान ऋषि मुनियों की प्रसिद्ध शृंखला, जिन्हें कवियों ने शुद्ध यशोगान के द्वारा अमर कर दिया है, प्रस्तुत करता है। परन्तु भूतकाल की वह भाषा, जो इस विशाल ज्ञान और अनुभव का भंडार है, अब कुछ सीमित संख्या के लोगों को ही आती है, और वे लोग अब शीघ्रता से एक एक करके लुप्त हो रहे हैं क्योंकि समाज के द्वारा, राज्य के द्वारा उन्हें रक्षण, पोषण और उत्साह नहीं दिया जा रहा है।

एक समय में जो संस्कृत भाषा भारत के सभी स्त्री, पुरुषों की सम्पर्क भाषा थी और हिमालय की कंदराओं से लेकर कौड़ी प्रदेश कन्याकुमारी तक सर्वत्र बोली, समझी जाती थी उसे अब 'मृतभाषा' कह कर तिरस्कार किया जाता है; धीरे धीरे मातृभूमि के कृतघ्न बच्चों द्वारा उसे विस्मृति के गर्भ में धकेला जा रहा है।

इसी मां ने वामदेव को जन्म दिया था, जिन्होंने यह अनुभव किया, साक्षात्कार किया जबकि वे माता के गर्भस्थ भ्रूण थे, कि वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रहलाद को जन्म दिया जिसने बचपन में

ही भगवन्नाम उच्चारण करते करते असहनीय यंत्रणाओं को भी 'ॐ नमो नारायण' मंत्र जपते जपते प्रसन्नतापूर्वक झेल लिया था। शुकदेव को जन्म दिया जो जन्म से ही इन्द्रियों को वशीभूत करके अद्वितीय वैँरागी के रूप में आजतक जाने माने गये हैं। शंकराचार्य को जन्म दिया जिन्होंने सर्वोच्च कठोर तपस्वी, वेद, उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र के अभूतपूर्व व्याख्याकार के रूप में हिन्दूमठों की कीर्ति को गाया और एक स्वामी के रूप में भक्ति मार्ग का प्रचलन किया, सर्वदमन राजकुमार भरत को जन्म दिया जो सिंह शावको के साथ खेला करता था। सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन को जन्म दिया जो दोनों हाथों से एकसी दक्षता से वाण संधान करने में समर्थ था (सव्यसाची); और भगवान् का अनुशासित शिष्य होने के नाते उनसे गीता का उपदेश प्राप्त कर सका। शिवाजी को जन्म दिया जो समर्थ रामदास के पक्के भक्त और शिष्य थे, जिन्होंने एक ऐसे राज्य की स्थापना की जहां सनातन धर्म फला-फूला और शासन करता रहा। शिवि और कर्ण जैसे अद्वितीय आत्मत्यागियों को उत्पन्न किया। सीता, द्रोपदी, शवरी, मीरा और पद्मिनी के समान अनेक स्त्रियों को जन्म दिया जिन्होंने धर्म की महानता को घोषित किया और जो मन की मुक्ति और पवित्रता के लिये धधकती अग्नि में प्रसन्नता से प्रवेश कर गयीं और धर्म के आदर्शों को त्याग कर अपमान का जीवन बिताना स्वीकार नहीं किया। जिसने सम्राज्ञी चन्द्रामति और दमयन्ती को जन्म दिया जिन्होंने हर प्रकार के विनाश और विपत्ति का स्वागत किया कि वह भगवान् के चरणों की ओर बढ़ने के लिये एक अवसर है और उसे रुचि और प्रेमपूर्वक स्वीकार किया।

मानव एक हाथ पैर आंख कान मस्तक उदर वाला प्राणी ही नहीं है। वह तो इन सभी अंगों के जोड़ के अतिरिक्त बहुत कुछ है। यह तो स्थूल से विकसित कुछ भद्दी आकृतियां हैं। इन्हें तो बाद में घिस

कर, खरोंच कर, पालिश कर, चिकनाकर बुद्धि से उच्च भावों, उच्च विचारों और आदर्शों की पूर्ति के लिये उपयुक्त पात्र निर्माण करना है। तभी मानव वास्तव में दिव्यता का एक आदर्श अभ्यर्थी बन जाता है; यह दिव्यता ही तो उसका अंतिम और उच्चतम लक्ष्य है। भावों को शुद्ध किया जाना है, विचारों को उच्चतम स्थिति तक उठाना है यदि मानव को अपने मनसा, वाचा, कर्मणा सभी कृत्यों को प्रभु के प्रति अर्पण करना है। इसके लिये उस परात्पर परब्रह्म में, जो इस ब्रह्मांड को उत्पन्न करता, पालन करता और लयकर्त्ता है, जो सर्वोच्च चैतन्य है उसी में विश्वास को दृढ़ करना है।

अगला कदम है अपनी असहाय अवस्था, दुख और शोक से अवगत होना। तभी उस सच्चिदानंद के प्रति समर्पण का कार्य सुगम हो जाता है। राम के रूप में आये हुये भगवान् की कृपा के सुग्रीव प्रार्थी थे। परन्तु उन्हें भी भगवान् की शक्ति और क्षमता के प्रति सन्देह का रोग था। परन्तु भगवान् को उनके प्रति ऐसा प्रेम था कि उन्होंने उन परीक्षाओं का देना भी स्वीकार कर लिया जो सुग्रीव ने उनसे मांगी; पैर की ठोकर से राक्षस के भारी शव को फेंक देना, सात वृक्षों (साल के) को एक ही बाण से गिरा देना। परन्तु विभीषण ने राम को नराकार में आविर्भूत भगवान् के रूप में पहचान लिया वे सीधे दौड़ कर अपनी रक्षा और कल्याण के लिये उनके चरणों में बिना किसी शर्त और परीक्षा के शरणागत हो गये। भगवान् ने इसीलिये उन्हें रंचमात्र संकोच के बिना ही स्वीकार कर लिया यद्यपि भगवान् के पार्षद और मंत्रीगण इस का विरोध नाना प्रकार की आशंकाओं को उठाकर करते ही रह गये।

इसीलिए विश्वास और शरणागति का भाव जागृत करो। तभी तुम्हारे प्रत्येक कार्य में भगवान् की कृपा प्रवाहित होने लगेगी। क्योंकि

इस दशा में वे कार्य तुम्हारे न रहकर उसके हो जावेंगे और तुम्हें उनके परिणामों की कोई चिन्ता न रह जावेगी। इसीलिये वे सब कार्य, वचन और विचार शुद्ध, प्रेम से संपृक्त, शान्तिप्रद हो जावेंगे। अपने हृदय को स्वच्छ करलो जिससे भगवान् अपनी सम्पूर्ण महिमा से उसमें प्रतिबिम्बित हो सके और अपने असंख्य रूपों को प्रकट करे।

एक बार एक प्रसिद्ध चित्रकार ने कृष्ण के समक्ष प्रस्तुत होकर अपने प्रमाणपत्रों, पदवियों, प्रशंसापत्रों, तमगों और पुरस्कार में प्राप्त वस्तुओं तथा उत्कृष्ट चित्रों की एक अच्छी खासी प्रदर्शनी प्रस्तुत करके उनके चित्र बनाने की अनुमति चाही। कृष्ण ने इसे प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। कई बार की और आवश्यक स्थितियां (sittings) दी गई और चित्र तैयार हो गया। परन्तु सभी दर्शकों ने एक मत से घोषित किया कि जिस कृष्ण ने बैठ-बैठ कर चित्र बनवाया उससे यह चित्र तो भिन्न रूप में बना है। उदारतापूर्वक चित्रकार को कुछ और अवसर प्रदान किए गए, प्रत्येक बार उसकी कृति वास्तविकता से दूर ही रही क्योंकि सभी ने यही कहा कि चित्र तो उस समय का हो सकता है जब कि कृष्ण चित्र बनवाने बैठे होंगे परन्तु अब तो इस चित्र से उनकी आकृति का मेल नहीं खाता है। अब तो चित्रकार का सारा अभिमान बुलबुले की भांति नष्ट हो गया। उसने लज्जा से सर झुका लिया और नितान्त असफलता से दीन होकर नगर ही छोड़ गया। नगर के बाहर निकलते ही उसकी नारद से भेंट हो गई। उसकी करुण कहानी सुनकर देवर्षि ने कहा, "भगवान् के अनेक रूप हैं, वास्तव में समस्त रूप उसी के हैं। इसीलिए एक आकृति को जमा कर आप भगवान् को चित्रित नहीं कर सकोगे। मैं तुम्हें सलाह देता हूं कि कैसे इस कार्य को प्रारम्भ करोगे।" और उसे एक ओर ले गये।

अगले दिन चित्रकार दरबार में एक ढका हुआ फ्रेम लगा 'चित्र'

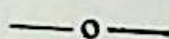
लेकर उपस्थित हुआ यह चित्र श्वेत वस्त्र से ढका हुआ था; भगवान् ने इस चित्र को उघाड़ने की आज्ञा दी, जब उनकी आज्ञा का पालन किया गया तो वहां एक दर्पण ही प्राप्त हुआ। चित्रकार ने निवेदन किया कि "भगवान् आपके अगणित रूप हैं; इस चित्र में सभी आकृतियाँ तत्काल चित्रित हो जाती हैं।" अपने हृदय को दर्पण की भांति स्वच्छ कर लो तब इसमें भगवान् की महिमा प्रतिबिम्बित होने लगेगी।

जो इच्छायें मन में संचित हैं वे ही उन काले धब्बों के समान है जो मानव की आन्तरिक चेतना को विकृत किये हुए हैं। इन्द्रियों को संयमित रक्खो, उनकी तत्काल तृप्ति की मांग को मत स्वीकार करो। जब एक शव चिता पर रक्खा जाता है और जब चिता में अग्नि प्रवेश करती है, तो शव और चिता दोनों ही राख की ढेरी में बदल जाते हैं। इसी प्रकार जब इन्द्रियों की उपेक्षा की जाती है तो मन भी अदृश्य हो जाता है। जब मन अदृश्य हो जाता है तो भ्रम (माया) भी नष्ट हो जाता है और मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

आध्यात्मिक विजय के लिए भगवान् में विश्वास सर्वोत्तम कुमक है जब आप भगवान् की महिमा का चिन्तवन करने में मग्न होते हैं तो कोई भौतिक पदार्थ आपको आकर्षित नहीं कर सकता, अन्य सभी कुछ घटिया प्रतीत होगा, भगवद्भक्तों और दीन दुखियों की संगति में ही अच्छा लगेगा। यह महाराष्ट्र तो दीर्घकाल तक उन संतों का क्षेत्र रहा है जिन्होंने भगवान् का यशोगान किया है और जिन्होंने अपने हृदय की बेदी पर भगवद्दर्शन भी किया था। अपने गीतों से उन्होंने भक्ति की जो धारा प्रवाहित की थी, उसने लाखों शुष्क हृदयों को महाराष्ट्र तथा अन्य क्षेत्रों में उर्वर बनाया है। अपने जप, तप और योगसाधना से उन्होंने अनेक साधकों को अपेक्षाकृत शीघ्र और समीपता से भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होने में सहायता की है। इतनी निकटता से यह कार्य

सम्पन्न हुआ कि किसी प्रकार की निराशा उनके विश्वास को न डिगा सकी। कबीर, रामदास, तुकाराम आदि ने समग्र मानवता के लिए भक्ति के राजपथ का निर्माण किया है। जब आध्यात्मिक श्रेष्ठता का प्रश्न उठता है तो महाराष्ट्र आत्मविश्वास के साथ दावा कर सकता है कि वह भारत के अन्य राज्यों में किसी से पीछे नहीं है और सौराष्ट्र भी इसका निकटतम प्रतिद्वन्दी है। धार्मिक पूर्वजों ने जो महान उत्तराधिकार आपको छोड़ा है उसी के अनुकूल आपको जीवन ऊपर उठाना है; यही आपका कर्त्तव्य है।

वल्लभभाई पटेल क्रीड़ांगन
बम्बई १७-३-६६



३४

बन्धनों से बचो

आज का दिन एक पवित्र दिवस है अतः इसे पवित्र विचारों में और पवित्र कार्यों में लगाना है न कि सस्ते प्रकार के ऐन्द्रिक सुखों के मनन और व्यसनों में जैसे दावतें और सिनेमा में बिताना है। बेशक अज्ञान के कारण लोग इन खोखले आनन्दों, जैसा कि मानव की आनन्द की खोज अपरिहार्य है में ही मग्न रहते हैं। आनन्द जो अन्दर है, उसे बाहर खोजा जाता है। परन्तु शुद्ध और वास्तविक आनन्द, जो उच्च अभिलाषाओं, जैसे स्वतंत्रता की चाहना, अंतिम सीमा तक आत्मविस्तार करना, बन्धनों से रहित हो जाना, परात्पर ब्रह्म को जो इस विश्व का नियंता है, प्राप्त करना, की पूर्ति से ही प्राप्त होता है।

इस प्रकार का प्रत्येक त्यौहार, किसी न किसी ऐसे आध्यात्मिक साधन से हमारे ऋषियों द्वारा संयुक्त किया गया है जो मानव के अंतिम लक्ष्य के समीप ले जाने वाला एक कदम होता है। फिर भी हम कितने ही ऐसे नववर्ष दिवसों को अपने पीछे, उसके महत्व को न जानते हुए, अज्ञान से छोड़ आये हैं। प्रति वर्ष इसी प्रकार भ्रान्त रूप से आनन्द की खोज में बीत जाता है। परिणाम में कष्ट और निराशा ही हाथ लगते हैं।

थोड़ा विचार करो। समय की सबसे अल्प इकाई सैकिण्ड होती है, जिस समय को हम वर्ष कहते हैं। ऐसे ६० सैकिण्डों से मिनट और ६० मिनट से घण्टा, और ऐसे २४ घण्टों से एक दिन, और ३० दिन से एक

महीना तथा ऐसे १२ महीने बीत जाने पर हम कहते हैं कि एक वर्ष बीत गया। तब पुनः नववर्ष दिवस का त्यौहार आता है और तब हम बड़े उल्लास से अवसर को उत्सव के रूप में मनाते हैं।

वास्तव में आज कुछ भी तो नया नहीं हुआ है। वर्ष में तो कुछ भी नूतनता नहीं है, वर्तमान सैकिन्ड के पश्चात् जो अगला सैकिण्ड आता है वही वास्तव में नवीन होता है। जब तक इस प्रकार समय के चक्र में मिनट, घंटा, दिन, माह और वर्ष बीते तब तक समय में नवनीता के लिए प्रतीक्षा मत करो। आगामी सैकिण्ड का ही उत्सव मनाओ जिससे आपको स्थायी आनन्द की प्राप्ति हो सके। आनन्द प्राप्त करने के प्रयास में कोई क्षुद्रता नहीं होती। यदि साधन दूषित और घटिया है तो उनसे प्राप्त आनन्द भी दूषित और घटिया होगा। वास्तव में मनुष्य इस दुनियां में आता ही इसलिए है कि अपने आपको आनन्द से पूर्ण करे इसलिए उसे बुद्धि, मस्तिष्क स्मरणशक्ति, वाक्शक्ति, साहस और चेतना से युक्त किया गया है। केवल मानव को ही ऐसा अवसर और क्षमता प्राप्त है अन्य प्राणी इतनी शक्तियों को नहीं प्राप्त किये हैं। परन्तु मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य ही भूल गया है और क्षुद्र आनन्द के पीछे-पीछे जंगल में भटक रहा है। वह भ्रमित होकर इस प्रकार के आनन्द को अपने लिए सम्मानपूर्ण और कल्याणकारी भी मा हुये है।

आनन्द और शान्ति प्राप्त करने का मानव का संकल्प उस दीपक की लौ की तरह प्रकम्पित नहीं होना चाहिए जिसे कि खिड़की की चौखट पर रक्खा गया हो। ऋषि प्रणीत शास्त्रों में वर्णित विधान के द्वारा मनुष्य को यह प्राप्त करना चाहिए अथवा किसी मनीषी से, जिनसे इन्हें प्राप्त किया हो, विधान जानकर प्रयास करना चाहिए। फिर उसी पथ का लगन से अनुसरण करो चाहे कितनी तीखी आलोचना,

चाहे कोई द्वेष और सनक से भरा होकर करे साधक को अपने पथ से विचलित नहीं होना चाहिए। क्रूर हास्य से साधक का क्या बिगड़ेगा, क्या आंधियों से हिमालय पर्वत प्रभावित होता है? संकट, परीक्षा, परिश्रम और परेशानी आतंक और निराशा के कारण आपका लक्ष्य और साधन में विश्वास शिथिल नहीं होना चाहिए। यह तो बनने, मिटने वाले क्षणिक बादल हैं; इनकी छाया कितनी देर की होती है? यह तो चन्द्र या सूर्य का प्रकाश, कुछ ही समय तक अवरुद्ध कर सकते हैं। निराशा या सन्देश से विचलित न होओ। अपने जीवन रूपी भवन का निर्माण पुरुषार्थ चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम. मोक्ष के चार सुदृढ़ स्तम्भों पर करो। प्राचीन ऋषियों ने इन्हीं चार पुरुषार्थों का वर्णन किया है। यह चारों परस्पर एक दूसरे से दृढ़ता से सम्बद्ध हैं। इन स्तम्भों को झुकने अथवा लड़ाखड़ा कर मत गिरने दो जैसा कि आज कल बहुत से व्यक्ति, जातियां और राष्ट्र कर रहे हैं।

भगवान ने मानव के लिए आदर्श मर्यादा पुरुषोतम राम का उदाहरण सबके समक्ष रखा है उन्हीं का चिन्तन करो। राम, धर्म की मूर्ति, विग्रहवानधर्म, हैं। जिन गुणों का विकास मानव को अपने में करना है उसके वह सर्वोत्तम आदर्श हैं। उन्हीं का अनुकरण करके मानव, आदर्श राजा, आदर्श पति, पुत्र, भाई, मित्र और शत्रु की तरह आचरण कर सकता है। राम के अन्य तीन भाई अन्य तीनों आदर्शों के प्रतीक हैं, भरत सत्य के, शत्रुघ्न शान्ति के और लक्ष्मण प्रेम का आदर्श हैं। रामायण का अध्ययन कर उसके आदर्शों पर चलकर आपका जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो। जिससे यह जीवन सफल हो, और आपको भी इसका अमित लाभ प्राप्त होवे। तभी आप अपने को भगवान् का "भक्त" कहलाने के अधिकारी होंगे।

इस समय तो भीड़ की भीड़ ही 'भक्ति' का प्रदर्शन करती है और अपने को 'भक्त' कहलाने की इच्छा रखती है। आप देखते हैं कि लोग

पवित्र नदियों की, तीर्थों की ओर, मन्दिरों और सरोवरों की ओर भक्ति के सभी ठाठबाट बनाये मोटर गाड़ियों, रेलगाड़ियों से व पैदल चले जा रहे हैं। परन्तु भगवान् का भक्त, साधक अथवा परब्रह्म का उपासक तभी कहा जावेगा जबकि व्यक्ति की आंतरिक सुखोपभोग की कामनायें और मनोविकार नष्ट होकर उसका हृदय निर्मल तथा आचरण पवित्र हो चुका हो। यद्यपि जिह्वा से भगवन्नाम उच्चारण, कान से कथा श्रवण और हाथ से मूर्ति पर पुष्प वर्षा करते हो, परन्तु इन कृत्यों में आपकी जिह्वा, कान और हाथ को इस प्रकार वर्तते हुये भी हृदय में, मन में आनन्द और उत्साह की भावना नहीं हो सकती है। यह तो तभी होगा जब आपके हृदय में सर्वोच्चि आनन्द की मधुरता का चिन्तन हो, उनकी महिमा सुनकर रोमांचित होवे। नहीं तो आप उस चम्मच की तरह हैं जो सभी प्रकार के व्यंजनों और सुस्वादु भोजन में बार-बार डूबता है परन्तु स्वयं कुछ भी स्वाद, तृप्ति नहीं पाता है। ऐसे लोगों के लिए वेदान्त पाठ भी एक पाठ ही हैं, यद्यपि वह आध्यात्मिक है वह ऐसा पाठ नहीं है कि जिस पर आचरण किया जाता हो, जो दैनिकचर्या, व्यवहार और आचरण का अंग बन गया हो।

धार्मिक महापुरुषों, सन्तों और ऋषियों की जीवन गाथा को लोग पढ़ते हैं; यदि वे इन्हें मन को सबल बनाने वाले पौष्टिक की तरह प्रयोग नहीं करते हैं, मानव की कठिन जीवन यात्रा पथ के मापदण्ड (मील के पत्थर) नहीं मानते हैं, तब तो यह गाथायें कहानी और कल्पना की उड़ान मात्र रह जाती हैं। बुद्धिमानों के लिए तो यह गाथायें प्रकाश-स्तंभ का कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, पितृभक्ति के लिए तो भीष्म राम से भी अधिक सबल प्रेरणादायक आदर्श हैं। अपने सठिया गये पिता की, उस भोगेच्छा को तृप्ति देने के लिए, जिन्हें वह साधारण अवस्था में निन्दनीय समझते, उन्होंने स्वेच्छा से अपने देश राज्य पत्नी, परिवार की सभी संभाव्य सुखानुभूतियों से जीवन भर

के लिए वंचित कर लिया; और प्रसन्नतापूर्वक किया। वैदिक आज्ञा "पितृ देवो भव" को उन्होंने सम्पूर्ण अर्थों में चरितार्थ कर दिखाया।

वर्तमान पीढ़ी ने इस नैतिक आदर्श नियम संहिता को, जिससे अनेकों व्यक्तियों ने शताब्दियों तक निस्वार्थ पवित्र साधनामय जीवन बिताकर, सामाजिक नियमों को निभा कर सन्तोष प्राप्त किया, हवा में यों ही उड़ा दिया है। पुत्र, पिता की सम्पत्ति में अपना भाग पाने के लिए लड़ते-झगड़ते और मुकदमाबाजी करते हैं; परन्तु पिता के प्रेम में कोई भाग नहीं लेते हैं। वे अपनी आवश्यकताओं, और उनके आदेशों के प्रति कान मूंद कर बैठ जाते हैं। माता पिता ही तो व्यक्ति को यह पार्थिव शरीर और भौतिक पदार्थों से भरा घर-द्वार प्रदान करते हैं कि जिससे हम अपने चरम लक्ष्य परब्रह्म परमात्मा की उपासना और भक्ति कर सकें, सच्चिदानंद का अनुभव कर सकें और अपने को इस आवागमन के घोर बन्धन से मुक्त कर सकें। इसीलिए संतान के द्वारा माता-पिता के प्रति कृतज्ञता और सम्मान प्रकट किया जाना चाहिए। बहुमूल्य रत्नों की सुरक्षा के लिए लोहे की तिजोरी आवश्यक होती है। इसलिए सद्गुण, विश्वास प्रेम और विवेक जैसे रत्नों को सुरक्षित रखने के लिए यह शरीर अनिवार्य रूप से दिया गया है, चूंकि यह माता-पिता से प्राप्त हुआ है, इसलिए मनसा, वाचा, कर्मणा उनका सम्मान किया जाना चाहिए। यदि आप अपने लौकिक पिता की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते हैं फिर आप स्वर्गीय परमपिता से अपनी प्रार्थना की पूर्ति की कैसे आशा करते हैं? धर्म का पहला कदम कृतज्ञता, संतान द्वारा माता-पिता के प्रति आदर भाव है। जब पहला कदम ही नहीं उठेगा तो फिर चढ़ाई हो चुकी; असंभव है।

एक और अवमानना, जो उन्नति को रोक रही है, वह है नई

युवा पीढ़ी की ईश्वर और धर्म के प्रति सनकीपन से भरे हुए विचारों को रुचिपूर्वक श्रवण करना। वे लोग व्यंग हास्य से प्रश्न करते हैं, "यह ईश्वर नामक बला क्या है ? वह कहां पाया जाता है ? वह वहां करता क्या है ?" ऐसे ही कुछ देहातियों ने जब एक साधु को घेर कर प्रश्न किये; तो उसने उनसे एक दूध से भरा पात्र मंगाया। बड़ी देर तक और गौर से देखने के पश्चात् उसने उंगली डालकर उसे चलाया भी, हिलाया डुलाया और मौन हो गया। देहातियों ने उससे पूछा कि "क्यों देखते, खोजते हो ?" उसने उत्तर दिया, "लोग कहते हैं कि दूध में मक्खन होता है। मुझे तो इस भरी हांडी में वह कहीं नहीं दिखाई दिया, खूब हिलाडुलाकर भी देखा।" उसके इस घोर अज्ञान पर वह दल खूब हंसा। उन्होंने बतलाया कि मक्खन इसमें है, दूध की हर बूंद में है, परन्तु वह अभी न तो आंख से देख सकेगा न उंगली से निकाल ही सकेगा। इसे पहले जमाना और फिर मथना और तब इकट्ठा करके निकालने पर दिखाई भी देगा और उंगली से भी छुआ जा सकेगा। तब साधु ने घोषित किया "इसी प्रकार इसी विश्व में ईश्वर भी सर्वव्यापक है वह अत्यन्त दूर नक्षत्र से लेकर इस घास की पत्ती में भी है जो तुम्हारे पैरों के नीचे दबी है। आप भगवान् को देख सकते हैं यदि आप इसी प्रकार विश्व को दही की तरह विवेक से जमाकर वैराग्य से मथ सकें तो साधना द्वारा इकट्ठा करके पालेंगे। धूलि के कण से लेकर अनंत आकाश के सुदूरवर्ती तारापुंज में सर्वत्र सतत साधना द्वारा भगवान पाया जा सकता है। वही प्रत्येक जीव का आधार है, जिस प्रकार कि दूध की प्रत्येक बूंद में मक्खन है, ठीक उसी प्रकार।"

एक प्रकाशित दीपक की तरह भगवान् की कृपा सभी ओर बिखरती है; उन सभी के प्रति जो लोग भगवान् को प्रेम करते हैं और उसके सन्निकट होने की आकांक्षा रखते हैं; परन्तु यदि तुम प्रकाश के

मार्ग में एक अवरोध खड़ा करदो जो तुम तक प्रकाश न आने दे तो तुम्हीं इसके लिए दोषी होंगे कि भगवान् की कृपा तुम तक न पहुँच सकी। अपने हृदय के कपाट खोल दो जिससे ईश्वरीय प्रकाश उसमें प्रवेश करे, पाप के कीटाणुओं को नष्ट करे और कोना कोना जगमगा उठे। कुछ थोड़ा सा परिश्रम करके श्रीगणेश तो करो। सूर्य अपने आप किसी के द्वार पर लगे किवाड़ों को नहीं खोलता है ताकि उसका प्रकाश मकान के अन्दर भी जा सके। किसी रेडियो कार्यक्रम को सुनने के लिए तुम्हीं को उस कार्यक्रम को आयात् करने वाले ठीक समय पर उपयुक्त तरंगदैर्घ्य पर स्विच करना पड़ता है। इतना प्रयास तो करना ही पड़ता है।

विश्वास करो, प्रयास करो और सफलता प्राप्त करो। "जागृत, उत्तिष्ठ, प्राप्यवरान्निबोधत" शास्त्रों का यही संदेश है। परन्तु जो लोग इन शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। वह इस संदेश पर आचरण भी तो करें। वे तो शास्त्रार्थ की तरह पढ़ते और शंका समाधान की तरह व्याख्या करते हैं; जिससे श्रोताओं पर उनकी विद्वत्ता की धाक बैठ जावे; अथवा जैसाकि कुछ लोग करते हैं तो प्राचीनकाल के पवित्र धार्मिक उपादान की तरह उनका पूजन और आरती की जाती है। दैनिक जीवन में उन्हें पथप्रदर्शक की तरह तो विरले ही ले पाते हैं, जैसे कि समुद्र में या वायुयान दुर्घटना के समय सुरक्षा पेटियों का प्रयोग कभी-कभी ही किया जाता है। लोग रामायण, महाभारत और गीता में व्याख्या के लिए तो पारंगत हो जाते हैं पर इस भवसागर के पार जाने के लिए उनमें वर्णित ज्ञान को आचरण में नहीं उतारते। आप तो उनमें होकर निकल जाते हो, परन्तु उनको अपने में से होकर नहीं निकलने देते हो। इन धर्म ग्रन्थों की जिल्दों को रेशमी बंधने से बांधकर रक्खा जाता है। इनकी आरती और धूपबत्ती व पुष्पों के द्वारा पूजा भी की जाती है; लोग तो साष्टांग दण्डवत् भी करते हैं। परन्तु

इनके पत्रों में जो लिखा है उसकी ओर इनका ध्यान नहीं जाता है। यह बाहरी तड़क-भड़क तो मस्तिष्क को आकर्षित करती है परन्तु अन्दर का गूदा, गिरी, जो इन ग्रन्थों के पृष्ठों में निहित है उधर लोग ध्यान ही नहीं देते।

मुझे एक वृद्धा का स्मरण हो आया है जो एक पंडित को गीता की व्याख्या करते हुए घंटों सुनती रहती और आँसू बहाती जाती थी। पूरे पाठ के बाद जब पंडित ने कथा की समाप्ति पर आशीर्वादात्मक पूजा की तो उसने उस वृद्धा को भी वेदी के समीप बुलाया और सार्वजनिक रूप से उस वृद्धा को भगवान का उच्चकोटि का भक्त घोषित किया; क्योंकि सबसे अधिक वही नियमित हार्दिक और सैंकड़ों श्रोताओं में श्रद्धालु थी क्योंकि जब-जब कथा में भगवान् का नाम आता था उसके आंसू निकल पड़ते थे। वह वृद्धा तो यह सब सुनकर आश्चर्य चकित हो गई। उसने कहा कि "मैंने तो इसका एक शब्द भी नहीं समझा है कि गीता में क्या है अथवा उसका क्या अर्थ है। मेरी आंखों से आंसू तो इसीलिए निकल पड़ते थे कि काली डोरी, जोकि इस भोज-पत्र पर लिखी गीता के चारों ओर बंधी है ऐसी ही काली डोरी मेरा स्वर्गीय पति भी अपनी कमर पर बांधता था सो मुझे रह-रह कर उन्हीं की याद आ जाती थी।"

गीता प्रवचन को हजारों लोग, पूर्ण शान्ति से सुनते हैं। जिसे देख कर यह लगता है कि ये लोग तो ध्यान से सुन रहे हैं और एकाग्रचित्त हैं; परन्तु कौन जानता है कि इनमें से कितने हैं जो कि भगवान् का सन्देश सुनकर ध्यान मग्न हुए हैं ? आंखें देखती हैं, परन्तु कान चंचलतापूर्वक इधर-उधर की सुनते हैं, कान भी सुनते हैं तो मन इधर-उधर मंडराता है। विश्वास तो धीरे-धीरे उगने वाले पौधे की तरह होता है, एकाग्रता बिना विश्वास के नहीं आती। तुम्हें रामकृष्ण परमहंस की

कहानी तो याद होगी किस प्रकार उन्होंने रानी रासमणि को जब वे हाथ जोड़कर भक्तिभाव से दक्षिणेश्वर मंदिर में अधखुले नेत्रों से सभी दर्शकों के देखने में 'मां' की प्रार्थना कर रहीं थी, थप्पड़ मार दिया था। वे जानते थे कि वास्तव में रानी प्रार्थना नहीं कर रही थी, बल्कि एक माल के मुकदमे के विषय में, जो अदालत में चल रहा था, सोचकर योजना बना रही थी। इसीलिए उन्होंने स्थान की पवित्रता का स्मरण दिलाने के लिए और प्रार्थना का उपयोग उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए थप्पड़ द्वारा चेतावनी दी थी। रानी ने इसे 'सेवा' माना और अपने नौकरों को रोक दिया कि वे रामकृष्ण परमहंस को कुछ न कहें। उसने कहा कि परमहंस ने तो मेरा बड़ा उपकार किया है। शास्त्रों से एक जीवित संदेश, और मूर्तियों से एक जीवित पाठ प्राप्त होता है। वे लकड़ी या पत्थर मात्र नहीं होती हैं। यही कारण है कि श्री रामकृष्ण एक टूटी मूर्ति को त्यागने नहीं देते थे। उन्होंने पूछा कि क्या रानी अपने जामात्र मधुरबाबू की टांग टूट जाने पर त्याग देंगी। उन्होंने व्यवस्था दी कि मूर्ति को सुधार कर पूजा की जाती रहे। अपनी कथनी के अनुसार ही आचरण करो। अपने और अपने आदर्शों के प्रति असत्य व्यवहार मत करो। जो उपदेश करते हो उसपर आचरण न करके अपनी भीरुता ही प्रकट करते हो और नैतिक रूप से आत्मघात करते हो। आप कहते हैं "बाबा सब देखता है और सब जानता है" परन्तु फिर भी तुम गलतियां करते हो और यह मान लेते हो कि बाबा कहीं और जगह होंगे। तुम मूर्ति में काली की पूजा करते हो, विश्वास करते हो कि यह मूर्ति जीवित है, तुम मूर्ति के पीछे कुछ छिपाकर रक्खो और कल्पना करो कि किसी ने भी नहीं जान पाया होगा तो कैसी बात रहेगी?

सबसे महत्वपूर्ण सन्देश, जो शास्त्र देते हैं, यह है "अपने वैध-कर्तव्यों को करते रहो अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते रहो, अपने

अधिकारों के प्रति सावधान रहो, परन्तु आसक्तियों को प्रबल न होने दो जहां तक परिवार, धनसम्पत्ति, यश, ज्ञान और दक्षता का प्रश्न है अपने को ट्रस्टी, सुपर्दगार ही मानो। जब मृत्यु आवे तो सभी का प्रसन्नता से सरलता से त्याग कर दो।"

किसी ने मृत्यु का चित्रण एक भयंकर देवता, जो दानवाकार भैंसे पर आरुढ़ है, के रूप में किया है। उसके हाथ में एक फंदा दिखाया जाता है जिससे वह झपट कर जीव को बांधकर ले जाता है। नहीं यह फंदा तो स्वयं जीव ही अपने लिए तैयार करके देता है। वह झपटता नहीं है, वह तो आने और आपको ले जाने की सूचना पहले ही भेज देता है—बालों का श्वेत होना, दांतों का गिरना, दृष्टि धूमिल पड़ना, सुनाई कम पड़ने लगना, खाल में झुर्रियाँ पड़ना ही वह पूर्व सूचनाएं हैं। वह किसी पशु पर सवारी नहीं करता है। समय का ही दूसरा नाम काल या मृत्यु है। समय ही प्रतिक्षण सुनिश्चित रूप से आपकी ओर बढ़ा चला आ रहा है और आकर जीवन रज्जु को क्षीण कर देता है। इसलिए अपनी कार्यक्षमता का सद्पयोग अपने को मुक्त करने के लिए कर डालो। कर्म का सिद्धांत ही आशा का आधार है। जैसा कर्म होता है उसी के अनुसार फल प्राप्त होता है। कर्म के फल की आशा लगाकर अपने को बंधन में मत डालो। कर्म को प्रभु चरणों में अर्पित कर दो। यह उन्हीं की महिमा और ज्योति में वृद्धि करे। प्रयत्न की सफलता या असफलता से अपना संबंध न रक्खो। तब तो तुम्हें बांधने को मृत्यु के पास कोई फन्दा ही न होगा। मृत्यु एक उद्धारक के रूप में आपको प्राप्त होगी, नकि एक कैद में डालने वाले के रूप में।

यह महान शिक्षायें समस्त मानवता का उत्तराधिकार है, इन्हें उठती हुई पीढ़ी को, घर में और विद्यालय में, सौंप देना चाहिए। लोगों को नेताओं को, शासकों को, जिन्हें समाज ने चुना है, इस कार्य का

दायित्व संभाल लेना चाहिए । विधान-सभा, विधान-परिषद के अध्यक्ष, सभापति और मंत्री लोगों को मैं कहता हूं कि अपने आपको स्वयं स्मरण दिलाते रहें कि यह उनका भी कर्तव्य है । भक्ति, वैराग्य और कर्त्तव्य के बीज छुटपन से ही बो देने चाहिएं जिससे समय पाकर शांति, संतोष और सहकारिता की लहलहाती हुई फसल प्राप्त हो सके । मैं इसी कार्य के लिए यहां आया हूं । यदि वे इस कार्य में भागीदार होते हैं तो उन्हें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी ।

मैं दस दिन से बम्बई में हूं और मुझे यह कहना पड़ता है कि यहां के लोग अनुशासित हैं, उन्होंने आध्यात्मिक भोजन को प्राप्त करने में बड़ा उत्साह प्रदर्शित किया है । मैं निश्चय ही यहां आता रहूंगा । आज गुड़ी पड़वा है इसी से आप यहाँ इतनी अधिक संख्या में एकत्रित हो गये हैं, यह संख्या लाखों में है आज सेवा समिति के स्वयंसेवकों का कार्य भी सराहनीय रहा है जैसा कि पिछले दिनों भी रहता रहा है । मैं उन्हें विशेष रूप से आशीर्वाद देता हूं । कल से आप लोग ग्वालियर भवन में भजन या दर्शन के लिए न पधारें । यहां दस दिनों में जो आनन्द आपने प्राप्त किया है, उसी को अपने हृदय में संचित रक्खें यही मेरा परामर्श है । अपने हृदय में ही शांतिपूर्वक प्रेम से इसका मनन करें और मेरे प्रेम को स्मरण करें और साधना के फल प्रशांति में ही मग्न रहें ।

सरदार पटेल क्रीड़ांगन बम्बई
(संवत्सर दिवस) २३-३-१९६६

—०—

३५

आवश्यकताओं और इच्छाओं को घटाओ

मानव अपना जीवन अथक परिश्रम करते हुए बिता देता है। वह सदा चिन्ताओं और आशंकाओं में डूबा रहता है। वह अकथनीय रूप में व्यस्त रहता है; उसके पास खड़े होकर भगवान् की कलाकृति को देख कर मनन करने का कोई समय ही नहीं है; वह विचित्र और अवर्णनीय आशंकाओं से पीड़ित रहता है; वह थोथी सुविधाओं के पीछे बदहवास होकर दौड़ रहा है। वह लालच और शीघ्रता से अन्धा हो रहा है। अपने कठोर परिश्रम और उथल-पुथल में फंसा हुआ मानव, उस एक सुरक्षित शरण लेने के स्थान को भी भुला बैठा है जो उसे समस्त झंझा-वात अर्थात् मानसिक उद्वेग और परिकल्पनाओं से अनुशासन द्वारा बचा जा सकता है।

जीवन में उस अनुशासन को यथासंभव सीखकर अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिए, उसे वृद्धावस्था तक के लिए स्थगित रखना नहीं चाहिए; जबकि मनुष्य का भौतिक साज सामान (शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि) निर्बल और शिथिल हो जावें। ऐसे भी अनेकों लोग हैं जो अपने बच्चों को धार्मिक पुरुषों, पुस्तकों से दूर-दूर ही रखते हैं जिससे कि वे कहीं इन संयमों के प्रति कोई रुचि न लेने लग जावें उनके विचार से बचपन में यह सब बातें समय से पूर्व की होती हैं। वास्तविकता तो यह है कि आप चाहे जब प्रारम्भ करें तब भी "देर" ही हो चुकी होती है। कौन जानता है कि जीवन की अवधि कब समाप्त हो जावे।

सभी प्राणियों में, एक परब्रह्म परमात्मा, जो सर्वव्यापक और सर्वत्र है, की उपस्थिति से मौलिक एकता के आधार पर आध्यात्मिक संयम नियम आधारित हैं। यहां पर हजारों लोग उपस्थित हैं और मेरे वचनों को सुन रहे हैं; परन्तु तात्विक रूप से वे सब एक ही हैं। वे सब एक ही महासागर की अनन्त लहरों के समान हैं; उनके नीचे एक ही महासागर है। शरीर के सभी अंग संयुक्त रूप से प्रयास करके भोजन प्राप्त करते हैं; उसे आत्मसात करने के लिए सहयोग से प्रयास करते हैं। पेट तथा अन्य अंगों के द्वारा उसे शक्ति में बदलकर पुनः सहयोग से सभी अंगों को, यंत्रों को यथावत् चला जाता है। किसी भी अंग की उपेक्षा नहीं की जाती है। उस पूर्ण पुरुष के, तुम सबके सब भिन्न-भिन्न अंग मात्र हो, जोकि इस विशाल और अनंतविश्व से भी अधिक विशाल और विस्तृत है। यह विश्व तो उसके आलोक और व्यक्त भाग का एक नन्हां सा अंशमात्र है। व्यक्ति, अपने व्यक्तिगत भाव में, भले ही भ्रमित होकर यह सोचे कि वह अन्य लोगों से भिन्न और पृथक् है। परन्तु प्रत्येक की आत्मा वह एक ही आत्मा है जो सबमें है।

इस माला में सबसे पहले दृष्टि पुष्पों पर ही पड़ती है, जिस सूत्र में यह पुष्प आवद्ध है उसका तो अनुमान ही लगाया जाता है वह तो इतना व्यक्त रूप से दिखाई नहीं देता है। परन्तु यदि वह न होवे, तो यह समस्त पुष्प कब के बिखर गये होते। इसी प्रकार उस ब्रह्म के संबंध के बिना आप लोग भी असम्बद्ध होकर बिखरे रहोगे। वास्तव में उसी दिव्य चिनगारी के कारण ही तो आप सबका व्यक्तित्व है, वही दिव्य धारा प्रत्येक में प्रवाहित होकर सभी को सक्रिय और सजीव बनाये हुए है। उसी एकता में यह सब अनेकता पिरोयी हुई है। उसी एक में यह सब अनेक आश्रय लिये हुए हैं।

इस देश के ऋषियों को ज्ञात था कि मन ही एक ऐसा यंत्र है जो

मानव के बन्धन और मोक्ष का कारण बना हुआ है। व्यक्ति को इसकी कार्यप्रणाली को समझना और शक्ति से परिचित होना है। आपको अवश्य ही यह सीखना है कि इस मन का प्रयोग कैसे करें; न कि इसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दें। यह मन ही है जो 'मैं' का ताना-बाना बुनकर खड़ा कर देता है। जिस ढंग से यह अहंभाव को उत्पन्न कर उसे नाना प्रकार के बन्धनों में डाल देता है उसी को माया कहते हैं। मन इन्द्रियों को बाह्य जगत में अपना प्रतिबिम्ब डालने को प्रेरित करता है; यही तो सुख, दुख, शोक और प्रसन्नता के भाव उत्पन्न करता है। और यही मन अनेक प्रेरणाओं और वृत्तियों की फौज लाकर जुटा देता है। शाश्वत, अनंत परब्रह्म से संयुक्त होने के सभी प्रयासों का प्रतिरोध यह मन ही करता है। जब व्यक्ति अपनी आत्मा का साक्षात्कार करने का आकांक्षी होता है तो यह विरोध करता है; परन्तु यह दृढ़ संकल्प और जोरदार प्रतिरोध के समक्ष झुक जाता है और फिर अदृश्य भी हो जाता है।

जब आप यह समझ लेते हैं कि यह रूमाल केवल सूत, अथवा रुई का विस्तार मात्र है तो आपकी दृष्टि से ताना और बाना अदृश्य हो जाता है और उसकी चेतना ही लुप्त हो जाती है। मन भी इच्छाओं के ताने-बाने से निर्मित है। जब मनुष्य उसी एक में अनुभव के द्वारा दृढ़ता से स्थित हो जाता है तो फिर कोई इच्छा ही नहीं रहती है क्योंकि तब कौन, किसके लिए अथवा किस वस्तु की इच्छा करे ? इस प्रकार मन का लय अथवा मन का नाश हो जाता है। मन को, इच्छा को, घटाकर भ्रम से रहित होना है। इच्छा तो आसक्ति से उत्पन्न होती है और वैराग्य से मुक्ति प्राप्त होती है।

थोड़ा विचार करने से आपको वैराग्य विकसित करने का आवश्यक दृष्टिकोण प्राप्त हो जावेगा। इस नगर में आपका एक मकान है, आप

उसमें कुछ वर्षों तक निवास कर चुके हो, आप इसे अपना कहते हो, आपको इस पर गर्व भी है। जब कोई इसकी दीवालों पर पोस्टर चिपकाता है तो आप नाराज होकर विरोध भी करते हो। आपने बड़ी चिन्ता और सावधानी से इसे अपनी रुचि के अनुकूल सुखदायक, सुन्दर और प्रभावशाली रूप में निर्मित कराया है। फिर एक दिन आप जब इसे बेच देते हो। तब फिर आपकी आसक्ति समाप्त हो जाती है। चाहे इस पर बिजली ही क्यों न गिरे आपको कोई दुख नहीं होता। अच्छा, इसकी बिक्री से प्राप्त धन से आपने जो खेत खरीदे हैं वह आपके हो गए हैं। अब उन्हीं में आपकी आसक्ति है। जब बाढ़ का जल उन खेतों में भर जाता है, आप बड़े चिन्तित होकर इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं कि किसी प्रकार फसल नष्ट न होवे फिर आप खेतों को भी बेच देते हैं। प्राप्त-धन को आप अपना कहते हैं। आप इसे एक बैंक में जमा करके एक पास-बुक (जमा पुस्तिका) पा लेते हैं, तब आपकी आसक्ति इस बैंक द्वारा प्रदत्त पुस्तिका में हो जाती है। आप इसको लोहे की तिजोरी में रखते हैं और इसके पृष्ठों को बड़े चाव से उलटते-पलटते हैं। आपके धन को बैंक वाले चाहे आपके शत्रु को ही क्यों न उठा दें परन्तु आपको कोई चिन्ता नहीं होती क्योंकि पास-बुक तो आपके अधिकार में है ही। अब वास्तव में आपका है क्या? जिससे आप इतनी गहराई से चिपके हुए थे? मकान, खेत, धन या पासबुक? संभवतः इनमें से एक भी नहीं। आप तो आत्मप्रतिष्ठा, सुविधा, प्रदर्शन, लोभ तथा उन सब वस्तुओं से जो आपके मन में इच्छा के रूप में उदय हुयीं, प्रेरणा के रूप में प्रकट हुई, मूलतः! वह सब आपके अहंभाव की ही उपज थीं। उसी से फुसलाये जाने के कारण आप एक के बाद एक करके इन वस्तुओं पर अपना अधिकार प्रकट करते रहे हो।

आपमें से प्रत्येक को कुछ न कुछ आध्यात्मिक साधना के लिए प्रयास करते रहना चाहिए, आपका मन आसक्ति, लोभ, ईर्ष्या और

घृणा से रहित होकर पवित्र बने। अहंकार के कूप से बाहर निकलो और विश्वात्मा के महासागर में, जिसका आप एक अंश मात्र हो, समा जाओ। अपने मस्तिष्क को बलपूर्वक शाश्वत के भव्यतर वातावरण में श्वांस लेने को बाध्य करो। ईश्वर का चिन्तन, उसकी महिमा का प्रति-क्षण प्रत्येक श्वांस के साथ मनन करते हुए भगवान का कोई सा नाम जप करते रहो।

अथवा किसी ऐसे कार्य में लग जाओ जो आपको संकुचित स्वार्थों से निकाल कर बाहर के विशाल विश्वजनीन कार्यों में व्यस्त कर दे। किसी भी ऐसे कार्य में लग जाओ जिसका फल आप भगवान को अर्पित कर सको, जहां आप अपने कार्य, ज्ञान अथवा दक्षता से प्राप्त आनन्द का उपभोग अन्य साथी मानवों के साथ कर सको।

अथवा, उच्च आदर्शों को समर्पित व्यक्ति के निरन्तर सम्पर्क में रहो, ऐसे लोग जो आपके लक्ष्य की ओर आपको अग्रसर होने के लिए सदा उत्साहित करते रहने वाले हों। इस प्रकार आप "चित्तशुद्धि" प्राप्त कर सकते हो। इससे मन पवित्र और निर्मल होगा। तब चरम सत्य ही इससे प्रतिबिम्बित होने लगेगा। सत्संग से मनुष्य बाह्य बंधन-कारी कार्यों से धीरे-धीरे अलग होता जाता है। जबकि एक ठंडा कोयला, दहकते हुए कोयलों के बीच में रख दिया जाता है और आग को हवा की जाती है तो वह नया कोयला भी आग का स्वरूप होकर दहकने लगता है। ज्ञानानिशी, उसी आग की तरह कार्य करती है।

व्यक्तिगत प्रयास और भगवत् कृपा दोनों अन्यान्योश्रयी हैं। बिना प्रयास के भगवत् कृपा प्राप्त नहीं होती और बिना भगवत् कृपा के ऐसा सत्प्रयास प्रारम्भ नहीं कर मिलता। वह प्रभु कृपा प्राप्त करने को तो आप में केवल विश्वास और सद्गुण की अपेक्षा होती है। आपको कृपा

प्राप्त करने के लिए भगवान् की प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए, मैं भी उस दीर्घ प्रशंसागान को जिसे आपने सभा प्रारम्भ होने के पूर्व मेरे लिए गाया था, पसन्द नहीं करता। मैं आपका हूं आप मेरे हैं। यह तो पारिवारिक मिलन है वास्तव में, सभी सभाएं ऐसा ही पारिवारिक मिलन होती हैं। समूची मानव जाति ही मेरा परिवार है। यह अजीब सा लगता है कि परिवार का एक सदस्य अन्य एक सदस्य की शेष अन्य सभी सदस्यों की उपस्थिति में प्रशंसा और प्रशस्ति करे। यह तो अब लोगों का स्वभाव बन गया है, एक प्रथा सी हो गई है जोकि राजनैतिक जीवन से उधार ली गई है। जहां मंत्रियों को अभिनन्दन पत्र, मानपत्र दिए जाते हैं और उनकी प्रशंसा करके कुछ न कुछ लाभ प्राप्त किए जाते हैं उन स्थानों के लिए कि जहाँ-जहाँ ये लोग पधारते हैं और इन्हें यह सब प्रशंसा और मान सम्मान देते हैं।

वर्तमान समय में आध्यात्मिक उन्नति का ह्रास इसी कारण से स्पष्टतया हो रहा है कि मठाधीश और नेता लोग जो संस्थाओं को चलाते और नेतृत्व करते हैं वे प्रायः चापलूस लोगों से घिरे रहते हैं जो सदा उनकी प्रशंसा के पुल बांधते रहते हैं और जा और बेजा सभी प्रकार की प्रशंसा करते रहते हैं। प्रशंसा से अहंकार की अग्नि प्रदीप्त होती है और वास्तविक विश्वास कुहासे से ढक जाता है। शिष्य को गुरु की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। उनमें तो पिता-पुत्र का सम्बन्ध रहना चाहिए। यदि पुत्र पिता की प्रशंसा करता है अथवा पिता पुत्र को दुलराता है तो यह हास्यास्पद स्थिति बन जाती है।

कुंडी खटखटाओ, कृपा का द्वार उन्मुक्त होगा। दरवाजा खोलो बाहर सूर्य की किरणें प्रवेश पाने के लिए प्रतीक्षा कर रही हैं वे शांति से चुपचाप प्रविष्ट होकर कमरे को प्रकाश से भरकर आलोकित कर देंगी।

पूना, आनन्द एसोशियेसन
२७-३-६६

३६

अर्धांगिनी—सहधर्मिणी

निश्चय ही विद्यालय एक पवित्र स्थान है जहाँ एक ऐसे पवित्र कार्य को सम्पन्न किया जाता है जो देश की आगे आने वाली पीढ़ियों के भाग्य का निर्णय और निर्माण करने वाला होता है। बच्चे यहाँ पर दस्तकारी तथा उस दक्षता को सीखते हैं जिससे प्रत्येक को आनन्द की प्राप्ति होती है, जिससे परिवार और समाज, जिससे कि ये बच्चे सम्बन्धित हैं, को शान्ति और समृद्धि प्राप्त होती है। उन्हें यहाँ पर सुधारा जाता है, प्रशिक्षण दिया जाता है और उन्हें प्राचीन ऋषियों की महान संस्कृति से परिचित कराया जाता है। इस प्रकार यह एक क्षेत्र है और मुझे यहां आकर बच्चों से मिलने से प्रसन्नता प्राप्त हुई है। इस उत्सव में छात्राओं के अभिभावक विशेष रूप से माताओं, को भी बुलाया गया है इससे मुझे विशेष प्रसन्नता हुई है। क्योंकि उन्हें भी यह जानना चाहिए कि जिस विद्यालय में उनके बच्चे पढ़ते हैं वह और उसके अध्यापक कैसे हैं; तभी तो वे उनके प्रति आभार और कृतज्ञता प्रकट कर सकेंगी क्योंकि अध्यापकों ने उनका दायित्व बंटाया है।

सर्वप्रथम बच्चों के चरित्र को पवित्र और दृढ़ बनाना चाहिए। अच्छे ईमानदार, आत्मविश्वासी बनने के लिए बच्चों को जितने साहस और विश्वास की आवश्यकता है, उन्हें दिया जावे। उनके लिए पेट भरने का धन्धा सीख लेना ही पर्याप्त नहीं है, जीवनयापन का ढंग, जीवनयापन के स्तर से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। बच्चों

में अपने धर्म, संस्कृति, देश और शिक्षा के प्रति आदर भाव होना चाहिए। उन्हें अपनी मातृ-भाषा का अच्छा ज्ञान होना चाहिए जिससे वे इस देश के महान ऋषियों द्वारा प्रणीत उत्तम काव्यों और महा-काव्यों का अनुशीलन कर सकें। आगे आने वाले तूफानी युग में यह ज्ञान उनका पथ प्रदर्शन कर सकेगा। उन्हें अपनी मातृभूमि के प्रति प्रगाढ़ भक्ति भावना होनी चाहिए; क्योंकि भारत न केवल प्राचीन-तम बल्कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण से मानवता का सर्वश्रेष्ठ परम बुद्धिमान शिक्षक भी है। यहाँ उत्पन्न होने वाले प्रत्येक बच्चे का यह परम कर्त्तव्य है कि वह उस ज्ञान को जाने, माने, व्यवहार में लावे जिसके लिए भारत विश्व विख्यात है।

अल्पवयस्कों में मानव हृदय बहुत कोमल होता है। साथ के मनुष्यों के शोक दुःख में द्रवित हो जाता है। कालान्तर में जैसा माता-पिता, बड़ों के उदाहरण सामने आते हैं, संगति और समाज में वे जैसी शिक्षा पाते हैं, स्कूल में जैसा देखते सुनते हैं; उसी के प्रभाव से उनके हृदय कठोर और पाषाणवत् हो जाते हैं। इन हृदयों को कोमल ही बनाये रक्खो। दूसरों के सुख-दुख में हिस्सा बंटाओ। जब दूसरों का उत्कर्ष हो, वे पुरष्कार प्राप्त करें अथवा परीक्षा में उत्तम श्रेणी प्राप्त करें, तो ईर्ष्या न करो। उनके अध्यवसाय का अनुकरण करो। भगवान् से निर्मल बुद्धि और मेधा प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करो, परन्तु अपने हृदय में ईर्ष्या द्वेष को कतई स्थान न दो। ईर्ष्या एक भयंकर विष है, इससे चरित्र दूषित हो जाता है, स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और आपका आनन्द ही नष्ट हो जाता है। 'अनुसुइया' अर्थात् ईर्ष्या रहित बनकर आप ब्रह्मा विष्णु महेश को भी बच्चों की तरह अपने आधीन बना सकती हैं। जिस प्रकार बीमारी के कीटाणु फसल को चौपट कर देते हैं सावधान! उसी प्रकार ईर्ष्या की क्षीण रेखा भी आप में प्रवेश पा गयी तो बढ़ कर आपके हृदय को प्रेम, सहानुभूति,

दया आदि सद्गुणों से रहित बना कर विषाक्त कर देगी। इससे बहुत सावधान रहना है। अभिभावकों, को भी बच्चों के सुनने में परनिन्दा या पर-छिद्रान्वेण कभी नहीं करना चाहिए। और न ऐसा भाव प्रकट करने वाला व्यवहार ही करना चाहिए। श्री शैलम स्थित देवी का नाम "भ्रमरम्बा" है जो सदा शिव के चरणों पर उनकी महिमा और वैभव से आकृष्ट होकर मंडराती रहने वाली मधुमक्खी है; क्योंकि शिव का ही नाम मल्लिकार्जुन अथवा 'श्वेत चमेली' है। बच्चों के हृदय बड़े पवित्र और कोमल होते हैं। उन्हें स्वाभाविक रूप से सरलता से प्रभु चरणों की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है। क्योंकि उनमें विषय वासना का अंकुर नहीं उगा होता है जो कि उन्हें दिव्य महिमा की सुगंधि से वंचित कर सके। इन बच्चों के मुख मण्डल पर आलोकित आभा उनकी स्वाभाविक सरलता मृदुता और निश्छलता का प्रमाण है।

इन बच्चों के माता-पिता भी बधाई के पात्र हैं क्योंकि उन्होंने विद्यालय की शिक्षा के महत्त्व को जानकर अपने बच्चों को यहाँ आर्थिक और सामाजिक नाना प्रकार के कष्ट उठाकर भी शिक्षा के लिए भेजा है। मैं जानता हूँ कितनों ही ने तो अपने दैनिक भोजन में कमी करके अपने बच्चों को यहाँ की शिक्षा से लाभान्वित होने के लिए भेजा है। बच्चों को अपने अभिभावकों के इस प्यार और त्याग के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि उनके माता-पिता उनके लिए कितना कष्ट प्रसन्नता-पूर्वक उठा रहे हैं। वे तुम्हारे स्वास्थ्य और, निर्विघ्न जीवन के लिए तथा शिक्षा में सुन्दर परीक्षा फल के लिए प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं। मैं यह सब जानता हूँ क्योंकि वे मुझसे ही तो प्रार्थना करते हैं। तुम्हें ऐसा अध्ययन और आचरण करना चाहिए जिससे सुन, जानकर उन्हें भी प्रसन्नता हो। विवाह होने तक तो तुम उन्हीं की देख-रेख में हो; इसके पश्चात् तुम्हारा आचरण व्यवहार पति कुल का यश, मान बढ़ाने

वाले हों। यही धर्म है। धर्मपालन से ही भगवान् की कृपा प्राप्त होती है। माता-पिता ने तुम्हें यह शरीर देकर; इसमें बुद्धि ग्रौर प्रेम का पोषण किया है इसलिए तुम पर कृतज्ञता प्रदर्शन का दायित्व है। यदि तुम ग्रपने इन मानव रूप सृष्टाग्रों का समुचित सम्मान नहीं करती हो, तो उस परमपिता ग्रौर जगदम्बा के ग्रलौकिक दिव्य रूप की क्या पूजा करोगी ? इसके ग्रतिरिक्त ग्रभिभावक ही तो तुम्हें भगवान् की महिमा से परिचित कराते हैं ग्रौर उसकी ग्राराधना की पद्धति बताते हैं। शक्ति ग्रौर सत्ता जोकि प्रेम ग्रौर तुम्हारे प्रति सद्भावना से ओत-प्रोत है उसके ये प्रथम लौकिक प्रतिनिधि हैं। इनके प्रति विनम्रता ग्रौर भक्तिभाव रखने से ही तुम्हें भगवान् के प्रति भक्ति करना आवेगा। प्रारम्भ में डाली को जैसा झुकाव दिया जावेगा। कालान्तर में वृक्ष भी उसी को झुका हुग्रा विकसित और दृढ़ होगा।

विद्यालय की शिक्षा केवल ग्राहार, आह्लाद, रोज़ी रोटी की कमाई ग्रौर मनोरंजन तथा ग्रवकाश के उपयोग मात्र के लिए नहीं होती है। यह तो विवेक, वैराग्य ग्रौर विचक्षण जैसे दिव्य गुणों को सक्रिय बनाने के लिए व्यक्ति को दी जाती है, जिससे आपका व्यक्तित्व सत्य, धर्म, प्रेम ग्रौर शान्ति के आचरण में दृढ़तापूर्वक समर्थ हो सके।

यह फहराया गया झंडा तो भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की विजय का झंडा है। जब हम इसे विद्यालय के प्रांगण में फहराते हैं तो यह हमारे उस संकल्प की ग्रभिव्यक्ति करता है कि यह विद्यालय भी, ग्रपनी छात्राओं को भारत की प्राचीन ग्राध्यात्मिक महानता ग्रौर उत्तराधिकार के ग्रनुकूल ही विकसित ग्रौर शिक्षित कर सुसंस्कृत ग्रौर भारत के सुयोग नागरिक तैयार करने में, विजय प्राप्त करेगा। शिक्षा रूपी जड़ का सदाचार रूप फल होता है। ग्रन्यथा समस्त शिक्षा समय और धन की बर्बादी ही है। यह सरस्वती का मंदिर है। यह

देवी ही तो तुम्हें सुबुद्धि प्रदान करती है जिससे तुम परम सत्य का साक्षात्कार करने के लिए ज्ञान प्राप्ति करती हो और जो तुम्हारे अन्दर से अज्ञान को सदा के लिए नष्ट कर देती है। काशी की भगवती अन्नपूर्णा देवी से शंकराचार्य ने यही ज्ञान भिक्षा तो मांगी थी; न कि मुट्ठी भर चावल अपनी शारीरिक बुभुक्षा को शान्त करने के लिए।

द्रौपदी अपने सद्गुणों से ही अमर हो गयी है, भारतमाता ने अनेक ऐसी महान स्त्रियों को जन्म दिया है जिनकी बुद्धिमत्ता और पुण्याचार आज अनेक शताब्दियों से गाये जा रहे हैं। सीता, सावित्री, गार्गी, अनुसुइया, दमयंती इत्यादि स्त्रियों को लाखों ने अपने हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित कर रक्खा है और उनकी देवी की तरह पूजा की जाती है; लोग जब विपत्तियों में घिर जाते हैं तो उनसे प्रेरणा लेकर अपना जीवन आदर्श बनाये रखते हैं और सफल हुए हैं। ये देवियां सभी पीड़ितों के प्रति निर्मल प्रेम व दया भाव से व्यवहार करती थीं। वे कष्ट में पड़े और निर्धनों की सेवा में सदा लगी रहती थीं। उन्हें भगवान् में इतना दृढ़ अटूट विश्वास था कि महानतम कष्टों और विपत्तियों को उन्होंने ईश्वरेच्छा मानकर आनन्दपूर्वक स्वीकार किया। ऐसा विश्वास ही आपको भी शान्ति और शक्ति दे सकता है।

आपको अपने अध्यापकों के प्रति प्रेम और सम्मान रखना चाहिए। यह उस अनुशासन का प्रथम पाठ है जिससे उत्तम चरित्र का निर्माण होता है। उन्हें आपकी उन्नति से अपने कार्य में प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त होती है। आपकी गलतियों का सुधार करने में उन्हें असीम धैर्य से काम लेना पड़ता है। वे आपकी उंगली पकड़कर आपको ज्ञान की उस अद्भुत वाटिका की सैर कराते हैं जिसमें संसार और सृष्टा संबंधी अनंत ज्ञान के अगणित पुष्प खिले हुए हैं। यदि आप उनका उचित सम्मान नहीं करेंगी तो जो ज्ञान वे आपको देने को उत्सुक हैं

उसे कैसे हृदयंगम करोगी ? शिक्षण के बिना रक्षण संभव नहीं है, शिक्षा ही सुरक्षा की गारंटी है। यदि आप शिक्षित हैं तो आप उन प्रलोभनों से, जो आपको असत्य भाषण, पराये माल को हड़पने, झगड़ने और दूसरों की दुर्बलताओं अथवा अज्ञान से अनुचित लाभ उठाने को प्रेरित करते हैं, बच सकते हैं। अतः इन व्योवृद्धों से, जिन्हें आपकी शिक्षा का भार सौंपा गया है, अधिक से अधिक और उत्तम लाभ प्राप्त कर लो। इन्हें इस कार्य का विशेष प्रशिक्षण मिला है और अपनी दक्षता और सुविज्ञता के कारण ही इस पद पर नियुक्त किये गये हैं। यदि आप इनके प्रयत्नों का समुचित प्रत्युत्तर देंगी तो इनका उत्साह सदा ऊंचा रहेगा। प्राचीन काल में उपाध्याय, आचार्य का कथन ही सर्वोपरि होता था। अपने पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा में सम्राट भी आचार्य को स्वतंत्र रूप से शिक्षित करने, दण्ड देने में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे अपने पुत्रों को आचार्य को सौंपकर आचार्य के उस हर कार व्यवहार का समर्थन करते थे जो वे उन राजपुत्रों को शिक्षित करने और सुधारने के लिए करते थे। अध्यापक के विरुद्ध वे कभी भी अपने पुत्र के पक्ष का समर्थन नहीं करते थे। परन्तु आज तो बच्चे अध्यापकों के स्वामी बन गये हैं। वे अपनी शर्तें मनवाते हैं। यदि इन बच्चों के प्राप्तांक अच्छे नहीं होते तो अभिभावक अभागे अध्यापक के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ देते हैं, उसे तो शिष्य को दण्ड देने का अब कोई अधिकार ही नहीं रक्खा गया है। यही कारण है कि अब शिक्षा और विद्वत्ता का स्तर इस निम्नसीमा तक उतर आया है।

स्त्रियों के लिए आदर्श पद तो शान्ति का, पतिव्रता पत्नी और गौरवमयी माता का है। उनकी धर्मनिष्ठा ही प्रशंसनीय है। भारतीय विवाह का जो आदर्श है उसके अनुसार एक सम्पूर्ण का पति दक्षिणार्ध और पत्नी बामार्ध है। इस प्रकार एक ही अंग के पति और सती अर्ध-नारीश्वर शिव के समान अविभाज्य अंग हैं। एक दूसरे के परिपूरक हैं।

जब शंकराचार्य ने प्रसिद्ध कर्मकाण्डी विद्वान पंडित मण्डनमिश्र को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा तो इस बौद्धिक और धार्मिक वाक्ययुद्ध के निर्णायक के पद के लिए, जो तर्क और उनके प्रत्युत्तर की समुचित वैधता का विवेचन कर निष्पक्ष निर्णय दे सके, स्वयं पंडित मण्डनमिश्र की धर्मपत्नी 'उदयभारती' को इस पद के लिए उपयुक्त पाया गया। दोनों प्रतिस्पर्धियों ने सहमति व्यक्त की। उस विश्वास की जरा कल्पना तो कीजिए कि जिसके अनुसार भारती की बुद्धि, शास्त्र ज्ञान और निष्पक्षता को अडिग समझा गया जब कि स्वयं उसका पति ही एक पक्षधर था।

जबकि शंकराचार्य और मण्डनमिश्र अपने बौद्धिक संघर्ष में निमग्न थे। क्या भारती ने अपने गृहकार्य की उपेक्षा की? नहीं, वह बराबर पूर्ववत् अपने सभी गृहकार्यों को समय पर निबटाती रही। यही तो हिन्दू गृहिणी की सत्यता की खरी कसौटी है। वह एक विख्यात विदुषी थी, फिर भी वह पति, अतिथि के लिए रसोईघर में बैठकर व्यंजन तैयार करती थी मानो कि वह आदर्श गृहलक्ष्मी हो। ऐसा कहा जाता है कि उसने दोनों प्रतिस्पर्धियों को खिले हुए पुष्पों की एक-एक माला पहना कर अपने कार्य में लग गई थी। उसने घोषित कर दिया कि पराजित की माला के पुष्प जब कुम्हला जावें और विजेता की माला के पुष्प जैसे के तैसे नवीन सुरभित बने रहें तो दोनों शान्त होकर प्राकृतिक निर्णय को स्वीकार कर लें। अंत में जब उसका पति शास्त्रार्थ में हार गया, जैसा उसने माला के आधार पर पहले घोषित कर दिया था, तो वह स्वयं आगे आई और अर्धांगिनी के नाते, सहधर्मिणी के नाते शंकराचार्य को ललकारा कि बिना उसको पराजित किए, उनकी विजय अपूर्ण और संदेहास्पद है और उसने भी शास्त्रार्थ किया। क्योंकि वह भी तो अपने पति का बामार्ध और सहधर्मिणी थी।

आप सबके लिए यह भारती कैसा अनुपम और स्पृहणीय आदर्श है ! हमारे वेद, शास्त्र, उपनिषद्, संतों और ऋषियों के जीवन ऐसी अनेकों घटनाओं से भरे पड़े हैं जो तुम्हारे लिए पथ-प्रदर्शक प्रकाशस्तंभ के समान हैं। इन सबको पढ़ो, जानो और उनसे लाभ उठाओ।

कन्या बेसिक ट्रेनिंग स्कूल
(अनंतपुर) १८-४-६६

—०—

३७

अभेद्य रहस्य

भारतवर्ष के पुत्रों और पुत्रियों ने स्वराज्य तो पा लिया; अब वे एक समृद्ध भारत के निर्माण में संलग्न हैं। परन्तु ऐसे भी राष्ट्र हैं जो समृद्ध होते हुए भी सुखी नहींहैं। उन्होंने जो समृद्धि अपने लिए उपार्जित की है उसी के कारण वे भयभीत और चिन्तित हैं। व्यक्ति और समाज के लिए शान्ति की गारंटी आध्यात्मिक उन्नति और आध्यात्मिक साधना ही दे सकते हैं। भारतवर्ष के समान ही अन्य देशों में भी आज इन्हीं तथ्यों की घोर उपेक्षा की जा रही है। मकान, वस्त्र और भोजन की प्राप्ति से सुख और भौतिक प्रसन्नता मिलते हैं, कलाकौशल तथा विश्व संबंधी अन्य सूचनाओं का ज्ञान रखने से मनुष्य को रोजी-रोटी के साधन प्राप्त होते हैं।

परन्तु एक प्राचीन शास्त्रवाक्य है "न सुखाल्लभते सुखम्" अर्थात् वास्तविक स्थाई प्रसन्नता, भौतिक समृद्धि और सुख से नहीं प्राप्त की जा सकती है। स्थाई प्रसन्नता, जो सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से बढ़ती घटती नहीं, वह तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य अपने मन को उस उच्च सत्ता में अडिग विश्वास करके अनुशासित रखता है, कि जो हमारे सभी कार्य, वचन और विचारों को नियंत्रित कर सकती है। आध्यात्मिक जागरूकता के दीप को प्रज्वलित करके, स्नेहदान से सदा आलोकित रखना है जिससे मार्ग के प्रत्येक पग पर मानव बेखटके चल सके।

वेद शास्त्र यही कहते हैं कि मनुष्य कर्त्तव्य के द्वारा ही वह आनन्द

प्राप्त कर सकता है यदि वह कर्त्तव्य को ही पूजा मानकर उस एक समस्त विश्व में व्यापक ब्रह्म की सत्ता मानकर अर्पित होकर कर्म करे; क्योंकि तभी उसकी बुद्धि, संशय और भ्रम की धूलि से रहित होकर निर्मल हो पाती है और उसमें सत्य प्रतिबिम्बित होता है। "सर्वं विष्णुमयं जगत्" सारा ब्रह्माण्ड ही दिव्यता से ओतप्रोत है, संपृक्त है; उसी एक के अतिरिक्त यहां कुछ भी नहीं है। "ईशावास्य मिदं सर्वम्।" वही तो अभिन्न निमित्तोत्पादन कारण है इस विश्व का आधार, निर्माण, वस्तु पदार्थ तथा ढंग आभ्यंतरिक प्रेरणा और बाह्य गतिविधि सब वही एक है। यह शरीर ही भगवान का मंदिर है, इसका वातावरण स्वभावतः सभी प्राणियों के प्रति प्रेम से पूर्ण होना चाहिए। परन्तु अहंकार से पीड़ित होने के कारण मनुष्य ने इसे ईर्ष्या और लोभ से गंदा कर डाला है, इसी से इसमें अनेक तज्जन्य बीमारियां और संकट पनप रहे हैं।

काम, क्रोध मनुष्य के दुर्जय शत्रु हैं। वे मनुष्य के दैवी स्वभाव को निरंतर खोखला बनाते हुए उसे कीचड़ में घसीटते रहते हैं। रामायण की कहानी मंथरा के 'क्रोध' और शूर्पणखा के 'काम' के आसपास घटित हुई है। प्रत्येक जीव की रामायण भी इन्हीं दो प्रमुख दुष्ट विकारों से भरी हुई है। जब भी इनके दुष्ट प्रभाव, प्रसार की सूचना मिले, आप शान्त होकर एकान्त में विचार करें कि इस विकार का उद्गम कहां है, किस लिए यह आंधी उठ रही है। इसका क्या-क्या दुखद परिणाम हो सकता है जो आप पर या अन्य किसी पर बीतेगा। इन पर खूब मनन और तर्क कीजिए। आपको शांति और प्रकाश मिलेगा।

आजकल स्कूल कालेजों में भारत के बच्चों को वह अनुशासन और शिक्षा नहीं दी जा रही है जिससे वे सुख शान्ति, जो भारत की परम्परागत उत्तराधिकार की वस्तु हैं, प्राप्त कर सकें। यह स्थिति वास्तव में शोचनीय है। इसके प्रतिकूल वह हर बात, जो भय और चिन्ता की वृद्धि

करने वाली है; असन्तोष और विपत्ति की वृद्धि करने वाली होती है। सिनेमा, पुस्तकों, मेगजीन, नाटक, चित्रकारी, समाचारपत्र तथा आन्दोलनकारियों और राजनैतिक लोगों के भाषण और अन्य संचार साधनों से प्रोत्साहित की जा रही है। प्रत्येक के मस्तिष्क में इसको लेकर बड़ी चिन्ता है कि हमारे जीवन, यश धन और सत्ता का अगले क्षण क्या से क्या होने वाला है; देश में असुरक्षा की भावना वृद्धि पर है; घृणा और लोभ तो बहुत पहले ही से व्याप्त हैं। लोगों ने आत्मविश्वास का सुख खो दिया है; न उन्हें अपनी शक्ति में विश्वास है और न दूसरों की शक्ति का ही भरोसा है। आज का मानव सबसे सस्ती वस्तु बन गया है। अन्य हर वस्तु के मूल्य में वृद्धि हुई है। उसकी उपेक्षा बिना किसी भय या आशंका के की जा सकती है। वह न तो अपना मूल्य ही जानता है; और न महानता से ही परिचित रह गया है।

वह नहीं जानता है कि किस प्रकार अपने छोटे से छोटे कार्य को भी ईश्वर की कृपा प्राप्त करने में प्रयुक्त करे। वह उस रसायन विज्ञान से अपरिचित है कि जो प्रत्येक असफलता और निराशा को शरणागत होने के स्वर्णिम अवसर में बदल कर भक्ति के अभेद्य दुर्ग में परिणत कर देता है। क्षुद्र वासनाओं के सुख से लालायित होकर वह अपनी बहुमूल्य शक्ति को निरर्थक कार्यों में नष्ट करता रहता है। इससे उसके आत्म गौरव की हानि और शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का क्षय होता रहता है। अपनी मातृभूमि के महा-मानवों और पूर्वजों की महान परम्परा और आदर्शों के अनुकूल ही मानव को अपने जीवन को बिताने का प्रयास करना चाहिए।

इस संबंध में समाचारपत्र एक महान योगदान दे सकते हैं। परन्तु अभी तो उन्हें मनुष्यों की अश्लील रुचि की पूर्ति से ही फुर्सत नहीं है। तभी तो उनमें का साहित्य अगले दिन रद्दी समझा जाता है। पिछले

महीने मैं महाराष्ट्र में था जहां लाखों लोग दर्शन पाकर तुष्टि लाभ कर रहे थे। और हजारों श्रोतागण वेद, शास्त्रों के मौलिक सिद्धांतों पर मेरे प्रवचन और प्रशान्ति निलयम् की विद्वान् महासभा के सदस्यों के भाषणों से लाभान्वित हो रहे थे। इन विद्वान वक्ताओं को भारत के शानदार दिव्य अतीत के प्रति मानवों को प्रेरित करने का भार सौंपा गया है। मैं मंत्रियों, जजों, उच्चस्तर के व्यापारियों, डाक्टरों, वकीलों, संपादकों तथा इसी कोटि के अन्य लोग जो महाराष्ट्र, सौराष्ट्र और देहली में धर्म संस्थापन कार्य से संबंधित थे, विचार-विमर्श कर रहा था। देश के इस भाग के समाचारपत्र उन मनगढ़न्त झूठ अनर्गल कहानियों को ईजाद करके मेरे विषय में लोगों को गुमराह कर रहे थे। अत्यंत निम्न-कोटि के ईर्ष्या और द्वेष मूलक घृणित आविष्कार गढ़-गढ़ कर यहां के अखबार निर्लज्जतापूर्वक छापकर अपने कलुषित हृदय का परिचय देते रहे। ऐसी बदनामी तो सदा से ही महान पुरुषों को प्राप्त होती रही है। बीते हुए युगों में भी मेरा यही अनुभव रहा है। शिशुपाल के यह वंशधर निष्क्रिय अथवा निठल्ले कैसे बैठ सकते हैं? परन्तु क्या मनुष्य दुष्टता की इस निम्न सीमा तक पतित हो सकता है? मैं तो निन्दा-स्तुति की चिन्ता नहीं करता; मुझे उन लोगों पर केवल दया ही आती है जो गरीबों से चन्द पैसे बटोरने के लिए ऐसे घृणित उपायों का सहारा लेते हैं। उन सभी लोगों के लिए, जो ऐसे मानवेतर कुकृत्यों से दुखी होते हैं, मैं यह घोषित करता हूं, "चाहे चौदहों लोक संगठित हो जावें फिर भी जिस कार्य के लिए मैं आया हूं वह रंचमात्र भी रुक नहीं सकता चाहे आकाश पाताल एक हो जावे मेरा सत्य कभी भी पूरी तौर पर नहीं जाना जा सकता।"

इन द्वेष जनित सफेद झूठों पर कतई ध्यान न देते हुए मैं आपको सत्संग संगठित करने की मंत्रणा देता हूं जहां आप एकत्रित होकर सत्य विचारों और पुण्य चर्चाओं का आदान प्रदान करें। वहीं आप सत्छास्त्र

और भगवान् की महान लीलाओं को श्रवण करें। पर निन्दा और व्यर्थ आलोचना में अपना अमूल्य समय क्यों बरबाद करते हो ? दूसरों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध इत्यादि उत्पन्न करना एक ऐसी बुरी लत है जो कर्त्ता को ही लौटकर विध्वंस करती है। प्रत्येक में वही दैवी चिनगारी है इसीलिए पड़ोसी का छिद्रान्वेषण दैवत्व का छिद्रान्वेषण होता है।

जीवन रूपी खेल तभी मनोरंजक और स्पृहणीय है जबकि इस खेल के कुछ नियम और सीमायें भी हों जो इसे सीमित और नियमित करती हों। असीमित मैदान में बिना किसी नियम के फुटबाल के खेल की कल्पना कीजिये। सिवाय धक्कम-धक्का और भगदड़ के अतिरिक्त क्या हो सकता है ? यह तो दंगा या खुल कर युद्ध ही तो होगा। कोई नहीं कह सकेगा कौन जीता, कैसे जीता। धर्ममार्ग और ब्रह्ममार्ग क्रीड़ास्थल की सीमाएं हैं। सद्गुण दुर्गुणों से संघर्ष करते हैं। खेल के नियम "फाउल" "आउट" का पालन करते हुए खेल खेलो।

अनन्तपुर कन्या हाई स्कूल
(स्कूल दिवस) १८-४-६६

—०—

३८

फल की मिठास

अधिकांश व्यक्ति अपना जीवन बहुमूल्य हानिकर भोजन करने और मद्यपान, सौंदर्योपभोग जैसी हानिप्रद लतों में गुजार देते हैं। बहुमूल्य जीवन का कैसा भीषण दयनीय अपव्यय होता है। प्राणिवर्ग का होते हुए भी मानव अन्य प्राणियों से मानसिक, भौतिक और नैतिक क्षेत्र में उनसे कहीं उच्चस्तर का जीव है। मानव में स्मृति, भाषा, चेतना, श्रद्धा, सम्मान, आश्चर्य और अनिर्वचनीय असन्तोष जो कि वैराग्य का अग्रदूत होता है, पाये जाते हैं। जो रहस्यपूर्ण अस्तित्व इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त है उसके साथ वह तादात्म स्थापित कर सकने का अपूर्व संयोग भी पाता है; परन्तु वह अज्ञान में इतना डूबा है कि वह पशुओं के समान ही आचरण करता है जैसे कि वह भी एक पशु ही हो और शोक और पाप पंक में लोट रहा है। यह तो ऐसा ही है कि मानो अग्नि अपने दाहक और जल अपने आर्द्र तादायक गुणों को ही भूल गये हों। मानव तो दैवत्व में लीन हो सकने की क्षमता विश्वजनीन व्यापक सत्य को खोज सकने का गुण ही खो चुका है; यद्यपि वह भी उसी सत्य का एक अणु है। अपने में सद्‌गुण, न्याय, प्रेम, सहानुभूति और व्यष्टि से समष्टि की ओर जाने की क्षमता भी मानव में अब घट गई है। इस संसार को संचालित करने वाली परम शक्ति से एकत्व प्राप्ति करने का चरम लक्ष्य ही भुला दिया है यद्यपि वह यह सब पा सकता है। व्यास पूर्णिमा को व्यास का स्मरण करते हुए उनके प्रति सम्मान प्रकट किया जाता है। यह व्यास ही थे जिन्होंने पुनः मानव के समक्ष भाग्य, अनुशासन, संयम का भुलाया हुआ पाठ प्रस्तुत किया और अनेक पुराणों और धर्मग्रन्थों को रचा।

व्यास ने वेदों का सम्पादन किया, ब्रह्मसूत्र वेदान्त की शिक्षा देनेवाली ओजस्वी रचनायें की। उन्होंने महाभारत जैसे महाकाव्य की, जिसमें वेद-वेदान्त की शिक्षाओं का अपूर्व संयोग करके दर्शन शास्त्र की शानदार परम्परा को भी संगोफन किया है, रचना करके समस्त मानव जाति को अपना ऋणी बना गये हैं। भगवद्‌गीता में मधुर भक्ति रस से पूर्ण दार्शनिकता से ओतप्रोत काव्य का संग्रह किया है। इनमें से प्रत्येक ही मानव को मुक्ति प्रदान करने में समर्थ है, यदि मनुष्य उनकी शिक्षाओं को अपने आचरण में उतार ले तो। ब्रह्मसूत्र तो भले ही कुछ सीमित संख्या में बुद्धिवादियों को लाभान्वित करें; परन्तु महाभारत और भगवद्‌गीता तो सर्वसाधारण के ही लिए हैं, जिसे कि विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है उसके लिए भी है। यदि अधिक जल्दी नहीं तो भी वे उतनी ही अच्छी तरह और शीघ्रता से लाभप्रद सिद्ध होती हैं जैसे कि अन्य धर्मग्रन्थ होते हैं। वेद-वेदान्त को यदि एक रुपये का सिक्का या नोट मान लें तो महाभारत जैसे पुराण और भगबद्‌गीता, १०० पैसों की तरह हैं जिनका उतना ही मूल्य है क्योंकि एक रुपया भी १०० पैसों के बराबर ही होता है।

पुराण और महाकाव्य लोगों को भक्ति-मार्ग और शरणागति की शिक्षा देते हैं। ये ग्रन्थ मानव को अपना हर कार्य समर्पण की भावना से करने का उपदेश देते हैं। जिस पात्र को आपने आनन्द से भर लिया है उसे यदि आप सन्देह रूपी वायु अथवा निराशा रूपी सूर्य के लिये खुला छोड़ दोगे तो वह आनन्द भाप बन कर उड़ जायेगा और पात्र रिक्त रह जावेगा। उस पात्र को तो सत्कार्य और सत-संगति के शीतल जल में रखना है, तभी वह बिना घटे सदा सुरक्षित रह सकेगा मौन रहकर जब आप मनन करेंगे तो आनन्द में बृद्धि होगी; उन परिस्थितियों को, जिनमें आनंद उत्पन्न हुआ था, पुनः दोहराओ। इसीलिये तो आध्यात्मिक प्रयास में मनन को इतना उच्च स्थान दिया गया है। उस शिशु

की तरह जो अपने खिलौने फेंक कर रोने लगता है, आप भी यश और सौभाग्य के खिलौनों की क्षुद्रता का अनुभव कीजिये और "मां" को पुकारिये। बच्चा जानता है कि 'मां' के प्यार की तुलना में अन्य सभी कुछ हेय है। उसकी उपस्थिति ही एक महान वरदान है। इससे कम के लिये तो कभी कल्पना ही मत कीजिये।

राजा भोज के दरबार में वरिष्ठ कवियों और पंडितों ने कालिदास का अपमान किया क्योंकि वे लोग कालिदास की उपलब्धियों और विद्वता से ईर्ष्या रखते थे। वह निर्धन थे इसीलिये वे पंडित लोग उनसे घृणा करना भी उचित समझते थे। जब तालाब भरा होता है तो मेढक किनारे पर निकल कर खूब टर्राते हैं; जब तालाब सूख जाता है तो कोई मेढक उसके किनारे पर नहीं उछलता है। वरिष्ठ लोगों ने कालिदास के संबंध में बदनामी की बातें फैलायीं और उन्हें दरबार से निकलवाने का प्रयत्न किया।

कालिदास जानते थे कि एक ही व्यक्ति ऐसा है जो घमंड और ईर्ष्या से रहित है; और वह है "काली", जगदम्बा। इसलिये वे काली के मंदिर में गये और 'मां' से प्रार्थना की कि उन्हें कवियों और विद्वानों की सभा में उच्च स्थान प्राप्त होने का वरदान मिले। दीर्घ काल तक गम्भीर उपासना के पश्चात् कालिदास ने मंदिर में एक आकाशवाणी सुनी इसमें दंडी और भवभूति की विद्वत्ता और मौलिकता की प्रशंसा थी। उनके संबंध में एक भी शब्द नहीं था। उन्हें दुःख और क्षोभ हुआ; और उन्होंने इसको व्यक्त करते हुये पुनः प्रार्थना की 'माँ' सत्य को प्रकट करदे फिर चाहे जैसा कटु और अप्रिय ही क्यों न हो। तब आकाशवाणी हुई कि "त्वमेवहं, त्वमेवहं, त्वमेवहं न संशय" अर्थात् 'मैं ही तुम्हारे रूप में हूं' ऐसा तीन बार घोषित किया गया। इससे अधिक उच्चस्थिति की कालीदास क्या कल्पना कर सकते थे? यही उत्तर

हर एक मुमुक्षु को मिलेगा, क्योंकि वही तो वास्तव में उसका सत्य, स्वरूप पुरष्कार और पूर्णत्व की प्राप्ति का द्योतक होगा।

कालिदास की प्रत्युत्पन्नमति की अनेक कथायें प्रचलित हैं कि किस प्रकार उन्होंने अपने विरोधियों की चालों को अपनी चतुराई से विफल करके पराजित कर दिया। परन्तु उनकी भक्ति उनकी युक्तियों से कहीं अधिक महान थी। मुझे एक गृहस्थ की युक्ति का स्मरण हो आया है। जब रात्रि में चोरों ने उसके मकान में सेंध लगाई तो वह जाग गया और चोरों को सुनाते हुये जोर जोर से अपनी पत्नी से कहने लगा कि "तुम मुझे इस समय उन सब आभूषणों के लिये क्यों सता रही हो वे तो मारवाड़ी के यहां गिरवीं रक्खे हैं ? मैं जानता हूं कि तुम्हारे पास का सभी सोना निकल गया है, परन्तु आज तो मेरे पास एक रुपया भी नहीं है। अच्छा समय आने दो, मैं उन्हें अवश्य छुड़ा कर तुम्हें वापस ला दूंगा। परन्तु इस समय क्या हो ?" आपको बताने की आवश्यकता नहीं है कि चोर किसी दूसरे मकान में सेंध लगाने चले गये और उस मकान को त्याग दिया जिसमें "न तो सोना था और न एक रुपया था।"

आध्यात्मिक मामलों में ऐसी चतुराई से कोई लाभ नहीं होता, वहां तो सभी तिकड़में और दिखावट बाधा बन कर प्रगति में सहायता की अपेक्षा बाधा ही सिद्ध होती हैं। जब चालाकी, धूर्तता की वृद्धि से सत्यता और ऋजुता का आध्यात्मिक मामलों में अवरोध होता है और मानव और माधव के बीच सम्बन्धों में बाधा उत्पन्न हो जाती है तब अवतार को यहां आना पड़ता है। जैसा कि मैसूर के स्वास्थ्य मंत्री ने अभी कहा है, चतुराई कपट में पतित हो जाती है और मनुष्य को भुला देती है कि भगवान् ही तो प्रेरक हैं।

तुम्हारे पास बहुमूल्य ट्रांजिस्टर, घड़ी या ग्रामोफोन हो और आप उनका दक्षता से प्रयोग करना न जानते हों तब तो वे एक भारस्वरूप ही होंगे। अब आप सोचिये आप स्वयं कितने अद्भुत यंत्र हैं। क्या आपको इस यंत्र को संचालित करने और सर्वोत्तम प्रयोग द्वारा अभीष्ट फल प्राप्त करना नहीं जानना चाहिये ? चांदी की मूंठ वाली तलवार से कहीं सब्जी काटी जाती है ? भारतीय ऋषियों ने इस मानवीय यंत्र को प्रयोग करने की कला खोज ली थी; परन्तु उनके वंशजों ने उस कला को अवनत हो जाने और भुला देने का काम किया है।

आज गुरुओं की इस कला के सीखने में न कोई रुचि है, न इसके प्रयोग के लिये उनमें कोई योग्यता है, और न इसको पुनः खोजने का उनमें कोई उत्साह ही है। जनता के नेता लोग, जो सरकार के तंत्र पर हावी हैं, इससे अपरिचित हैं। यदि लोगों में इस ज्ञान की पिपासा हो तो एक भी ऋषि या ज्ञानी पर्याप्त है जो इस कला में पारंगत और व्यवहार में दक्ष हो। उस ज्ञानी के ज्ञान से अनेकों अपने अपने दीपक आलोकित कर सकते हैं। व्यास ऐसे ज्ञानियों में से एक और अग्रणी थे। इसी से तो उन्हें स्वयं भगवान नारायण ही के रूप में वर्णित किया गया है।

भागवत की शिक्षाओं पर चलने से आपके अन्दर का तमस् राजस् में और राजस् पवित्र होकर सत्वगुण में परिवर्तित हो जावेगा। यह तो फल की तरह सूर्य और पृथ्वी के संयुक्त प्रभाव से पहले पूर्णतया खट्टा, फिर अंशतः मधुर और अंतिम अवस्था में सुगंधियुक्त पूर्णतया मधुर रसीला फल बन जावेगा; इसमें तीन स्थितियाँ होती हैं। इसी प्रकार मानव भी अपनी आंतरिक आकांक्षा और बाहर से भगवत् कृपा के फलस्वरूप पूर्णत्व की स्थिति में मधुर आनंद और प्रेम का स्वरूप ही बन जाता है।

प्रशान्ति निलयम्
गुरुपूर्णिमा २-७-६६

३६

अतल-गर्त्त

दृष्ट के प्रति असाधारण अनुरक्ति रखने से मानव "अदृष्ट" क्षेत्र के प्रति अपरिचित विदेशी जैसा व्यवहार करने लगा है। परन्तु अदृष्ट ही तो दृष्ट का आधार होता है, जो कि दृष्ट को स्थायित्व और मान प्रदान करता है, जोकि सत्य और वैध होता है। अगणित संतों और गुरुओं की शताब्दियों में दी गई चेतावनी के बावजूद आज इस भारत का मानव भी दृष्ट के लिए अदृष्ट को त्याग चुका है। अदृष्ट ही एक मात्र ऐसा है जो सन्तोष और साहस देता है जिससे मनुष्य सौभाग्य और दुर्भाग्य का सामना करने में समर्थ होता है। इसकी उपेक्षा करने से ही आज असन्तोष और संकट प्रत्येक हृदय और प्रत्येक घर में व्याप्त है।

भक्ति का विकास कर लो और तुम स्वतंत्र हो जाओगे। क्योंकि तब तुम्हारा बोझा भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं। उन सभी लोगों के लिए, जो भगवान् के प्रति समर्पण करके उसकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं, रामायण एक महान् ग्रन्थ है। प्रारम्भ से अन्त तक उसमें उन सभी स्थितियों का उदाहरण सहित वर्णन आता है जोकि शरणागत भाव को उत्पन्न करती हैं और परिपक्व करके चरम स्थिति तक पहुँचाने वाली होती हैं और तब पूर्ण होते ही भगवान् की कृपा भी प्राप्त होती है। लक्ष्मण एक उत्तम उदाहरण हैं। उन्होंने भगवान् के समीप रहने के लिए, और सेवा करने के लिए सुख के प्रत्येक साधन का त्याग कर दिया था। जंगल में एक बार भगवान् ने उन्हें पर्णकुटी

बनाने के उपयुक्त स्थान खोजने का आदेश दिया जहाँ वह समय बिता सकें और रह सकें। लक्ष्मण के आँसू निकल पड़े; जब उन्होंने यह शब्द सुने। उन्हें ऐसा लगा मानों कि भगवान् परोक्ष रूप में यह संकेत दे रहे हैं कि "अब तुम स्वयं सोचने और कार्य करने में स्वतंत्र हो"। उन्होंने तो अपनी इच्छा भी भाई को अर्पित कर दी थी और वे केवल आदेश को कार्यान्वित करना मात्र जानते थे; उन्होंने तो स्वतंत्र चिंतन अथवा निर्णय ले सकने की भावना को त्याग दिया था।

पूर्ण शरणागति का दूसरा उदाहरण विभीषण है। रावण के तो अनेक मंत्री उसकी चापलूसी करने और इच्छापूर्ति में सहयोग करने वाले थे। उनमें से प्रत्येक ने रावण को राम से भिड़ जाने, और चुनौती देने और सीता को अपने लिए रोक रखने की मंत्रणा दी। विभीषण ने, जो रावण का सगा भाई था, रावण की भर्त्सना उसकी स्वेच्छाचारिता और आसक्ति के लिए की और उससे आग्रह किया कि वह सीता को सुरक्षित अवस्था में राम को लौटा कर अपनी, अपने राज्य की और अपने परिवार की रक्षा करें। जब विभीषण राम से जा मिले तो राम जानते थे कि विभीषण का हृदय शुद्ध है जोकि लंका के विषाक्त वातारण में नहीं निभ सकता था। इसलिए उन्होंने उसे शरण में ले लिया और रक्षा की। भगवान् स्वयं को अन्य नामों की अपेक्षा आर्त-त्राण-प्राण नाम से पुकारा जाना, अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि जब वे किसी कष्ट में पड़े हुए का उद्धार कर पाते हैं तो बड़े प्रसन्न होते हैं। देखो, उन्होंने सुग्रीव की भी प्रार्थना स्वीकार कर ली, जबकि सुग्रीव उनकी शक्ति की परीक्षा ले लेने के पश्चात् ही शरणागत हुए थे। वे तो सुग्रीव का उद्धार करना चाहते थे क्योंकि बेचारे की स्त्री राज्य, सभी कुछ, बालि के द्वारा अपहरण कर लिया गया था, इसीलिए भगवान शंकालु भक्त द्वारा परीक्षा लिये जाने के लिए भी तैयार हो गये थे। भरत ने अपनी मां, राज्य, सम्पूर्ण संपत्ति

और सत्ता त्याग कर निर्धनता और कष्टमय जीवन बिताना अधिक पसन्द किया था वे केवल 'राम के बनवास' संबंधी विचारों में डूबे रहते थे। जो-जो वस्तुयें उनके भाई को बन में नहीं प्राप्त हो सकती थीं, उनसे भरत ने भी कोई सुख सुविधा उठाना त्याग दिया। निरंतर राम का ध्यान करने से भरत के शरीर का वर्ण भी राम ही के समान हो गया था।

भगवान के हाथों में एक यंत्र बन जाओ। जिस कार्य के लिए भगवान तुम्हारा प्रयोग करना चाहें, उसी कार्य को अपने द्वारा होने दो। कोई भगवान की इच्छा को रोक ही कैसे सकता हैं? एक व्यापारी ने एक मल्लाह से उसके पिता और प्रपितामह की मृत्यु के कारणों के संबंध में पूछा। उत्तरों से स्पष्ट हुआ कि पिता, पितामह तथा उनके प्रपितामह तक सभी की मृत्यु, किसी न किसी विधि, समुद्र पर ही हुई थी। इसलिए मल्लाह से अगला प्रश्न यह पूछा गया कि क्या वह इस पर भी सामुद्रिक जीवन से भय नहीं मानता है। प्रत्युत्तर में मल्लाह ने पूछ लिया कि व्यापारी के पूर्वजों ने कहाँ शरीर छोड़ा था। उसे उत्तर मिला कि उन सभी लोगों ने सुख से शय्या पर प्राण त्याग किये थे। तब मल्लाह ने पुनः पूछा कि व्यापारी प्रति रात्रि को शय्या पर जाते हुए भयभीत नहीं होता है? और मृत्यु के समय पूर्वजों को जो सुख अथवा दुख हुआ होगा उसके अनुभव तो उन्हीं लोगों को हुए होंगे। व्यापारी कैसे कह सकता है कि सुखपूर्वक प्राण त्याग हो सके अथवा दुखपूर्वक। मृत्यु तो सभी की, कहीं न कहीं, और किसी न किसी प्रकार होती ही है; परन्तु बुद्धिमानों को अन्त समय से पूर्व भगवान के दर्शन की झलक प्राप्त हो जाती है। यदि आप अपने अन्तःकरण में भक्ति की शीतल धारा प्रवाहित रक्खेंगे तो चिन्ता की अग्नि से आपको कोई हानि नहीं पहुँच सकती। तब प्रत्येक बार की विपत्ति एक नया अर्थ रखने लगेगी, भगवत्कृपा के समान लगेगी, जोकि आपको दृढ़

करने, परिपक्वता लाने के लिए, जिससे आप भगवान के कार्य के लिए उपयुक्त हो सको, भगवान की भेजी हुई लगेगी। जैसे लकड़ी को शीत, घाम, जल, वायु से संयुक्त करके उपयोगी (seasoned) बनाया जाता है ठीक उसी प्रकार आपको भी सीजनिंग की प्रक्रिया से होकर जाना है।

एक कुत्ता सड़क पर सुख से लेटा हुआ था। आपने भी इसी प्रकार देखा होगा कि प्रायः कुत्ते सड़क पर के संकटों और दुर्घटनाओं की चिन्ता न करके, अपने लिए उस व्यस्त और दुर्घटनापूर्ण स्थान पर एक टापू सा अनुमान करके यातायात के मध्य में ही लेटे रहते हैं। किसी ने कुत्ते से पूछा कि अपने आराम के लिए उसने वह स्थान ही क्यों पसंद किया। उसने कहा कि वह ज्ञात करना चाहता था कि पैदल यात्रियों में कौन सज्जन और कौन दुर्जन हैं। दायें, बायें पर्याप्त स्थान रहने पर भी, कुछ लोग उसे ठोकर मार कर चले जाते हैं, कुछ एक को अपने दुष्ट स्वभाव से इसी में मनोरंजन का अनुभव होता है कि वे उसे भगाकर ही चैन लेते हैं जबकि सज्जन उसे बचाकर निकल जाते हैं और अपना समय भी नष्ट नहीं करते हैं। वे लोग अपने काम से काम रखते हैं और सड़क पर मिलने वाली वस्तुओं से न तो आकर्षित होते हैं और कोई वास्ता रखते हैं क्योंकि वे तो उनकी यात्रा में देर करने वाली बाधायें ही हो सकती हैं। कुत्ते ने सच ही तो कहा कि जो लोग दूसरों के एकान्त और शान्ति में बाधा डालते हैं वे वास्तव में अपनी ही उन्नति में स्वयं बाधक बनते हैं।

इन्द्रियों का संयम और वशीकरण ही मुख्य कार्य है। यदि भौतिक और पार्थिव वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और मृदुतान में इन्द्रियों को स्वेच्छाचारी होने दिया गया तो यह अतल-गर्त में गिरने के समान होगा। यह तो खजाने को, सोने की संदूकची में सोने का

ताला लगाकर, सुरक्षित समझने के समान है। इस प्रकार तो चोर को चोरी के लिए और अधिक प्रोत्साहित करना है।

गीता में भक्ति, ज्ञान और कर्म को "योग" की संज्ञा दी गयी है, और 'योग' शब्द की व्याख्या पातंजलि पहले ही कर चुके हैं, "चित्त-वृत्ति निरोध" अर्थात् मन और चेतना की उड़ानों की समाप्ति, मनो-विकारों और क्षोभों को शान्त कर साम्यभाव में स्थित हो जाना। विष्णु, इस प्रशान्त भाव के सर्वोत्तम उदाहरण हैं "शान्ताकारं भुजग-शयंन" सहस्र फन वाले सांपों की शय्या पर, समुद्र के बीच जो शान्त मुद्रा में शयन करे वह कितना महान, अविचलित और प्रशान्ति में स्थित है। सांप तो अपने विष दन्तों सहित पार्थिव जगत की वस्तुओं का प्रतीक है। जगत के मध्य में, जगत का न होना, उसके बंधन में न आना यही रहस्य है। मारीच को जब मृत्यु का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ तो उसे जीवन की कोई लालासा न रही, और राम के हाथों मृत्यु पाने तक उसका ध्यान राम के दिव्य रूप में ही स्थिर रहा। वह जानता था कि राम तो "विग्रहवान धर्म" ही हैं। उन्हीं की आकृति धर्म का स्वरूप है। इसलिए उसने इस अवसर को जुटाने के लिए रावण को धन्यवाद दिया कि जिससे उसे राम के हाथों उनके बाण से मृत्यु प्राप्त हो सकी।

इन्द्रियों, मनोविकारों और क्षोभों पर विजय प्राप्त करना एक कठिन, और धीरे-धीरे की प्रक्रिया है; जो कि व्यवस्थित अध्यवसाय से निरंतर प्रयास करने से सम्पन्न होती है। उदाहरण के लिए क्रोध को ही ले लो। एक विशालकाय पुष्ट शरीर वाला पहलवान था जो अनेकों प्रतिद्वन्दियों पर विजय पाने के घमंड में अपनी शक्ति के मद में मस्त सड़कों पर ऐंठकर अकड़ के चलता था। जब वह जा रहा था तो एक अधेड़ स्त्री उसकी आकृति और विशाल काया पर हंस दी। पहलवान ने

क्रोध से दाँत पीसे और उस पर प्रहार के लिए तन गया। तत्काल उस स्त्री ने ताना मारा, "तुम में तो इतना भी बल नहीं है कि एक स्त्री की हँसी को भी शान्ति से सह सको ?" लज्जा से पहलवान का मस्तक झुक गया। सहनशीलता तो सर्वोत्तम साधना है और साहस अग्रगण्य साधना है। शास्त्रों द्वारा यही महान पाठ पढ़ाया जाता है।

मनुष्य दूसरों की अथवा उस भगवान की, जो घट-घट में रम रहा है, कैसे सेवा कर सकता है जबकि उसकी इन्द्रियां सेवा से पृथक घसीटती हैं अथवा उसके मनोद्वेग उसके सेवाभाव को कलंकित करने को उसके मन में उमड़ते हैं ? लोकेश तो लोक में आनन्द का वितरण करने में संलग्न हैं। भगवान के कार्य में भागीदार बनने और सहयोग करने का यही तो मार्ग है। प्रत्येक नीच कार्य से मनुष्य का पतन समीप आता है। रावण सीता को हर ले गया था। लोग आश्चर्य कर सकते हैं कि वह दैवी प्रकोप से भस्म क्यों नहीं हो गया, अथवा पति-व्रता के क्रोध से वह नष्ट क्यों नहीं हो गया ? परन्तु जो तपस्या वह पहले कर चुका था, और जो-जो वरदान देवताओं ने रावण को दे रक्खे थे वह दीर्घकाल तक उसके रक्षा-कवच का कार्य करते रहे। रावण को तो अपनी ही करनी और दुष्टता से सर्वनाश का दृश्य देखना पड़ा। भगवान् तो केवल साक्षी मात्र रहे, वह तो सभी प्रकार से घृणा, क्रोध, 'मैं' और 'मेरे' की आसक्ति से ऊपर हैं।

लंका का राक्षस वर्ग यज्ञ और योग की क्रियाओं में पारंगत था। उस द्वीप में प्रत्येक घर धार्मिक कृत्यों में किये गये अग्नि होत्र के धूम से सुवासित होता रहता था। यह वरदान प्राप्त करने का कर्म पथ था, परन्तु धर्म से रहित होने के कारण उनके विनाश का कारण बना। भोजराज ने अपने दरबार में एक बार धर्म और कर्म पर विचार गोष्ठी की। कर्म-धर्म और ब्रह्म आध्यात्मिक उन्नति की तीन स्थितियां होती

हैं। यह देखा गया है कि विकास क्रम की उपयुक्त स्थिति में तीनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण होती हैं। कविगण 'देही' शब्द का प्रयोग करके राजा से संरक्षण और भरण पोषण की याचना करते रहते थे। कालिदास ने एक बार इसी शब्द 'देही' की इस प्रकार व्याख्या की, "वे आप से नहीं मांग रहे हैं, वे तो 'देही' शब्द से आपको संबोधन कर रहे हैं अर्थात् जो शरीर धारी है, अथवा जिसने भौतिक सज्जा के रूप में अपने को शरीर रूपी खोल में रख छोड़ा है; "आत्मा"। वे तो आपको स्मरण दिला रहे हैं कि आप तो शरीर रूपी घर में रहने वाले हैं, घर अथवा शरीर नहीं हैं, जैसा कि आपने शरीर और अपने को पर्याय समझ लिया है"। एक बार एक कवि सहायता पाने के लिए भोज के दरबार में गया। जब सम्राट ने उसे एक थैली भेंट करना चाही तो उसने अस्वीकार कर दिया, है क्योंकि उसने निवेदन किया, "आप मुझे कोई भी ऐसी वस्तु देने की कृपा करें जो आपके अपने पसीने की कमाई से हो, न कि कोई ऐसी वस्तु दें जो दूसरों के परिश्रम और पसीने की कमाई हो और आपने अपने अधिकार से हड़पली हो"। राजा ने उसके तर्क को सराहा और दूसरे दिन के लिए पधारने का उसे निमंत्रण दिया। आदेशानुसार जब कवि दूसरे दिन आया तो राजा ने उसे १६ पैंसे दिये जो उसने एक लौह कार्यालय में काम करके कमाये थे लाल लोहे पर घन चलाकर इतनी ही कमाई कर सका था। कवि ने हाथ बढ़ा कर वह दक्षिणा स्वीकार कर ली। परन्तु एक आश्चर्य यह हुआ कि वह अब ताँबे के पैसे न होकर स्वर्णमुद्राओं में परिवर्तित हो गये थे। राजा के परिश्रम से वे शुद्ध सोने के सिक्के बन गये थे। जो ईमानदारी की कमाई हो उसी में से दान-दक्षिणा देनी चाहिए। तब 'देही' देह चेतना रहित होकर देता है। संस्कृत भाषा में 'देही' शब्द का अर्थ 'दीजिए' भी होता है। इसीलिए 'देहि' और 'देही' की इस व्याख्या का इतना मार्मिक रहस्यपूर्ण अर्थ कालिदास ने किया था।

प्रशान्ति निलयम् ३-६-६६

४०

यह बैंक और वह बैंक

मुझे प्रसन्ता है कि स्टेट बैंक आफ इन्डिया यहां प्रशान्ति निलयम क्षेत्र में अपनी एक शाखा खोलने जा रही है। पुरुषार्थ चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से अर्थ भी एक है। अतः यह मानव प्रयास का एक वैध उद्योग है। इन के क्रम को जानबूझ कर इसी प्रकार निर्धारित किया गया है। धर्म के द्वारा अर्थोत्पादन, संचय, व्यय, दान, भोग आदि क्रियायें अनुशासित होनी चाहियें। मोक्ष के द्वारा 'काम' इच्छाओं को संयमित और सीमित होना चाहियें। उन सभी श्रोतों से, जो अधर्म से कलंकित हैं, प्राप्त धन को तिरष्कृत करना चाहिये, ऐसी कमाई मानव के लिये उचित नहीं होती है। उन सभी इच्छाओं को जो मानव की महान इच्छा—मुक्ति की ओर ले जाने वाली अथवा पूरक नहीं होती, मानव की गरिमा से हीन समझकर, त्याग देना चाहिये। इसलिये आध्यात्मिक आधार, धर्म और मोक्ष की आधार शिला पर ही अर्थ और काम की नींव रक्खी जानी चाहिये। इसके बिना, कमाई लूट में और काम पूर्ति मृत्यु में परिणत हो जाती है।

यह बैंक आपकी कमाई को, जब आप जमा करा देते हैं, अपने पास सुरक्षित रखती है। वे लोग आप से इसे प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त करते हैं, जब आपको आवश्यकता पड़े या कठिनाई होवे तो आप इस जमा धन का उपयोग भी कर पाते हैं। परन्तु आपका यह धन सांसारिक कष्टों और कठिनाइयों में सहायता कर सकता है। आप बड़ी सावधानी से इसका संचय करते हैं; और इसमें आपको हजारों त्याग

करने पड़ते हैं, आपको यह सुख, वह सुविधा, का त्याग करके, अनेक अनेक खर्चों में कटौती करके, कम खर्च करने और अधिक कमाने से यह धन जुड़ता है। परन्तु एक दिन आता है जब आप इस संचित धन को छोड़कर, रीते हाथों से परलोक की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। वहां इस पास बुक की ओर कोई आंख उठाकर देखता भी नहीं। क्यों? यहां भी तो अधिक धन एकत्र हो जाता है तो बेटे ही इसे पाने के लिये लड़ने झगड़ने लगते हैं, आपको चिन्ता और भय आ घेरते हैं। इसमें से एक बड़ी राशि तो टैक्सों (करों) के भुगतान में ही निकल जाती है; अवशिष्ट पर धूर्तों और चोरों की सदा आंख लगी रहती है। एक दूसरी बैंक और भी है जो धन को जमा करने, लेखा रखने का कार्य बड़ी कड़ाई से गोपनीय ढंग से विश्वासपूर्वक करती है। धन की हर छोटी से छोटी राशि, मनसा, वाचा, कर्मणा शुभाशुभ को और उदासीन कार्यों का लेखा समुचित रूप से, जमा की जाती है। यदि यहां की बैंक आपकी 'अस्ति' (धन सम्पत्ति) की सावधानी से देखभाल करती है तो वहां की बैंक आपके 'आस्तिक' होने पर निगाह रखती है। आस्तिक वही व्यक्ति होता है जो यह स्वीकार करता है कि एक ऐसी दैवी शक्ति "अस्ति" है जो सदा हमारे कान में, हृदय में, चेतावनी देती रहती है। जब भी हम धर्म और सत्य की मर्यादा को भंग कर कोई कार्य करने की इच्छा करते हैं जबकि अर्थ और काम मानव को अपना दास बनाने की चेष्टा करते हैं। उस "अस्ति" के लिये कोई भी पुत्र मुकदमाबाजी नहीं कर सकता; कोई टैक्स वसूल करने वाला उस पर नहीं हाथ डाल पाता है। न कोई धूर्त अथवा चोर ही उस की गिरहकटी कर पाता है। उस बैंक में एक खाता खोल लो जिससे यहां वहां आप दोनों जगह समृद्धिशाली रहें। जो भी धन, आपके आध्यात्मिक कार्यों के रूप में जमा के लिये होंगे; उनसे आपको शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा।

जैसे यहां आप वृद्धावस्था, बीमारी और विपत्ति के लिये धन संग्रह करते हैं; यह ग्रावश्यक है कि इस "बचाने ग्रौर जोड़ने की प्रवृत्ति" परलोक के लिये भी विकसित की जावे जिससे कि ग्राप का परित्राण होवे। धर्मचर, सत्यंवद—यही तो ढंग हैं। धर्म, सत्य ग्रौर प्रेम की प्रचलित मुद्रायें उस बैंक में जमा के लिये स्वीकार की जाती हैं। वे सभी कार्य, विचार ग्रौर शब्द जिनमें इन धातुओं की झनकार पायी जाती है वहां जमा खाते के लिए स्वीकार किये जाते हैं। इसलिये इस बैंक में खाता खोलने के साथ ही उस बैंक में भी एक खाता खोलने का प्रयास ग्रापको अवश्य करना चाहिये। ग्राप 'रामराज्य' की लच्छेदार बातें करते हैं यदि ग्राप राम के ग्रादर्श का ग्रनुसरण नहीं करते हैं तो क्या रामराज्य की स्थापना बातों ग्रौर भाषणों से हो जावेगी? वे तो साक्षात धर्म की मूर्ति, 'विग्रहवान धर्म' ही थे। वे कभी धर्म से विचलित नहीं हुये। दशरथ का ग्रर्थ "दसों इन्द्रियों का स्वामी" होता है— पाँच कर्मेन्द्रियां ग्रौर पांच ज्ञानेन्द्रियों का। वही तो सफल साधक होता है। ऐसे व्यक्ति के ही यहाँ चार पुरुषार्थों की पवित्र संतानें धर्म (राम), ग्रर्थ (लक्ष्मण), काम (भरत) ग्रौर मोक्ष (शत्रुघ्न) उत्पन्न होती हैं। दशरथ हो जाग्रो ग्रौर भगवान् के वरदान के रूप में ऐसी पवित्र संतानें प्राप्त करो।

यह बैंक हर किसी को ऋण नहीं देती है। यह विश्वसनीय और जिनकी जमा के ग्राधार पर 'साख' है उन्हें ही ऋण देती है। जिन लोगों ने अपने परिश्रम ग्रौर प्रयास से लोगों में यह विश्वास जमा दिया है कि उनको दिया हुग्रा धन सुरक्षित रहेगा ग्रौर वे ग्रपने वचन का पालन कर चुका देंगे उन्हीं का यहां विश्वास किया जाता है। वह बैंक भी उन लोगों को शोक ग्रौर संकटों से बचाती है जिन्होंने सत्य, धर्म, प्रेम ग्रौर शान्ति का संग्रह किया है। ग्रापके खाते में जितना धन जमा

हो चुका है उसी के अनुपात से यह बैंक आपकी सहायता करती है। वह बैंक भी इसी पद्धति पर कार्य करती है। पिछले जन्मों के शुभकर्मों के फल का भुगतान इस वर्तमान जन्म में लिया जा सकता है। परन्तु जब तक कि वे शुभ कर्म तुम्हारे खाते में जमा नहीं है तो कोई चैक भुनाया नहीं जा सकेगा। फिर, जिसका खाता खुला है वही इस प्रकार अपने खाते में लेन-देन करने का अधिकारी है। हर एक को अपने-अपने नाम का पृथक-पृथक खाता खोलना चाहिये। एक भाई दूसरे भाई के खाते से धन नहीं निकाल सकता है; पति के खाते में से पत्नी नहीं निकाल सकती है।

यह बैंक आपके घर, भूमि आदि को बंधक रखकर रुपया उधार देती है चाहे यह सब सोना, आभूषण, खेत, मकान आपकी कमाई के हों अथवा पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ हो। वह बैंक भी आपको पूर्वजन्मों के खातों में तब की जमापूंजी में से इस समय निकालने की सुविधा प्रदान करती है। यही कारण है कि आप देखते हैं कि कुछ लोग जो अब स्पष्ट रूप से दुष्ट और निर्दयी हैं, नीच और कंजूस हैं फिर भी वे 'सम्पन्नता' का और शोक-दुख से रहित जीवन बिताते दिखाई देतेहैं। भूतकाल की जमा-पूंजी में से उन्होंने निकाला है; उसका आनंद तो उन्हें मिलना ही चाहिये। वर्तमान जीवन का जमा खर्च आगे देखा जावेगा।

कभी कभी यह बैंक आपको जमा की सीमा के बाहर भी भुगतान देती है जिससे आप अस्थाई संकट से पार हो जावें। सीमातीत भुगतान का धन प्रबंधक आपकी साख और क्षमता के आधार पर अलग अलग निर्धारित करता है। यह तो अनुग्रह, अर्थात् भगवान की कृपा के समान होती है जो कि पिछले जन्मों के सत्कर्मों, संच्चिन्त, सत्संग और नाम-स्मरण के द्वारा अर्जित की गयी है।

बैंकों में सुरक्षित वस्तु भंडार पेटिका (सेफ्टी डिपाजिट वाल्ट्स) होती हैं जहाँ ग्राहकगण अपने मूल्यवान, आभूषण, न्यायिक अभिलेख तथा अन्य महत्त्व की वस्तुयें स्वर्ण, चान्दी, जिन्हें चोर-उचक्के तके रहते हैं, रख देते हैं। फिर वे चिन्ता मुक्त होकर पैर फैलाकर शान्ति से सो सकते हैं। उन्हें बैंक की सुरक्षा में दे दो और चित्त से चिन्ता को विसार दो।

दूसरी बैंक में भी जो आध्यात्मिक खातों को चलाती है, इसी प्रकार की सुरक्षित वस्तु भंडार पेटिका व्यवस्था है। अपने आभूषण जैसे बुद्धि, चतुरता, सेवा की क्षमता और अपना सर्वाधिक मूल्यवान् रत्न अहंकार भगवान् को सौंप दो; तभी आप आनन्दित रह सकेंगे। "माम् एकं शरणं व्रज"। वह अपनी शरण में बुलाते हैं और फिर आश्वासन देते हैं "मा शुचः" तुम शोक मत करो।

गीता में भगवान् ने अर्जुन को 'धनंजय' नाम से कई बार संबोधित किया है। लोग धन का अर्थ उस धन से लगाते हैं जो अर्जुन ने अनेक राजाओं को दिग्विजय के अभियान में पराजित कर प्राप्त किया था। 'धनं' का अर्थ है कोई भी बहुमूल्य पदार्थ, प्रिय वस्तु, सबसे अधिक मूल्यवान तो आत्म-ज्ञान है। अर्जुन ने इसे प्राप्त किया था इसी लिए भगवान् ने अर्जुन को धनंजय कहा था। यह बैंक एक प्रकार के धन का व्यवहार करती है और वह बैंक दूसरे प्रकार के धन का व्यवहार करती है। यह धन, रुपया पैसा आदि, तो कोई भी उपार्जित कर सकता है, यहाँ तक कि चोर बाजारी करने वाले डाकू, धूर्त, वंचक और समुद्री डाकू भी धन एकत्रित कर लेते हैं। परन्तु वह धन, जो उस आध्यात्मिक बैंक में चलता है, केवल उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है जो सदाचार, वैराग्य, दीनता और पवित्रता का जीवन बिताने के लिए संघर्ष करते हैं।

पार्थिव धन को आप इस बैंक में जमा करा सकते हैं और दूसरे धन को, पुण्य और प्रेम जो आप व्यवहार में लाते हैं, मुझे दीजिए। उन बहुमूल्य वस्तुओं को आपके खाते में मैं जमा करने के लिए स्वीकार करूँगा।

प्रशान्ति निलयम

१४-७-६६

—०—

४१

जीवन-वृत्त

आज मुझे प्रसन्नता है कि इस प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्र के बहाने हम सब यहाँ इकट्ठे हुए हैं। ग्रामीण लोगों के लिये यह बड़े उत्साह और आनन्द की बात है और मुझे भी प्रसन्नता है। हमारे राज्य के शासक, जिनका प्रतिनिधित्व यहाँ मंत्री और विधायकगण इस मंच पर कर रहे हैं, घोषित करते हैं कि वे राज्य के प्राकृतिक और मानवीय साधनों का विकास करने का भरसक प्रयास कर रहे हैं; और इन साधनों के आधार पर लोगों को भोजन, वस्त्र आवास, शिक्षा, व्यवसाय, सुरक्षा और स्वस्थ जीवन देने का प्रयास करेंगे।

परन्तु मानवों के नैतिक और धार्मिक साधनों के विकास की उपेक्षा की जाती है और शान्ति और आध्यात्मिक आनन्द की अवहेलना की जाती है। जब लोगों को भरपेट अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र, अच्छे आवास और उच्च शिक्षा और सुखदायक नौकरियाँ मिल जाने से और शरीर स्वस्थ रहने से ही स्वतः आनन्द और शान्ति नहीं प्राप्त हो जाते हैं। अनेकों ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास उपर्युक्त सभी कुछ भौतिक सम्पन्नता है परन्तु फिर भी वे चिन्तित, दुखी और असन्तुष्ट हैं। क्योंकि शान्ति और आनन्द तो आन्तरिक सम्पन्नता पर निर्भर करते हैं; न कि व्यक्ति की बाहरी चतुरता और भौतिक धन सम्पत्ति पर।

मानव मूलतः दैवी प्रकृति का है; इसीलिए उसमें भगवान् के दैवी गुण प्रेम, न्याय, सत्य, शान्ति और आनन्द पाये जाते हैं। वह

इन्हें भोगने और अन्य लोगों को दे सकने की अधिक क्षमता रखता है। जितना ही कम वह इन गुणों को अपने में व्यक्त करे उतना ही अधिक लज्जित उसे होना चाहिए कि वह अपने उत्तराधिकार के प्रतिकूल जीवन बिता रहा है।

जीवन-वृक्ष की जड़ में ही जल देने की आवश्यकता है। परन्तु आजकल जो लोग जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की चर्चा करते हैं, योजना बनाते हैं, वे फूल पत्तियों और शाखाओं को ही सींच रहे हैं। यह जड़ें तो सद्‌गुण होते हैं जिन्हें सींचना है, इन्हीं के सींचने से मन, वचन और क्रिया के सुगंधित पुष्प और सेवा के मधुर फल उगते हैं, इन फलों में आनन्द का मधुर रस भरा होता है। अच्छे भोजन, वस्त्र और आवास जुटाने की योजना तो केवल गाड़ी या वाहन के उत्तम रखरखाव की योजना है। घोड़े के लिए भी योजना होनी चाहिए; यह घोड़ा मानवों का मस्तिष्क है। वही तो इस भोजन वस्त्रादि का प्रयोग 'व्यक्तिगत अहंकार से समष्टि में' परिणत होने के उच्च आदर्श प्राप्त करने के लिए करता है।

कुछ वक्ताओं ने रायलसीमा जिले की घोर निर्धनता की चर्चा की है। मैं आप से अनुरोध करता हूँ कि भगवान् या मनुष्य में विश्वास खोने और नैराश्यनद में बहने की भूल मत करो। महाराज शिवि के उपाख्यान का भी जिक्र आया है। जिसमें उन्होंने अपने शरणागत कपोत की प्राणरक्षा के लिए उसके हन्ता बाज को स्वशरीर से काटकर कपोत के बराबर मांस दान किया था। और बाज के चंगुल से कपोत की रक्षा की थी। इसी प्रकार कर्ण के महान त्याग के भी उदाहरण हैं। जिन्होंने जानबूझकर अप ने प्राणों को संकट में डालते हुए स्वेच्छा से याचकों को दान देकर संतुष्ट किया था। ऐसे दान भाव से ओत-प्रोत दाताओं की उपस्थिति का अभी हमारे बीच में अभाव नहीं है। उनकी सेवाओं को

न तो हल्के प्रकार से, एक ओर हटा देना चाहिए और न भुला डालना चाहिए। जब कुछ नन्हें-नन्हें कंकड़ चावलों में मिल कर दांत के नीचे आ जाते हैं तो आप क्षुब्ध होकर कहने लगते हैं कि "यह चावल की थाली है अथवा कंकड़ों का व्यंजन है ?" एक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने के लिए मानव का यह स्वभाव होता है कि वह अतिशयोक्ति-पूर्वक वर्णन करने लगता है। हम आनन्द को तो गौण और घटनावश प्राप्त लाभ मान कर महत्त्व घटा देते हैं और शोक और कष्टों की चर्चा खूब बढ़ा-चढ़ा कर करते हैं।

इन सब बुराइओं और त्रुटियों का मुख्य कारण ग्रामीण जनता में आत्मविश्वास और उत्साह हीनता ही है। वे तो छोटी-छोटी हानि अथवा संकटों में निराश होकर प्रयास छोड़ बैठते हैं। वे भूल गये हैं कि शक्ति और साहस का रहस्य उन्हीं के अन्दर स्थित है। ग्रामीण लोगों ने मिल-जुलकर शान्ति और सौमनस्यता से रहने की कला ही भुला दी है। अपने-अपने व्यवसायों को शान्तिपूर्वक चलाना व दलबंदी की गहरी जड़ों और विषाक्त वातावरण के कारण, दूभर हो गया है। इसके अतिरिक्त, ग्रामों के बच्चों को आजकल जैसी शिक्षा इन स्कूलों में दी जाती है उसका प्रभाव यही हो रहा है कि छात्रों के मन में कृषि तथा अन्य ग्रामीण उद्योगों के प्रति घृणा और नागरिक तड़क, भड़क के जीवन के प्रति अनावश्यक आकर्षण होने से वे नगरों की ओर भाग रहे हैं। वहां वे पश्चिमीय सभ्यता के आडम्बरों के शिकार होकर अपने पूर्वजों की संस्कृति और सभ्यता से दूर-दूर हटते जा रहे हैं।

इस प्रायमरी हेल्थ केन्द्र के अध्यक्ष डाक्टर ने परिवार नियोजन के लिए, कृत्रिम साधनों को लोकप्रिय बनाने के लिए, बच्चों की संख्या सीमित करने के लिए काफी कुछ कह डाला है। ऐसे साधन यद्यपि कुछ सफल होते हुए दिखाई दे जावें, वे अनेक संकटों और भावी आशं-

काओं से पूर्ण हैं। निश्चय ही इनसे अनैतिकता और चरित्रहीनता को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। इनमें उस चारित्रिक दृढ़ता का जिस पर लोगों की शक्ति निर्भर करती है, निश्चय ही ह्रास होगा। यह संयम तो अन्दर से ही विकसित होना चाहिए न कि बाहर से थोपा जावे। लोगों को अपने निश्चय को कार्यान्वित करने की प्रेरणा अन्दर से लेनी चाहिए न कि किसी बाहरी भय या प्रलोभन के वशीभूत होकर, क्षणिक लाभ या आनन्द के लिए ऐसे कार्य करने चाहियें। आत्म संयम से आत्मविश्वास की वृद्धि होती है, आत्म-ज्ञान और आत्मोन्नति होती है। परिवार नियोजन के प्रचारक केवल तात्कालिक फल की बात सोचते हैं, दीर्घकालीन परिणामों की उपेक्षा की जा रही है। यह तो उस बस स्वामी के कार्य के समान है जो कुछ अधिक पैसे कमाने के लिए प्रायः बसों में ठूंस-ठूंस कर सीमा से अधिक यात्री बिठा लेता है, फिर जब टायर फट जाता है, या अन्य कोई इसी प्रकार की घटना घटती है तब वह अपनी लोभी प्रकृति को धिक्कारता है कि क्यों उसने ऐसा किया।

सरकार को प्रेषित प्रार्थनाओं की आधी प्रार्थनाएं भी यदि भगवान को संबोधित होतीं, तो आपको भगवान् की कृपा प्राप्त होकर खाद्य समस्या का समाधान हो गया होता; क्योंकि भगवान् ही वर्षा करा सकता है जिससे आपकी नदियाँ, सरोवर, जलाशय उन खेतों को सींचने के लिए भर जाते हैं जहां कि फसलें उगायी जाती हैं। ईश्वर में सच्चे हृदय से आस्था रक्खो और उसके प्रति समर्पित होकर निर्भर हो जाओ, ऐसा मनसा, वाचा, कर्मणा हो तो वह अवश्य प्रसन्न हो जावेगा। शुद्ध, सरल और सच्चे बनो तो वह आपकी करुण पुकार को अवश्य सुनेगा। जब मानसून नहीं आती है और जलाशय सूख जाते हैं तो सरकार क्या करे ? मुख्य विद्युत अभियंत्ता का कहना है कि चूंकि वर्षा नहीं हुई है तो वे सिंचाई के पंपिंग सेटों के लिए विद्युत शक्ति

नहीं दे पावेंगे। इसलिए व्यर्थ की खुशामद दरामद छोड़कर भगवान की महिमा का गान करो और उन्हीं के मार्ग पर चलो, उन्हीं से प्रार्थना करो। उसी सर्वशक्तिमान के चिन्तन, यशोगान में अपने जीवन की सीमित अवधि को लगाओ, न कि दुर्बल, क्षीण और अशक्त लोगों की चाटुकारिता में लगे रहो। जीवन का स्वर्ण अवसर सभी को केवल खाने-पीने के ही लिए नहीं दिया गया है बल्कि कुछ उच्च आदर्शों की पूर्ति और अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए दिया गया है। यह तो आत्म संयम के लिए तथा चरम सत्य की प्राप्ति के लिए है।

आपकी चेतना का $\frac{3}{4}$ भाग देही, इस देह के निवासी के लिए जो सदा इस शरीर और उसके अंगों को 'मेरा' कहकर व्यक्त करता है, को मिलना चाहिए। यह देह और इसके माध्यम से जो अनुभव प्राप्त हों उन्हें स्वप्नवत् समझो और अवास्तविक जानो।

अब आप स्वामी और मंत्री का जलूस अपने गांव की गलियों से निकलता हुआ देख चुके हैं और अनुभव कर चुके हैं। आपने मेरे दर्शन पा लिए हैं और मेरा भाषण भी सुन लिया है। कुछ ही घंटों बाद जब निद्रा में सोये हुये होंगे, स्वप्न देख रहे होंगे उस समय आप आज की इन सब देखी सुनी बातों को बिल्कुल भूले हुए होंगे, उस समय आप कुछ नयी-नयी घटनाओं को देख रहे होंगे और उस समय वही सब सत्य और वास्तविक प्रतीत होंगी और इतनी ही महत्वपूर्ण लगेंगी। यदि आप गंभीर निद्रा (सुषुप्ति) में होंगे तो उस समय न तो आज की घटनाओं का और न किसी स्वप्न की घटनाओं का स्मरण रहेगा— आपको अपने अन्दर अन्तरात्मा में केवल अपने होने मात्र की हल्की चेतना रह जावेगी। जब स्वप्न देखते हो तो स्वप्न सत्य लगता है, जब जागते हो तो जाग्रत अवस्था के अनुभव उतने ही वास्तविक प्रतीत होते हैं जैसे कि स्वप्न के लगते हैं। सत्य यह है कि यह सब,

दोनों ही, स्वप्न हैं मन की रचना हैं जब कि आत्मा का प्रतिबिम्ब मन में पड़ता है। यदि आप 'मन' को हटादें तो आत्मा को प्रतिबिम्बित होने का माध्यम नहीं रहने पर आत्मा अपने प्रकाश से अकेला ही अद्वैत रूप में प्रकाशित होता रहेगा।

एक बार आपको यह ज्ञान प्राप्त हो जावे तो पचास वर्ष का जाग्रत अवस्था का अनुभव पांच सैकिन्ड के अनुभव जैसा लगेगा, जैसे कि स्वप्न में व्यक्ति को दो सैकिण्ड में ही बचपन से पितामह की स्थिति में पहुंच जाने की घटनायें दिखाई देने लगती हैं; और पचास वर्ष का अनुभव हो जाता है! जाग्रत अवस्था में ैसी धारणा स्वप्न के अनुभवों के लिए होती है, ज्ञान हो जाने पर वैसी ही धारणा जाग्रत अवस्था के दीर्घ-कालीन अनुभवों के लिए हो जाती है। अपने अन्दर ही आनन्द के स्रोत का अनुसंधान करो और आपको प्रसन्नता प्राप्त होगी, यहां ही और सदासर्वदा के लिए। विश्वास रक्खो कि अन्तरात्मा में जिस आनन्द का अनुभव आप करते हैं वह भगवान् से ही प्राप्त हुआ है और वही आपका सत्य स्वरूप है।

भगवान् से संपर्क करने और उनसे आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रयास की आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार कि यद्यपि सर्वत्र चारों ओर रेडियो के कार्यक्रम की तरंगें आती रहती हैं। फिर भी उन्हें रेडियो पर सुनने के लिए कुछ प्रयास करके घुन्डी को ठीक-ठीक उसी स्थिति में घुमाना पड़ता है कि जहां का कार्यक्रम तुम सुनना चाहते हो। उस वार्ता, अथवा संगीत को सुनने के लिए यन्त्र की व्यवस्था करनी ही पड़ती है। उस सूक्ष्म तत्त्व, भगवान् और उनसे प्राप्त आनन्द की अनु-भूति के लिए भी मंत्र की उपयोगिता और आवश्यकता है, उस आनन्द के एक बिन्दु से ही मानव की क्षुद्रता और मानसिक उद्वेग नष्ट हो जाते हैं। इस समय मानवों के पारस्परिक संबंध, घृणा और द्वेष से

विकृत हैं। प्रभुसत्ता, अधिकारीगण और जनता, यह बिजली के पंखे के तीन परों की तरह हैं। जब तीनों ही एक दिशा में घूमते हैं, एक ही गति से घूमते हैं तो वे सुखदायक लगते हैं। क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या और लोभ तो प्रेम और सहयोग के पथ के रोड़े हैं। वे मानव को दिव्यता के स्तर से घसीट कर पशुत्व के स्तर पर ला देते हैं। सर्वसाधारण के साथ ही धैर्य और समझदारी से सहते चलो, सहिष्णुता और सहानुभूति का अभ्यास बढ़ाओ। सहमति की सीमाओं का विस्तार करो। विरोध और असहमति को यथासंभव भुलाये रक्खो। आपस में भ्रातृत्व की भावना को फैलाओ, ज्ञान के द्वारा दयालुता को गहराई तक ले जाओ। तब निश्चय ही जीवन सुखद और जीने योग्य हो जावेगा।

यह गांव पुट्टपर्ती से कुछ ही मीलों के अन्तर पर है, फिर भी यहाँ इतने दीर्घ समय के बाद पुनः मेरे आने का कारण व्यक्तियों के अपने-अपने मनोभावों के कारण नहीं है; बल्कि यह सब काल, कर्म और कारण की एकता के पूर्व नहीं हो सका। समय उपयुक्त हो, और कोई उपयुक्त अवसर भी हो और ऐसे कारण जिनमें मेरी उपस्थिति आवश्यक हो, उत्पन्न हो जाने पर ही तो मैं आ सकता था। है न ऐसी ही बात? फल को बढ़ने, पकने मिठास प्राप्त करने में समय लगता है; तभी वह खाने योग्य हो पाता है। अनेक सौभाग्यों के लिए समय सबसे महत्वपूर्ण तथ्य होता है। मेरे यहां उपस्थित होने का पूर्ण उपयोग होवे यही मैं आपसे मांगता हूं। मुझे आपसे पृथक होने की कभी भावना नहीं होती है। मैं सभी को पधारने, जानने और अपने से लाभान्वित होने का आमंत्रण देता हूं। डुबकी लगाकर गहराई को जानो। ध्यान से देखो और विवेक का प्रयोग करो, चखो और स्वाद जानो। जो लोग ऐसा करते हैं मैं उनकी प्रतीक्षा में रहता हूं।

अब कुछ भगवन्नाम कीर्तन के पश्चात् आज के उत्सव की समाप्ति

होगी । मेरा यह ग्राम स्वभाव है कि लोगों को भगवन्नाम की मधुरता का आस्वादन करने को प्रेरित करता रहता हूं । मैं अपनी वार्ता किसी आध्यात्मिक कविता, छंद श्लोक आदि से प्रारम्भ करता हूं और इस वार्ता की समाप्ति इस प्रकार भगवन्नामावलि के उच्चारण से होती है और इन दोनों के मध्य में जो शिक्षा मुझे प्रिय है, देता हूं । यह तो सुस्वादु स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन के समान है जो मैं आपको पद्य रूपी प्लेट में रख कर और कीर्तन से ढक कर प्रस्तुत करता हूं । आपको इसे इसी रूप में इसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए ।

कोत्चेरुबू ग्राम
३-८-६६ (प्रारंभिक स्वास्थ्य केन्द्र का उद्घाटन)

—०—

ब्रह्मस्थ, ब्रह्मणेब्रह्माय

आज का दिन निराकार ब्रह्म के उस नराकार स्वरूप की उपासना के लिये अर्पित है जो कि उसने माया से अंधे मनुष्य को दलदल से उद्धार करने के लिये धारण किया था। यम का प्रतिकार संयम से किया जा सकता है; इन्द्रियों और इच्छाओं के, जो कि मनुष्य को बलात् ठेलती रहती है, दमन से मनुष्य मृत्यु को जीत सकता है। जब मनुष्य इस सत्य को भूलकर वासनाओं का दास हो जाता है तब अहेतुकी और असीम करुणा के वशीभूत होकर भगवान् स्वयं अवतार लेकर मानव का पथ-प्रदर्शन कर निजधाम का मार्ग दिखाते हैं।

मानव जैसे श्रेष्ठ प्राणी को भगवान ने केवल खाने, सोने, डरने, जनने मात्र के ही लिये नहीं उत्पन्न किया है; उसे तो अज्ञात और अव्यक्त की खोज करना है, बंधनों में पड़े होने पर भी मोक्ष को प्राप्त करना है और आत्मा से ही आत्मा का उद्धार करना है। उद्धरेत् आत्मनात्मानम्। मनुष्य की तृप्ति के लिये कितनी भूमि और बंगलों की आवश्यकता है ? किसी न किसी दिन देर या सबेर, उसे संग्रह त्याग करना ही होगा।

दक्षिण में किसी के पास १०० एकड़ भूमि थी फिर भी वह इसे १००० एकड़ की सीमा तक पहुँचाने के लिये व्यग्र था। इसलिये उसने प्रत्येक दिशा में ऐसे विस्तृत विशाल भूखण्ड की खोज की जो कृषि

योग्य तो हो परन्तु उस पर कोई खेती न करता हो। अंत में वह हिमाचल क्षेत्र के एक राज्य में जा निकला। वहाँ के राजा ने उसे प्रसन्नतापूर्वक उतनी भूमि देने का वचन दिया जितनी कि वह सूर्योदय से उसी दिन सूर्यास्त तक अपनी पद यात्रा से, जहाँ से चले वहीं घूमकर, पहुँचकर, घेर ले। यह उसके अध्यवसाय की परीक्षा थी। वह लालची व्यक्ति सूर्योदय की प्रथम किरण देखते ही दौड़ने लगा और अधिक से अधिक भूमि घेरने के लोभ में असाधारण परिश्रम करके चलते-चलते सूर्यास्त के समय अपने प्रस्थान बिन्दु से केवल ३ गज दूर गिर कर निर्जीव हो गया।

इसी प्रकार अनेकों लोग जोड़ते-जोड़ते मर जाते हैं और इसके पूर्व ही कि वह संग्रहीत धन का इच्छानुसार उपभोग कर पावें, मृत्यु उन्हें धर दबोचती है। मनुष्य धन से औषधियां तो खरीद सकता है परन्तु मानसिक शान्ति और संतोष से ही स्वास्थ्य सुरक्षित रह पाता है। दक्ष चिकित्सकों को तो धन देकर अपनी सेवा में लगाया जा सकता है परन्तु किराया चुका कर जीवन की वृद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती है। कहा जाता है भगवान् साधुओं की रक्षा के लिये अवतार लेते हैं। परित्राणाय साधूनाम्। साधुओं से आशय हिमालय की कंदरा में तपस्या रत साधुओं से ही नहीं है। साधु से आशय उस प्रत्येक सदाचारी व्यक्ति है जो आपके बीच किसी भी वेश में विचरण कर रहा है। वेश का महत्त्व नहीं है अंतरात्मा तो सभी में एक जैसी है। वेश तो ऊपरी खोल आप लोगों में पार्थक्य और भ्रम उत्पन्न करने के लिये है। प्रत्येक ही साधु है क्योंकि वह प्रेम स्वरूप है, शान्ति स्वरूप है, अमृत स्वरूप है। परन्तु अहंकार की ऊपरी पपड़ी कड़ी और मोटी हो जाने के कारण वास्तविक प्रकृति विकृत हो गयी है और उसे पहचाना नहीं जाता है। भगवद् भक्तों के सत्संग, नियमित आत्मसंयम और आत्मसुधार से मनुष्य के अन्दर से यह भ्रामक भावना मिट जाती है

कि वह यह शरीर है और शरीर की मांग और आवश्यकताएं उसकी मांग और आवश्यकताएं हैं।

यदि आप गौ को लहन उठी हुई 'औटी' दूध बढ़ाने की आशा से देते हैं तो दूध में भी एक अरुचिकर गंध आ जाती है। जब मनुष्य दुनियां के क्षुद्र कार्यों में अपने आपको डूबा रखता है तो उसके आचार व्यवहार दोनों ही दुखद हो जाते हैं। अमृत पुत्र मानव को इस प्रकार निराशा और संकटों से जूझते हुये देखकर शोक से हृदय भर जाता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति कुछ देर ही आत्म चिन्तन करे कि 'मैं क्या हूं ?' 'मेरी क्या स्थिति हो रही है ?' तो निश्चय ही अपने पतन की अनुभूति करेगा। सिंह कितना ही भूखा क्यों न हो वह मक्का की खीलें और मूंगफलियां नहीं खायेगा। अपने वंश की महान परम्परा के अनुसार ही अपना लक्ष्य महान् और उच्च रखो। यदि सुग्गा गुलेंदे और टेंटी पर ही चोंच मारता रहेगा तो उसे आम की मिठास का पता कैसे लगेगा। आपके प्रयत्न भी आपके महान् लक्ष्य के अनुरूप ही होना चाहिये इसमें कमी शिथिलता न आने पावे, मार्ग चाहे जितना लम्बा और विघ्न बाधाओं से परिपूर्ण हो।

आप जिस गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे उससे अधिक द्रुतगति से लक्ष्य आपके समीप दौड़ेगा। आप अपने उद्धार के लिये जितना उत्सुक और व्यग्र हैं उससे अधिक भगवान् आपका उद्धार करने के लिये लालायित हैं। वह तो प्रेम, करुणा स्वरूप हैं और सभी लड़खड़ाते पथिकों के उद्धारक हैं। उन्हें "भक्ताभीष्ट प्रद" कहा गया है। तुम कहते हो कि मैं मन ही मन हंसता हूं, और अपने बालों को उंगलियों से संचालित कर अपने मुंह पर खींच लेता हूं परन्तु क्यों ? जब भक्तों को मेरा हृदय जीतने में सफलता होती है तभी मैं इस प्रकार हर्षातिरेक में मग्न होकर ऐसा भावविह्वल हो जाता हूं।

एक बार एक सम्राट था, जो अपने दरबार में आने वाले ऋषियों और पंडितों से पूछा करता था, "मानवों में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? सर्वाधिक सौभाग्यशाली समय कौन है ? कल्याणकारी सर्वोत्तम कार्य क्या है ?" दीर्घकाल तक उसे इन प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर नहीं मिला। अंत में शत्रुओं ने उसके राज्य पर चढ़ाई करदी और उसे हराकर जंगल में भगा दिया। तब वह आदिवासियों के हाथ पड़ गया और उन्होंने उसे "नरबलि" के लिये चुन लिया। इसी दुर्दशा में उसे एक तपस्वी ने देख लिया। उसने राजा का उद्धार कर उसे अपनी कुटिया में ले गया। वहां उसके शिष्यों ने उसका प्रेमपूर्वक उपचार कर पूर्ववत् स्वस्थ और आनन्दित बना दिया। तब उसे अपने प्रश्नों के उत्तरों की अनुभूति हुयी। दयालु ही सर्वश्रेष्ठ मानव है, वर्तमान और यही क्षण सौभाग्यशाली समय है और पर दुख कातरता और उसका दुख से उद्धार ही सर्वोत्तम कार्य है। आप संकल्प करते हैं कि "अगले बृहस्पतिवार, बाबा के जन्म के दिन से, भगवन्नाम स्मरण प्रारंभ करूंगा", ऐसा लगता है कि मानों काल ने तुम्हें कोई लिखित आश्वासन दे रखा है कि तुमसे भेंट करने इससे पूर्व नहीं आवेगा। जिस कार्य को आप आज और अभी कर सकते हो उसे कल के लिये क्यों टालते हो ?

'काल्हि करै सो आज कर आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी बहुरि करोगे कब॥'

चूंकि 'नामस्मरण' की चर्चा चल पड़ी है मैं आपको एक कहानी और सुनाऊँगा एक सौदागर को उसके गुरु ने हरिनाम लेने का उपदेश किया था। उसने समयाभाव का बहाना किया। दूकान चलाते-चलाते ही उसकी शक्ति और आयु निःशेष हो गये। उसे शौच के लिये गाँव से बाहर कुछ दूर जाना पड़ता था। इसमें उसे आध घंटा लग जाता था। इसलिये गुरु ने कहा कि इसी समय में भगवत् भजन भी करते

रहा करो। हनुमान, जो राम के अनन्य भक्त हैं, आकाश मार्ग से उसी समय अयोध्या जा रहे थे। उन्हें दूकानदार का अशौचावस्था में यह धृष्टतापूर्ण कार्य बुरा लगा और उन्होंने उसके गाल पर एक करारा थप्पड़ मार कर भगवन्नाम को ऐसे अपवित्र न करने की चेतावनी दी। और अपने मार्ग पर पुनः चल पड़े।

भगवान् के दर्शन कर हनुमान जी ने उनके दिव्य मुखमंडल के एक गाल को सूजा हुआ और पाँचों उंगलियों के निशान पड़े लाल देखा। शोकार्त हनुमान की पीड़ा अनिर्वचनीय थी। राम ने कहा, "हनुमान! उसका नाम मत पूछो जिसने यह प्रहार किया है। मैं अपने भक्तों की सभी संभावित विपत्तियों से सावधान रहता हूं और बीच में पड़कर उनकी रक्षा करता हूं। क्या वह बेचारा दूकानदार गाँव के खेत में बैठा हुआ, मेरा नाम स्मरण करता हुआ, तुम्हारे क्रोधपूर्ण घातक प्रहार को सह सकता था? वह तो वहीं ढेर हो जाता यदि मैं अपने गाल को सामने न कर देता।" भक्त रक्षण तो भगवान के कार्यों में एक प्रमुख कार्य है। "योग क्षेम वहाम्यहं" एक कोरा आश्वासन मात्र ही नहीं है। यह तो भगवान की प्रतिज्ञा है और वे सत्य स्वरूप है इसे तुम जानते ही हो।

आज के दिन आपको कृष्ण की मुरली का ध्यान करना है। किस प्रकार और किस सीमा तक वह अमृतमयी तान सुना कर सभी मानव, पशु-पक्षी और वनस्पति जगत, नदी, चट्टानों और बालुका पिन्डों का है अणु-अणु को आनन्द मग्न कर देती थी। उस नराकार ने, जो आज इस जन्माष्टमी को आविर्भूत हुआ था, गीता गंगोदकम् प्रदान किया था। यह पवित्र गंगाजल, जो सभी रोगों की एक मात्र दवा है, मनुष्य की पिपासा को शान्त करने वाला और उनके पापों को धो देने वाला है।

गोपियों के सर्वोत्कृष्ट प्रेम का चिन्तन करो; किस प्रकार उन्होंने पूर्ण पुरुषोत्तम के चरणों में अपनी सभी कुछ स्थूल और सूक्ष्म, अहंकार एवं अहंमूलक आसक्ति को अर्पण कर दिया था। उनका प्रत्येक शब्दोच्चार प्रार्थना, प्रत्येक पदक्षेप तीर्थयात्रा, जो देखा, जो सुना वही कृष्ण था। चाहे कोई भी उनके निकट हुआ उन्होंने केवल ब्रह्म के लिये, ब्रह्म को सुनाते हुए, ब्रह्म का ही गुणगान किया। कृष्ण ने उनके हृदय को अपने प्रेम से आप्लावित कर दिया था। विश्व के अद्यावधि ज्ञात सर्वोच्च, आत्म निवेदित भक्तों की प्रथम पंक्ति में उन्हें स्थान दिया गया है।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी
८-९-६६

—०—

४३

प्रपंच, माया का मायानाथ

मनुष्य स्वयं तथा अपने परिवार को सुखी बनाने, सम्पन्नता और वैभव के उपकरण जुटाने के लिये जितना जी तोड़ परिश्रम और पीड़ा सहनकर रहा है यदि इतना प्रयास भगवत् प्राप्ति के लिए करता तो उसे अपार आनंद की प्राप्ति होती। मनुष्य के चतुर्दिक प्रत्येक जीव और वस्तु में जो भगवान प्रकाशित है वह माया के पर्दे के कारण मनुष्य को नहीं दीखता है। माया तो तमोगुण का स्वभाव है, यह अंधकार है; अज्ञान है। जब सुषुप्ति अवस्था में मनुष्य स्वप्न रहित प्रगाढ़ निद्रा में मग्न होता है तब भी उस पर माया अथवा अज्ञान की पकड़ रहती है। उस अवस्था में "मैं ब्रह्म हूँ" ऐसा ज्ञान और अनुभूति नहीं होती है। तुरीयावस्था या ज्ञानावस्था और सुषुप्ति में यही अंतर होता है। ज्ञानी को सदा "सोऽहम्" भाव रहता है जबकि सुषुप्ति अवस्था में जीव को ऐसा बोध कभी-कभी होता है। सभी को ऐसा अनुभव है अतः यह सर्वजनीन् अनुभव है। न तो यह वास्तविक सत्य है, और यह अवर्णनीय है। हम इसे असत् भी तो नहीं कह सकते, क्योंकि इसका प्रभाव सर्वत्र है। हम इसे सत् भी नहीं कह पाते क्योंकि जब सत् का साक्षात्कार होता है तब द्वित्व का अभाव हो जाता है। ज्ञान दृष्टि से माया असत है। ज्ञानी सदा माया का अभाव पाता हैं। यह विचित्र अनिर्वचनीय घटना है। सांसारिकता तथा जीवन मुक्त ज्ञानी के लिए माया नाम की कोई वस्तु अथवा शक्ति होती ही नहीं; जो तर्क और बुद्धि के आश्रित हैं उनके लिये माया अवर्णनीय, अनिर्वचनीय है; जबकि जनसाधारण के लिए माया एक तथ्य है।

माया से ही इस विश्व की सृष्टि होती है, सभी दृश्यमान पदार्थों का फैलाव यह 'मन के समक्ष फैलाती है। यह एक नर्तकी है; एक जादूगरनी है, ठगिनी है जो बुद्धि को मोहित कर इन्द्रियों को फंसा लेती है। इस न-र्त-की को (शब्द खण्डों की स्थिति बदलने से) की-र्त-न बनाकर वशीभूत किया जा सकता है। कीर्तन या सतत् भगवन्नाम स्मरण से माया का फंदा खाली जाता है। मन पर जादूगरनी का सम्मोहन पाश तभी कारगर नहीं होता है जब कि उसे यह ज्ञान हो जाता है यह तो ठगिनी का फेंका हुआ जाल है, यह सभी कृत्य उसी की चालें हैं। वह इन सब को केवल माया जाल कहकर शान्ति से बैठ जाता है कि यह सब तो अस्थाई चकाचौंध है, आकर्षण क्षणिक है। कीर्तन से माया के स्वामी मायानाथ का साक्षात्कार होता है "मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद"। यह तो आप को ज्ञात ही है कि माया-नाथ, माया से कहीं अधिक सक्षम और प्रभावशाली है। उसमें अनंत शक्ति, बुद्धि और करुणा है।

सूर्य की ओर मुंह करके चलने से तुम्हारी छाया निरंतर छोटी होती जाती है यहाँ तक कि ठीक सिर के ऊपर सूर्य होने पर छाया पैरों के नीचे विलुप्त हो जाती है। इसी प्रकार जैसे-जैसे आप ज्ञान की ओर अग्रसर होते हैं आप पर माया का प्रभाव उसी प्रकार घटता जाता है। तब वह आपके ज्ञान में आ जाती है, आपके पैरों पर पड़ जाती है क्योंकि यह और आगे आपको भ्रमित नहीं कर पाती और जहां तक आपका सम्बन्ध है यह अदृश्य हो जाती है। इस द्वंदमय संसार में रहते आप यह तो अनुभव नहीं कर सकते कि माया का जन्म होता कैसे है परन्तु यह आप जान सकते हैं कि इसे कैसे समाप्त किया जावे और इसे प्रभावहीन बना डालने में सफल भी हो सकते हो। माया अनादि है, पर अनंत नहीं; उसके लिए जो उस प्रकाश को पा जाने में सफल होता है जिससे अन्धकार, अज्ञान का नाश हो जाता है।

एक गुरु ने अपने शिष्य को एक बहुमूल्य भेंट, जो कल्पनातीत मृदु थी, प्राप्त करने की आज्ञा दी और कहा कि "इसको मक्खियों, चूहों, बिल्लियों और चींटियों से तथा ऐसे लोगों से भी बचाकर सुरक्षित रखना है जो लगातार इसे हड़पने की ताक में रहते हैं"। शिष्य ने उसको एक पात्र में रखकर ढकना ठीक नहीं समझा उसने भेंट को स्वयं खा लिया; और अब वह सभी बाह्य संभावित संकटों से सुरक्षित रहकर उसके उदर में पहुँच गयी। यह देख कर गुरुजी ने शिष्य को एक महावाक्य जो एक गंभीर आध्यात्मिक सत्य को निरूपित करता था, दिया और कहा कि "अब इसे ग्रहण कर इसकी मिठास और स्फूर्तिप्रद स्वाद का आनन्द लो। इसके मनन और निदिध्यासन से तुम्हारे अन्दर वह शक्ति उत्पन्न होगी जो सभी संदेहों और विक्षेपों से तुम्हें बचाती रहेगी"। जितनी-जितनी धन सम्पत्ति आप बटोरते जा रहे हो उतना ही, उसी अनुपात में, आप में भय और चिन्ता की भी वृद्धि हो रही है। परन्तु कृष्ण धन को चाहे जितना इकट्ठा कर लो भय और चिन्ता तुम्हारे लिए अदृश्य हो जावेंगे।

एक व्यापारी को नकली, दुर्गन्धयुक्त घी बेचने के अपराध में पकड़ कर मजिस्ट्रेट के सम्मुख दण्ड के लिए प्रस्तुत किया गया। उसका घी जनता के स्वास्थ्य के लिए गर्हित था। मजिस्ट्रेट ने आज्ञा दी कि या तो (१) कुल घी व्यापारी ही स्वयं खाये अथवा (२) उसके बीस कोड़े कसकर लगाये जावें अथवा (३) वह १०० रुपये जुर्माना अदा करे। उसने घी खाना सरल समझा और पीना प्रारम्भ कर दिया परन्तु उबकाई असह्य हो गयी। तब उसने कोड़े की सज़ा ही भुगत लेने की प्रार्थना की। लगभग एक दर्जन कोड़े खाकर बेहोश हो गया और आगे न सह सकने के कारण अन्त में जुर्माना देना पसंद किया। यदि वह पहले ही इस विकल्प को स्वीकार कर लेता तो दुर्गन्धित घी का पीना और कोड़ों की असह्य पीड़ा से बच सकता था।

इस ग्रस्थिर विवेक (ग्रविवेक ?) से तो उसे तीनों प्रकार की दुर्गतियां भुगतनी पड़ीं।

इसी प्रकार जब मनुष्य पर विपत्ति ग्राती है तब वह प्रारम्भ में ही भगवान् का ग्राश्रय नहीं लेता है। बाद में, देर सवेर, भगवान की शरण लेता है, फिर भी इसकी ग्रनिवार्यता को स्वीकार नहीं करता है। बुद्धिमानी से चुनाव करो। एक व्यापारी की चार पत्नियाँ थीं। उसे एक लम्बे समय के लिए बम्बई व्यापार सम्बन्धी कार्य के लिए जाना था। उसने चारों को पत्र लिखकर पूछा कि बम्बई से उसके लिए क्या-क्या उपहार लावे। तामसी प्रकृति की पहली पत्नी ने ग्रपनी बीमारी की कोई उत्तम दवा मंगाई जिससे उसकी शारीरिक पीड़ा शान्त होवे; दूसरी ने आधुनिक फैशन की बम्बइया साड़ी, ब्लाउज और ग्राभूषण मंगाये। उसने अपने राजसिक वृत्तिवाली वस्तुयें चाहीं। तीसरी सात्विक प्रवृत्ति वाली पत्नी ने कुछ ग्रच्छी पुस्तकें जैसे ध्यानेश्वरी, साई सच्चरित इत्यादि मंगायीं। चौथी ने (जो ज्ञानी प्रकृति की थी) लिखा कि "मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे तो केवल ग्राप ही चाहिए"। निश्चय ही प्रत्येक को उसकी इच्छानुसार उपहार मिले, परन्तु चौथी ही सबसे अधिक प्रसन्न थी। कोई इच्छा न रक्खो, मानस को इच्छा रहित बना डालो, किसी भी प्रकार की कामना, लालसा न रक्खो। एकदम खोखला ग्रौर सीधा बनालो, बंसी बन जाग्रो, तभी कृष्ण ग्रापके द्वारा अपनी प्राण वायु फूंक कर मधुर रागिनी की तान छेड़ेंगे ग्रौर संसार की समस्त अशान्ति ग्रौर क्षोभ शान्त हो जावेंगे।

हृदय को प्रार्थना पश्चात्ताप के साबुन ग्रौर प्रेम के जल से ऐसा स्वच्छ कीजिये इच्छा का दाग तक भी शेष न रहे। तभी ईश्वर हृदय को ग्रपनी कृपा से भर देगा। यदि ग्राप भगवत् प्राप्ति के इच्छुक हैं तो ग्रापको लोकभ्रान्ति ग्रौर देह भ्रान्ति, ग्रर्थात् देहासक्ति ग्रथवा

जगदासक्ति को त्याग देना चाहिए। दो नावों की सवारी नहीं की जा सकती। चाहे ग्राप यहां प्रशान्ति निलयम् में २०, २५ वर्ष से ही क्यों न डेरा डाले पड़े हों पर यदि ग्राप ग्रपनी भौतिक ग्रावश्यकताग्रों ग्रौर सुख-सुविधा के लिए जप-ध्यान की ग्रपेक्षा ग्रधिक चिन्तित रहते हैं तो ग्रापका यहाँ टिके रहना व्यर्थ ही रहा है। ग्रापने कोई उन्नति नहीं की है। कीर्तन-भजन की समाप्ति पर कपूर की ग्रारती का ग्रर्थ यही है कि ग्राप भी ग्रपनी भौतिक ग्रौर ऐन्द्रिक इच्छाग्रों को कपूर की भाँति ऐसा जलाकर निःशेष कर दें कि उनका कोई चिह्न भी ग्रवशिष्ट न रहे ग्रौर ग्राप स्वयं को ईश्वर की महिमा में इसी प्रकार लीन कर लेने के लिए ग्रर्पण कर दीजिए।

एक बुढ़िया के दो पोतियाँ थीं। एक उच्छृंखल ग्रौर दूसरी विनम्र थी। ग्रपनी दादी से विदा होकर जब वे जाते समय उसके चरण-स्पर्श करतीं तो बुढ़िया उच्छृंखल को इस प्रकार ग्राशीर्वाद देती, "तुम्हारी वंदनवारी ग्रौर निकास पर की रंगवेलि की चित्रकारी सदैव हरी-भरी ग्रौर ग्रक्षुण्ण रहें तुम्हारी थैली भी धन से भरी रहे"। इसकी व्याख्या यही है उसके यहाँ न कोई आये जावे जो रंगवेलि मिटती रहे ग्रौर न बच्चे हों जो निकास को चहलकदमी करके गंदा करें ग्रौर वंदनवार को तोड़े ग्रौर कोई उत्सव व त्यौहार हों जो कुछ खर्च करने का ग्रवसर ग्रावे। दूसरी को ग्राशीर्वाद देकर कहती, "तेरा निकास सदाग्रस्वच्छ होता रहे ग्रौर धन की थैली भी शीघ्रता से रिक्त होती रहे"। ग्रर्थात् उसके ग्रनेक स्वस्थ क्रीड़ा प्रिय बच्चे हों; यही ग्राशीर्वाद तो सदा सौभाग्यवती स्त्रियों को दादियों के द्वारा दिया जाता है। यद्यपि ऊपर से देखने में यह ग्रभिशाप जैसा प्रतीत होता है; ग्रौर पूर्ववर्ती वरदान जैसा। परन्तु गूढ़ार्थ में कैसी भिन्नता है? दादी तो बिना मांगे ही ग्राशीर्वाद देती थी। इसी प्रकार ईश्वर भी विनम्र ग्रौर सच्चे पर अपनी ग्रहेतु की कृपा की वर्षा करता है; यदि वह सद-

गुणों पर सदा आचरण करता है और उसका जीवन आडम्बर रहित है तभी ।

अपनी नियमित साधना, अपने लक्ष्य के प्राप्ति की क्षमता में और स्वयं अपने में आत्मविश्वास रक्खो । यदि आपको लहर ही में विश्वास नहीं है तो महासागर में कैसे विश्वास होगा ? जब एक नन्हा सा लौह खण्ड बुद्धि और हस्त लाघव से सुन्दर और सच्ची घड़ी में बदला जा सकता है; तो मनुष्य भी विवेक और वैराग्य के द्वारा ऐसे संत और महापुरुष में बदला जा सकता है तो आत्मसाक्षात्कार कर चुका हो । सभी धर्मशास्त्र मनुष्य को अपने शाश्वत शान्ति निवास तक पहुँचने में सहायता करते हैं । मार्ग के सभी विश्रामस्थल तीर्थ यात्री को अंतिम गन्तव्य तक पहुँचाने के लिए सहायक मात्र होते हैं; आखरी मंजिल नहीं होते । वहाँ यात्री कुछ काल ठहरता है, उसे यात्रा की अगली मंजिल के पहुँचने का मार्ग और आवश्यक सूचनायें दी जाती हैं । तब वह विश्राम कर, थकावट दूर कर वहाँ से आगे चल देता है ।

आध्यात्मिक मार्ग के तीर्थ यात्री को जो विघ्न-बाधायें झेलनी होती हैं उनसे वह कभी-कभी दुखी भी हो जाता है; परन्तु यही तो परीक्षायें हैं जिनको उसे उत्तीर्ण कर आगे बढ़ना है; यही उसकी सुरक्षा की गारंटी है । आप तस्वीर लटकाने के लिए दीवाल में कील गाड़ते हैं, परन्तु तस्वीर लटकाने से पूर्व कील को खूब हिला-जुला कर देख लिया जाता है कि वह मजबूती से तस्वीर का भार उठाने में दृढ़ है अथवा नहीं । जब आप देख लेते हैं कि भरपूर शक्ति से हिलाने पर भी वह नहीं हिलती तो आप निश्चिन्त और निर्भय होकर तस्वीर टांग देते हैं । आपको इसी प्रकार परीक्षाओं का स्वागत करना चाहिए उनसे तो आपको आत्मविश्वास प्राप्त होगा और आगे की उन्नति भी सुनिश्चित हो जावेगी ।

दूसरों की बकवास पर ध्यान मत दो। अपने अनुभव पर अधिक विश्वास करो। जिससे आपको आत्मानंद, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त हो उसी में विश्वास करो। विश्वास का वास्तविक आधार ही यह है। हर किसी से क्यों पूछते फिरते हो कि यह शक्कर है अथवा नमक? क्या यह पूछना मूर्खता नहीं है? थोड़ा सा चख कर देखो तुम स्वयं ही निर्णय दे लोगे। संभव है जिसे तुम नमक समझकर त्यागना चाहते हो वही तुम्हारे परीक्षण से शक्कर सिद्ध हो जाय जबकि किसी अन्य व्यक्ति ने, बिना परीक्षण किये ही, उसे नमक बता दिया हो अथवा संभव है कि ज्वर के कारण तुम्हारे मुंह का स्वाद ही विकृत और कड़ुआ हो।

जहां से भी हो सके ज्ञान प्राप्त करो; जिन अच्छी बातों को विभिन्न वक्ता लोग समझाते हैं उन्हें हृदयंगम करो। जो उपदेश आपने श्रवण किये हैं उन्हें अपने अनुभव और बुद्धि की कसौटी पर जांचो। श्रवण के बाद मनन अर्थात् जो कुछ सुना है उसकी पुष्टि के लिए विचार करो किस पृष्ठ भूमि में यह बात किस उद्देश्य से किन सीमाओं के अंतर्गत कही है उन्हें समझो। फिर निदिध्यासन अर्थात् जिस सत्य को आपने हृदयंगम किया है उसे अन्तःकरण में दृढ़तापूर्वक धारण करो, जिससे कि वह आपके आध्यात्मिक स्वरूप का एक अभिन्न भाग या अंग हो जावे।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी
८-९-६६

—०—

४४

शरदोत्सव नवरात्र और दशहरा

मितव्ययता और पंचमहाभूत

दशहरा उस विजय के उपलक्ष्य में मनाया जाता है जिसमें दैवत्व उन दुष्ट प्रवृतियों का, जो मानव की प्रगति और ज्ञान प्राप्ति के मार्ग को अवरुद्ध करने वाली होती हैं, दमन करने में सफल होता है। ऋषियों और सन्तों का इन उत्सवों के निर्णय करने में एक महान उद्देश्य रहा है। वे हम से अपेक्षा करते हैं कि हम इनके आभ्यंतरिक अर्थों को समझें और प्रत्येक ऐसे अवसर का उपयोग साधना में एक अगले कदम के रूप में प्रयोग करें और इनको इस रूप में स्मरण करें कि ये हमें उस एकाकी यात्रा पर चलते हुये भगवान् के चरणों तक पहुँचना है। प्रत्येक जीव के अन्दर देवासुर संग्राम होता रहता है। यदि हम उस महाशक्ति, जो इस विश्व की पोषिका और रक्षिका है, का अवलम्ब लें तो निश्चय ही इस संग्राम में विजयी होकर अपने लक्ष्य को पालेंगे। लोग स्वयं को तो सुधारते नहीं, परन्तु दुनियाँ को सुधारना चाहते हैं क्योंकि उपदेश देना, फटकारना, आचरण करने की अपेक्षा कहीं आसान होता है, दूसरे का परामर्श स्वीकार कर आगे उन्नति करना कठिन काम होता है। अन्य लोग तो आपका प्रतिबिम्ब ही होते हैं, स्वयं आपको अपनी आकृति सुधारना है तभी तो प्रतिबिम्ब भी अच्छे दिखेंगे। सद्गुणों और परोपकार के लिए अपने अन्दर तीव्र इच्छा उत्पन्न

कीजिये; अभेद्य हो जाइये तभी दूसरों के सुधार के अभियान पर कदम बढ़ावें ।

मैं आपको एक विशेष पूजा पद्धति बताऊंगा जिससे आपको दिव्य-शक्ति प्राप्त होगी । सर्वप्रथम ब्रह्म पंचमहाभूत—आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी के रूप में व्यक्त होता है । यह सब संसार दो अथवा अनेक इन्हीं पंचमहाभूतों के विभिन्न अनुपातों में संयुक्त होने से उद्‌भूत हुआ है । इन पंचमहाभूतों की तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध होती है जिन्हें कान, त्वचा, आंख, जिह्वा और नासिका के द्वारा अनुभव किया जाता है । चूंकि ये (पंचमहाभूत और उनकी तन्मात्रायें) दिव्यता से ओतप्रोत और संपृक्त होते हैं, इनको समुचित श्रद्धा, विनम्रता और कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये ।

अपना पराया कल्याण करने के लिये इनका सावधानी से उपयोग करो । इनको संयमपूर्वक सभी के कल्याण के लिये, प्रेमपूर्वक समाज के सेवा भाव से प्रयोग में लाओ । ये सभी स्वतंत्र और अद्‌भुत क्षमता-युक्त हैं । इनके बाहुल्य और बहुमूल्य की ओर ध्यान दो । आप अपने अनुभव से भी जानते हैं कि वायु, अग्नि, अथवा जल की अधिकता स्वास्थ्य के लिए अहितकर होती है । आवश्यकता से अधिक जल पी जाना, अपने का उत्पीड़न है, अधिक वायु को श्वास द्वारा अन्दर ले जाने से दम घुटने लगती है । सावधानी से अल्पमात्रा में अग्नि का उपयोग, हमें गर्म रखता है, अन्य पकाने, गलाने के कार्यों को पूरा करता है, सीमा पार करने से सर्वस्व स्वाहा हो जाता है । ध्वनि भी एक सीमा के बाहर होने पर एक आतंक हो जाती है जो कि लोगों को बलात् उनके कार्य विमुख कर विक्षिप्त भी कर डालती है ।

इसलिये दक्षतापूर्वक इन (पंचमहाभूतों) का उपयोग भी एक प्रकार की पूजा ही है। हमारे शरीर की यान्त्रिक प्रक्रिया एक स्थिर ताप की अवस्था को बनाये रखती है। इस स्तर के ऊपर अथवा नीचे तापक्रम पर शरीर अस्वस्थ और शिथिल हो जाता है। प्रकृति तत्वतः दैवत्व ही है। 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' यह सब दैवत्व ही तो है। वासुदेवस्सर्वमिदम्, यह सब वासुदेव, भगवान है। इसलिये आहिस्ता से चलो, विनम्रतापूर्वक गतिविधि रक्खो और कृतज्ञतापूर्वक उपभोग करो। एक बार एक तपस्वी की दूध के लिये बड़ी इच्छा थी, उसने भगवान् से इस इच्छा की, पूर्ति अथवा निरस्त, करने की प्रार्थना की। उसे ज्ञात था कि भगवान अनंत शय्या पर क्षीर सागर में विश्राम करते हैं। भगवान् के इसी रूप का, नारायण का, उसने ध्यान किया। यद्यपि प्रारंभ में तपस्वी का उद्देश्य केवल दूध प्राप्त करना मात्र था, परन्तु भगवान् उसकी लगन पर इतने प्रसन्न हुये कि उसकी परीक्षा लेकर उसे मोक्ष प्रदान किया।

जिसने दूध की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की, उसे सदा सर्वदा के लिये मातृ-दुग्ध से वंचित कर दिया गया। भगवान् की कृपा ऐसी ही महान होती है। भगवान ने अपनी करुणा से उस पर दया की कि क्यों वह एक प्याला दूध के लिए व्यर्थ प्रतिदिन इतना भटकता रहता है।

व्यक्ति को अपने अन्दर गंभीर वैराग्य को जागृत करना चाहिये। इससे कोई लाभ नहीं होता कि प्रवचन अथवा धार्मिक कथा सुनकर आप अपने खाने पीने की कोई प्रिय वस्तु का त्याग कर दें; उन सभी वस्तुओं और क्रियाओं का त्याग कीजिये जो आपको भगवान् से दूर करने वाले हों।

जब शान्ति छा जाती है आपको भगवान् की उपस्थिति का भान होने लगता है। बाजार की चिल्लपों और हड़बड़ी में आप भगवान् के पदार्पण को नहीं सुन सकते। वह शब्द ब्रह्म है, वह तभी गूंजता है जब सर्वत्र शान्ति छा जाती है। इसीलिये तो मैं शान्ति, धीरे धीरे वार्ता और मृदु संभाषण के लिये आग्रह करता हूं। थोड़ी बात करो, धीरे-धीरे और कम से कम आवाज हो। सत्य और मृदु वात करो। जब आपको कोई भारी वस्तु रखना हो तो उसे धीरे से रक्खो, खड़े से मत गिराओ कि सारा वातावरण आवाज से गूंज उठे। अपने बिस्तर भी ऊंचाई से मत गिराओ कि शोर होवे। जहां बिछाना चाहते हो, झुककर धीरे से रखो। अपने हर कार्य को, सावधानी से सबसे कम शोर के साथ करो। सभी कार्य कम से कम बोलते हुए करो। दूर के व्यक्ति को भरपूर शक्ति से चिल्लाकर मत पुकारो। उसके पास जाओ या संकेत से उसे अपने पास बुलाओ। जोर का शोर आकाश को गंदा करता है ठीक वैसे ही जैसे जल और पृथ्वी का दूषण किया जाता है।

नवरात्र

इसीलिये तो यहां प्रशान्ति निलयम में हम लोग कुछ नियमों का पालन साधना के रूप में करते हैं। आप लोगों से भी यही अपेक्षा की जाती है कि शान्ति का वातावरण बनाये रखने की साधना, जो आप यहां सीखते हैं, आप अपने साथ बाहर भी जहाँ जहां जावे, साधना के सर्वप्रमुख अंग के रूप में ले जावें। स्थान, जल वायु, पृथ्वी और विद्युत का उपयोग भी सावधानी और मितव्ययता से कीजिये। जब आप प्रवचन सुनते हो तो ऐसा प्रबंध पहले ही से कर रक्खें कि आपका मन साथ के बर्तन-भांडे और सामान में ही न उलझा रहे। पहले उन्हें सुरक्षित रखकर तब आवें; या फिर अधिक अच्छा हो कि आप उनके प्रति तथा अन्य भौतिक पदार्थों के प्रति इतना अनुराग और मोह ही

न रक्खें। तब आप जप और ध्यान; नाम स्मरण में समय का शान्ति-पूर्वक सदुपयोग कीजिये; क्योंकि शान्ति और आनन्द बाह्य जगत में नहीं; अपने अन्दर ही से खोज निकालना है, एक बार जब उनका अनुसंधान मिल जावे तो फिर पुन: कभी उदास या क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं है। इस भव्य वातावरण और पवित्र अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा करो। प्रत्येक श्वास के आवागमन के समय भगवन्नाम उच्चारण होता रहे। भगवान में, भगवान के लिये, भगवान के साथ संयुक्त हो जाओ। जिस प्रशान्ति पताका को मैं फहरा रहा हूं उसका यही संदेश है।

प्रशान्ति निलयम्
१५-१०-१९६६

—०—

४५

सर्वोच्च वैद्यचिकित्सक

इस देह-यान की याचना तो देवता भी करते रहते हैं। आप जानते हैं कि देवता लोग भी शरीर धारण कर इस कर्म-भूमि, साधना क्षेत्र में आने की इच्छा करते हैं जिससे वे वैराग्य, बुद्धि, विवेक से युक्त साधना कर सकें। क्योंकि मानव शरीर ही एक मात्र वह योनि है जिसके द्वारा उस परमतत्व की प्राप्ति के लिये प्रयास किया जा सकता है कि-जिसे पाकर फिर और कुछ पाना या करना शेष नहीं रहता है। शरीर, जिसके लिये चिकित्सालय की व्यवस्था की जाती है, उस जीवात्मा अथवा शरीरी का रथ है जो उस पर आरूढ़ है अथवा उसका निवासी और स्वामी है। यह वह किला है कि जिसमें स्थित हो कर वह आसक्ति, अहंकार जैसे शत्रुओं से युद्ध करता है, यह वह नाव है जिसमें बैठ कर वह भव-सागर और संसार को पार कर सकता है। आध्यात्मिक साधना से उस परमतत्व की प्राप्ति एक ऐसा संकट पूर्ण अभियान है जो आग से खेलने, अथवा सिंहों से द्वन्द्व युद्ध अथवा असभ्य जंगलियों की भीड़ में फंस कर निकलने के समान संकटों से परिपूर्ण है। साधक को सदैव सतर्क, चौकन्ना और सभी परिस्थितियों से निवटने के लिये प्रशिक्षित रहना है। इस पथ की विभीषिकाओं के समक्ष अनेकों ने निराशा और भय से घुटने टेके हैं। उपनिषदों में साधक के मार्ग को छुरे की धार के समान तीक्ष्ण और पतला बताया है।

मानव सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। सभो जीवधारियों में उसे ही दिव्य अवसर प्राप्त हुआ है। यद्यपि हाथी दीर्घायु होता है और सिंह अधिक भयानक होता है, गृद्ध अधिक दूरदर्शी होता है, मुर्गा नियमित रूप से ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाला है, गाय की आत्म बलिदान भावना सर्वोपरि होती है, परन्तु मानव में यह सभी तथा अन्य भावनाओं की क्षमता असीम और अगाध होती है, उन्हें तो समुचित साधना से विकसित किया जाता है। यदि वह केवल भगवत् प्राप्ति की पिपासा को ही जागृत कर ले तो वह सदा सर्वदा के लिये सन्तोष पा जाता है अन्यथा सदा असन्तोष में तड़पता रहता है। उसे धन, पृथ्वी, भवन, साज-सज्जा पदलिप्सा, शक्ति अधिकार और अन्य ऐसी क्षुद्र लालसा पूर्ति में संतोष पाने की मृगतृष्णा बनी रहती है। अंत में जब मनुष्य इस संसार को छोड़ने लगता है—और छोड़ना तो अनिवार्य है ही, उसके स्त्री-बच्चे जोर-जोर से विलाप करके उससे पूछते हैं कि "आपके जाने के वाद हमारा क्या होगा?" परन्तु तब तो उस वेचारे के समक्ष इससे अधिक तात्कालिक और महत्त्वपूर्ण समस्या होती है "अब मेरा क्या होगा?" यह प्रश्न अधिक व्यक्तिगत है; और उस समय इसका समाधान खोजने अथवा कुछ शुभ कार्य कर लेने का न, कोई अवसर रहता है और न क्षमता ही।

वास्तव में यदि उसने कोई प्रयास परमतत्व को खोजने का किया होता तो उसे यह तत्त्व ज्ञात भी हो जाता और वह एक मुस्कराहट के साथ यहां से विदा हो जाता; नकि कराहता और हाय-तोबा मचाता। मनुष्य जन्मते ही असहाय अवस्था में रो उठता है परन्तु उसे आनन्दपूर्वक मुस्कराते हुये प्रस्थान कर जाना चाहिये। इतने दिन यहां जीने का लाभ और उद्देश्य ही क्या जो इतना भी न कर पाया। परन्तु यहां तो जीवन प्राय: व्यर्थ ही बिता दिया जाता है। ईश्वर ही हम लोगों को, जीवन के झंझावात और संकटों में, एक शरण लेने का ठिकाना

है; उसी की हम उपेक्षा और उदासीनता से आवभगत करते हैं। इसीलिये हमें कोई न कोई अभाव और शोक बना ही रहता है और अंत में वह असफल परिश्रम से चूर-चूर होकर निराशा से अंधा हो जाता है। अधिकांश बीमारियाँ इसी निराशा और निर्बलता से उत्पन्न हो जाती हैं।

इस देह का इसीलिए पोषण किया जाता है कि मानव देही--जोकि वास्तव में इस देह का निवासी है, तक पहुँच सके। भीष्म ने शरशय्या पर से यही उपदेश दिया था कि चूँकि शरीर के द्वारा ही अनेकों उत्तम कार्य किये जाते हैं इसलिए इस शरीर की रक्षा और पोषण ही करना उचित है। एक तालाब में ३ मछलियाँ रहती थीं। एक ने शेष दो से कहा कि तालाब का पानी सूखता जा रहा है अतः हम लोगों को समय रहते ही दूसरा आश्रय खोज लेना चाहिए। एक ने कहा कि समय आने पर वह अपनी रक्षा स्वयं कर लेगी। तीसरी मछुये के जाल में फँस गयी जबकि पहली तो समय से ही दूसरे सरोवर को चली गयी थी और दूसरी जाल काट कर निकल भागने में सफल हो गयी थी। यम ही तो वह मछुआ है, यदि जीवन की निरन्तर घटती हुई अवधि के प्रति आप सावधान नहीं हैं, यही तो तालाब का जल सूखना है, तो व्यक्ति पकड़ जाता है। भगवान् की कृपा रूपी महासागर में खिसक जाओ, वह कभी नहीं सूखेगा अथवा जाल को काट कर निकल जाने का गुण ही सीख लो। सतोगुणी मछली ही दूसरे सरोवर को चली गयी थी और रजोगुणी पुरुषार्थ से जाल के बाहर निकल गयी। आलसी, तमोगुणी मछली ही पकड़ी गयी थी सतोगुण की वृद्धि करके अपने आपको बचा लो, आलस्य को त्याग दो, रूढ़िवादिता का परित्याग कर दो अपने आपको प्रभु चरणों में अर्पित यंत्र-मात्र बना डालो। आप पर प्रभु कृपा बरसेगी।

निरन्तर नामस्मरण ही वह प्रक्रिया है जिससे आप प्रभु-चरणों में अर्पित होने की भावना को जगा सकते हैं और दृढ़ कर सकेंगे। जब भी कोई विपत्ति या संघर्ष आवे तो आप इस साधन को विश्वास में शिथिलता बिना लाये हुए अधिक दृढ़ता से अपनाइये। जबकि औषधि की आवश्यकता अधिक बढ़ी हुई हो उस समय औषधि का प्रयोग त्यागना उचित नहीं है। कैसी दयनीय स्थिति है कि असफलता की पहली ही ठोकर में आप साहस और विश्वास, त्याग, राम, कृष्ण या साई बाबा को छोड़ बैठते हो।

नामस्मरण के सम्बन्ध में एक बात और। कुछ लोग राम, साई राम या महादेव कह कर अपने हृदय से घृणा या निराशा या दुख की भावना प्रकट करते हैं, उनकी बोली के ढंग से अरुचि, अनादर या आश्चर्य का भाव प्रकट होता है। वे एक कराहट या ठंढी साँस लेकर उच्चारण करते हैं। यह ठीक नहीं है। भगवान के नाम को सदा आनन्द, कृतज्ञता, उत्साह और उनकी अनुपम महिमा को स्मृति के साथ उच्चारण करना चाहिए। आप प्रेम से और आकांक्षा से नाम लीजिये।

एक महात्मा थे। जब वे एक यज्ञ करा रहे थे, उन्हें एक सांप ने काट लिया। उनके शिष्यों ने घटना पर बहुत पश्चाताप किया और दुष्ट कीड़े की निंदा की; परन्तु महात्मा ने शिष्यों को शान्त किया और समझाया, "नहीं, यह तो भगवान का भेजा हुआ दूत है। सभी प्राणी तो अपने सगे-सम्बन्धी ही हैं। यह तो मुझे इस शरीर से मुक्ति देने आया है। उसका सम्मान करो, स्वागत करो, भगवान के दूत को मत मारो।" मृत्यु कोई निन्दनीय घटना नहीं होती है, यह तो यात्रा का एक अंत ही होता है। जब गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं तो मालिक कार की खिड़की खोल कर बाहर आ ही जाता है। यह पूर्णाहुति है, एक

सुखद परिसमाप्ति है, कम से कम इसे ऐसा ही समझना चाहिए। यदि व्यक्ति में बुद्धि का ठीक-ठीक विकास होवे तो यही स्थिति होगी। इसके लिये तैयार रहना चाहिए।

बुद्ध जी के पिता चाहते थे कि बुद्ध जी इन्द्रियों के भोग और सांसारिकता में ही फँसे रहें। उन्होंने अपने पुत्र के चारों ओर सुख और वैभव का वातावरण बनाये रखा और उन्हें एक ऐसे महल में रखा, जहाँ कि कोई अशुभ, अप्रिय, असुन्दर वस्तु अथवा व्यक्ति था ही नहीं। इस महल के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें भी निर्मित करा दीं। फिर भी बुद्ध जी मानव दुखों का रहस्य ज्ञात करने के लिये वैराग्य के वातावरण में निकल आये। वे इन दुखों, मृत्यु और बुढ़ापे का इलाज भी खोजना चाहते थे। परन्तु आज का व्यक्ति अपने झूठे सुखोपयोग और सांसारिकता में डूबे-डूबे ही सस्ते मोल में भगवान को प्राप्त करना चाहता है। यह तो उस सास की मनोवृत्ति है जिसे अपनी बहू से इतनी घृणा थी कि वह उसे विधवा होने की गाली भी देती थी परन्तु अपने बेटे को चिरंजीवी बनाये रखना चाहती थी। अब लड़के के जीते जी बहू कैसे विधवा होवे; यही असंगति है। झूठे सुखों से चिपके रहते हुए भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। आपको वस्तु के मूल्य का कुछ तो ज्ञान होना ही चाहिए। एक स्त्री ने खरल की मुसरिया अपने पति के सर पर फेंक मारी, चीनी मिट्टी की मुसरिया के टूट जाने का उस स्त्री को बड़ा दुख हुआ परन्तु पति के सिर में जो घाव हो गया उसकी उसे कोई चिन्ता न थी। क्या यह बुद्धिमत्ता की निशानी है ? क्या ऐसों को मूल्य का कोई ज्ञान होता है ? इस शरीर को भगवान ने आपको किराये पर रहने के लिये दिया है; वह भगवान ही इसका स्वामी है। जब तक वह रखे रह लो, उसको धन्यवाद दो और विश्वास और भक्ति के रूप में किराया भी चुकाते रहो।

दृढ़ इच्छा शक्ति ही सर्वोत्तम पौष्टिक आहार है। जब आपको यह बोध होता है कि आप अमृत पुत्र हो, ईश्वर कृपा प्राप्त कर चुके हो तभी आपकी इच्छा शक्ति भी दृढ़ होती है। औषधि और चिकित्सालय की हाजिरी तो उन लोगों के लिए है जो सन्देह, दुविधा और तर्क से पीड़ित होते हैं, कि यह डाक्टर अच्छा है, अथवा उस औषधालय में उत्तम चिकित्सा होती है, अथवा यह औषधि बढ़िया है। जिन्हें उस सर्वोच्च चिकित्सक पर अटल विश्वास है उनके लिए तो भगवन्नाम ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। पांडवों में भक्ति और विश्वास दोनों थे; इसी लिए उन्हें प्रभु कृपा प्राप्त हुई और उन्होंने अपने क्रूर, धूर्त शत्रुओं को पराजित किया। भगवान के द्वारा जो कुमक-सहायता पहुँचाई जाती है उसी पर भरोसा करना चाहिए। वह जब आपको प्राप्त हो जाती है फिर निराशा, पराजय और अपमान उसी प्रकार अदृश्य हो जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर कोहरा नष्ट हो जाता है। आज जबकि इस अस्पताल में वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है, मेरा आपको यही परामर्श है कि आप बीमारी, औषधि और अस्पताल से दूर ही रहें। यह तभी संभव है जबकि आप में आध्यात्मिक आकुलता और भगवत्कृपा के लिए पुकार हो।

श्रीमती मैंके ने, जो न्यूयार्क की निवासी हैं, अपने अध्यक्षीय भाषण में अपने उन अनुभवों का वर्णन किया है जो उन्हें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मानसिक रोगियों के लिए अस्पताल चलाने में प्राप्त हुए हैं। उन्होंने बताया है कि संगीत का बड़ा स्वास्थ्य-प्रद प्रभाव पड़ता है। उन्होंने हांगकांग के विकलाँगों के अस्पतालों में भी इसी का प्रयोग किया है। मानसिक उदासी के लिए आनन्द ही सर्वोत्तम औषधि है; वास्तव में जब आन्तरिक आनन्द के स्रोतों की उपेक्षा की जाती है तो मनुष्य दुखी हो जाता है। भारत मस्तिष्क पर संगीत के आह्लाद कारक प्रभाव को प्राचीन काल से जानता आया है; संगीत मानसिक

क्षोभों को शान्त कर सकता है, चिन्ता और उद्वेगों की लहरों और कम्पनों को शान्ति की लोरियों में बदल देता है। संगीत के द्वारा विषय-वासनाओं को प्रशान्त किया जा सकता है, उद्वेगों का शमन और भावों को उच्चादर्शों के प्रति उन्मुख किया जा सकता है। हमारी सभ्यता में संगीत को उच्च महत्त्व का स्थान दिया गया था, आज उसे हम भूल गये हैं।

आज हम फिल्म जगत के घुंघरुओं की झनकार और उछल-कूद को सराहते हुए पक्के संगीत की गम्भीरता और महत्ता को खोते जा रहे हैं। लोग भारतीय संगीत, सभ्यता और इसकी सुरक्षा के भाषण तो लम्बे-लम्बे और गला फाड़कर देते हैं कि इसकी उन्नति, विकास और रक्षा होनी चाहिए, परन्तु जब व्यवहार की बात देखो तो वे बुरी तरह असफल रहते हैं। जब इस शरीर ने नौ वर्ष की आयु पूरी की थी, मैंने आधुनिक मानव के इस चरित्र पर एक नाटिका लिखी थी कि वह कहता कुछ है और करता उसके विपरीत है। जब वेदों की उपेक्षा की जावेगी तो वेदना तो होवेगी ही। उपनिषदों की और गीता की शिक्षा से मनुष्य को अपने सभी कार्यों की संगति, मूल्य और महत्त्व ज्ञात हो जाता है जिससे वह भौतिक और मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य बनाये रखने में समर्थ होता है। वे मानव को अनन्त-शान्ति और सौभाग्य के पथ और क्षेत्र में ले जाते हैं।

चिकित्सालय दिवस
१५-१०-६६
दशहरा

—०—

४६

अपना जमा खाता शून्य कर लो

यहाँ दशहरा के कार्यक्रम में आपको विभिन्न कार्य जैसे वेदपारायण, दिव्य विग्रहों की पूजा, निर्धनों को भोजन, नाटक, संगीत, हरिकथा, पुराणों की कथा, शास्त्रों पर भाषण आदि मिलेंगे, जिनका उद्देश्य भले ही आपको स्पष्ट न हो, फिर भी यह सब उसी एक उद्देश्य से प्रेरित हैं। आपको ऐसा प्रतीत होगा कि यह सब तो परम्परागत रीतियों का पालन है। नहीं, प्रत्येक कार्य का एक गम्भीर महत्त्व है। किसी न किसी वर्ग को कुछ सुनिश्चित लाभ पहुँचाना ही उद्देश्य होता है। वेद तो सभी मनुष्य मात्र के लिये हैं, उनमें शांति के लिये तथा भौतिक तत्वों के उपद्रवों से मानव समाज की रक्षा के लिए प्रार्थनायें हैं। उनमें प्रकृति की शक्तियों को शान्त और कल्याण-कारी बनाने के लिए प्रार्थनायें हैं। इसलिए वेद-पारायण से विश्व-शांति और मानव-कल्याण होता है। उन लोगों के लिए, जिन्हें भगवान के नामोच्चारण मात्र से आनन्द की प्राप्ति होती है, और जिन्हें भगवान का प्रत्येक नाम उनके एक विशेष ऐश्वर्य को प्रकट करता है, यह पारायण पूजा है। जिन्हें अपनी साधना में पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है, उनके लिए पंडितों के प्रवचन होते हैं। संगीतमय सस्वर पाठ से शास्त्रों और पुराणों की कथा रोचक और आनन्दप्रद हो जाती है। हमारे शास्त्रों में जो शिक्षा दी गयी है उसे नाटक-अभिनय से सर्वसाधारण के लिये प्रत्यक्ष किया जाता है। इन सब से मनुष्य के हृदय कमल की पंखुड़ियाँ

खिल उठती हैं। मनुष्य का हृदय रूपी कमल भगवान की महिमा रूपी सूर्य के लिए आकुल रहता है। लेकिन इसे प्राप्त करना कठिन है। सभी सांसारिक पदार्थों से विरक्ति होने पर ही इसकी प्राप्ति होती है। यद्यपि भगवान हमारे सबसे प्रिय और सबसे निकट हैं और अज्ञान के कारण आँख उन्हें नहीं देख पाती है। ईश्वर को मनुष्य से अद्वितीय प्रेम है। वह मानव को अप्राप्य, सुदूर और भयानक प्रतीत होता है। तारागण, जो केवल प्रकाश बिन्दु से लगते हैं, वास्तव में हम से बहुत दूर होने के कारण इतने छोटे दिखाई देते हैं। इसी प्रकार से अनेकों को ईश्वर भी महत्त्वहीन तथा प्रभावहीन प्रतीत होता है क्योंकि उन्होंने अपने को ईश्वर से बहुत दूर मान लिया है, तथा कर भी लिया है। यदि कुछ लोग कहें कि ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है तो इसका फलितार्थ यही समझना चाहिये वे ईश्वर से अत्यंत दूर हो गये हैं।

एक हरी लौकी पानी में डूब जाती है, जब कि सूखी तैरती रहती है। सूख जाओ, आसक्तियों, इच्छाओं, चिन्ताओं और आशंकाओं से रहित हो जाओ। तब आप भी इस भवसागर में अप्रभावित हुए तैरते रहेंगे। स्वयं पानी भी भाप बन कर उच्च स्तरों तक जा पहुँचता है। 'योगाश्चित्तवृत्ति' निरोधः चित्त की वृतियों को रोक लेने का नाम योग होता है। इन वृत्तियों के कारण ही झोंके आते हैं। इच्छा रहित हो जाओ क्योंकि इच्छायें ही तुम्हें नीचे घसीटती हैं। केवल सत्य के साक्षात्कार की ही आकांक्षा रक्खो। वह सत्य प्रकाशित होने के लिये तुम्हारे अंदर ही तो प्रतीक्षा-रत है। घुटनों तक पानी में खड़ा धोबी प्यास से व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी सर्वव्याधि-हर औषधि पास रखते हुए भी कष्ट पाता है।

ईश्वर अंतर्यामी है, इसलिए वह बाहर की दुनियां में ढूंढने

पर कहाँ मिलेगा ? उसको निरुद्देश्य होकर प्रेम करो, ऐसी भावना करो कि भगवान के बिना सभी कुछ निस्सार है। अनुभव करो वही सर्वस्व है। तभी आप भगवान के और भगवान आपके हो जावेंगे। इससे अधिक समीपता के सम्बन्ध की कल्पना ही नहीं हो सकती है। रसोई में चाहे पचासों झांक रहे हों, परन्तु यदि आप स्वामी के पुत्र हैं तो आपको ही सबसे पहले परोसा जावेगा।

नाम प्रेम की ज्योति जगा सकता है। बाँस के दो टुकड़ों को परस्पर दीर्घ काल तक संघर्षण करने से वृक्षों को जलाने में समर्थ पर्याप्त अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार जब भगवान के नामों को शीघ्रता और भावना से युक्त होकर जपा या संकीर्तन किया जाता है तो ज्ञान के आलोक से मस्तिष्क प्रकाशित हो जाता है। 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्मणाम्' यही तो गीता के वचन हैं। ज्ञान रूपी अग्नि से सभी क्रियाओं के फल राख की तरह शेष हो जाते हैं। फिर उनका मनुष्य पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। एक रस्सी भी जल जाने के बाद किसी का बंधन नहीं कर पाती है। जब तक कर्मफल रहते हैं मनुष्य को जन्म लेना ही होगा और संस्कार क्षीण करना पड़ेगा। इस प्रकार कर्म की तख्ती को धो-पोंछ कर ऐसा स्वच्छ कर लो, कि जन्म-मृत्यु का खाता देने, लेने के दोनों स्तंभों में शून्य हो जाये। तभी यह चालू खाता भी बन्द हो सकेगा। सभी क्रियाओं की प्रेरक इच्छा ही तो होती है। इच्छा ही चाबी है। उन लोगों में, जिनकी सभी इच्छायें पूर्ण हो गयी हैं, कोई क्रिया होती ही नहीं क्योंकि उनका निवास आत्मा में होता है और आत्मा की कोई इच्छा नहीं होती।

कर्मफल का अवशेष रहने पर शरीर में, कुछ काल तक, जेल की तरह रहना ही होगा। शास्त्रों ने मनुष्य को निम्न चार को शून्य खाते में घटा देने का उपदेश दिया है, अग्नि की चिनगारी, पराया ऋण, रोग,

शत्रु अवसर और समय पाकर प्रबल हो उठते हैं अतः इनको पूर्णः निःशेष करने तक कभी निश्चिंत मत होओ। इसी प्रकार कर्मफल की समाप्ति भी निःशेष करलो अन्यथा इसी कर्म फल के भोग के लिये कितने ही जन्म लेने पड़ सकते हैं।

पहली सीढ़ी कर्म-जिज्ञासा की होती है। इसके अनुसार उचित ढंग से, उचित मनोवृत्ति से कर्म करना होता है; तब धर्म जिज्ञासा की सीढ़ी आती है। इसके अनुसार नैतिकता के नियमों का पालन सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने (लोक संग्रह) और कर्त्तव्य पालन के लिये होता है। अंत में ब्रह्मजिज्ञासा की बारी आती है; तब साधन के प्रथम पग के रूप में नामस्मरण पर निष्ठा होने लगती है। नाम तो शंकर है, इससे आप किसी भी आकृति व आकार के खिलौने ढाल सकते हैं। उनको किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है जो इसकी आकृति से मेल खाता हो; चाहे उसे खरगोश, चील्ह, हाथी कुछ भी कह लो परन्तु उनकी मिठास और भोज-मूल्य में कोई अन्तर नहीं आता है। इसी प्रकार साधना में नामस्मरण के लिये चाहे ॐ शक्ति, ॐनारायण, ॐश्रीनिवास, ॐपरमात्मा, ॐसाई राम कुछ भी चुन लो, इनका आत्म संस्कार और कलुष रहित बनाने में एकसा प्रभाव होता है, जिह्वा पर मिठास एकसी ही अनुभव में आती है।

नामस्मरण से आप भगवच्चिन्तन में लीन रहेंगे। अब आप उस चूहे की भाँति हो गये हैं जो कि एक मृदंग के अन्दर बंद कर दिया गया हो। जब बजाने वाले की थाप दाहिनी ओर पड़ती है तो चूहा बाईं ओर भागता है और जब बाईं ओर थाप लगती है तो यह दाहिनी ओर भागता है। इसी प्रकार आप भी परमात्मा से प्रकृति की ओर भागते हैं क्योंकि परमात्मा से संयुक्त रहने के अनिच्छुक हैं; साथ ही प्रकृति के निषेधों और निराशाओं से भी निरन्तर भागने की चेष्टा

भी करते हो। आप ब्रह्म से उत्पन्न हुये हो, उसी की महिमा की एक चिनगारी हो, आप उसी आनन्दार्णव की एक तरंग हो। अतएव आप को तभी शान्ति प्राप्त होगी जब उसी ब्रह्म में लीन हो जाओगे। मार्ग में खोये हुये शिशु को अपनी माता को पुन: पा कर जैसी प्रसन्नता होती है वैसा ही आनन्द आपको ब्रह्म लीन होने पर आवेगा। एक जलबिन्दु वाष्प बन कर आकाश में उठा, वहां सजातीय लोगों के सम्पर्क से बादल की संज्ञा प्राप्त की। पुन जलबिन्दु रूप में पृथ्वी पर बरस कर नाले नदी में होकर बहता हुआ अंत में महासागर को पहुँचता है। आप भी अपने बिछुड़े हुये महासागर को प्राप्त करें। यात्रा पर निकल पड़ो। तुम्हारी यात्रा शीघ्र और निर्विघ्न संपन्न हो। श्री मती मैंक्रे तो भक्तिभाव से इतनी पूर्ण है कि वे मुझसे संबंधित प्रत्येक जगह को अवर्णनीय पवित्र मानती हैं। इसलिये गत दिवस वे उस गाँव में जाकर उस स्थान से कुछ कंकड़ पत्थर बटोर लायीं जहाँ कि वर्तमान साई शरीर ने पुन: जन्म लिया था। वहां पड़ा प्रत्येक पत्थर उन्हें बहुमूल्य एवं आकर्षक प्रतीत हुआ। इस लिये एक पूरी बाल्टी भर के वे अपने कमरे में ले आईं; उन्हें इस बात की कोई आशंका ही नहीं है कि इस प्रकार उनका सामान, जब वे तेहरान, रोम, न्यूयार्क यात्रा पर जावेगी, कितना भारी हो जावेगा। जब एक दिन सब छोड़ना ही है तो इतने संग्रह की क्या आवश्यकता है? मन में भक्ति भाव रक्खो। सहृदयता, सद्भाव और अर्पण को बढ़ाओ। यही पर्याप्त है।

केवल सनातन धर्म में ही कर्म का महत्त्व मनुष्य के भाग्य का निर्माता होता है जिसके अनुसार वह जन्म मृत्यु विहीन स्थिति की ओर क्रमश: अग्रसर होता है। भगवान् अपनी महती कृपा से मानवाकार रूप में मनुष्यों के बीच में आकर उन्हें अपनी दिव्य लीला में सहचर बना कर उद्धार कर जगत का उद्धार करने के लिये उन्हें भी अपना सहभागी बनाते

हैं। यदि आपको इनमें से किसी पर भी संदेह है तो आपको निश्चय ही कष्ट उठाना और दुख भोगना बदा है। आपमें से प्रत्येक का उद्धार होना है; देर अथवा सबेर। उस परम दयालु की कृपा का भरोसा रक्खो जो सभी पर कृपा करता है। ऐसा सुयोग जितना शीघ्र बने उतना ही अच्छा है। दृष्टि के सम्मुख लक्ष्य स्पष्ट रहे और दृढ़ता से कदम बढ़ाते चलो।

दशहरा १९६६
१७-१०-६६

—०—

४७

मतवाले को पालतू बनाना

निस्सन्देह यह दुर्भाग्य ही है कि जो जाति कभी अध्यात्म साधन का अमृत-पान कर अपने दिन आनन्द और शान्ति से बिताती थी वह आज भय, विग्रह, असफलता और दुर्बलता के झंझावात में फँसी रहे। सरस्वती नदी, जो भूमि के नीचे नीचे बहती है और जिससे फसलें समृद्ध होती हैं जो फसलों को उगाती भी है, वही आज सूख गयी है भक्ति, श्रद्धा और विश्वास ही घट गये हैं, इसी लिये तो मानव मानव को अपना प्रतियोगी और प्रतिद्वन्दी मानता है; नकि उसे अपने इष्ट-देव की परछाईं।

मानव मात्र के लिये सहानुभूति से प्रेरित होकर महान ऋषियों ने दया कर के जो नियम, संयम, सीमायें और दैनिक लोकाचार की व्यवस्था निर्धारित की है वह इसी लिये कि मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मणा स्वच्छ रहे और उसकी वृत्तियाँ, इन्द्रियाँ और इच्छायें उसे सत्य, धर्म, प्रेम और शान्ति के आदर्श के विरुद्ध न ले जावें। उन्होंने घोषित किया है कि प्रत्येक कर्म की तौल नाप कर स्वीकृति तभी की जावे यदि वह भावों और उद्वेगों की शुद्धि करने वाला हो; इसके विपरीत यदि वह इनको गंदला और गंदा करने वाला हो तो अस्वीकृत किया जावे। भाव शुद्धि ही कर्म का फल होना चाहिये। प्रत्येक वह कार्य, जो भाव को धूमिल करे अथवा उसे उभाड़ कर रजोगुण की प्रवृत्ति

पैदा करे अथवा तमोगुण में गिरादे, त्याज्य और वर्जित ही मानना चाहिये। मनुष्य को त्याग की महिमा से अवगत कराने के लिये ही यज्ञ-याग की योजनायें निर्धारित की गयी हैं। मनुष्य को तड़क-भड़क और प्रदर्शन से बचना ही चाहिये।

यजमान् ऋत्विक् और सभी संलग्न व्यक्तियों के लिये यज्ञ जिस भौतिक और मानसिक अनुशासन (संयम, नियम) की व्यवस्था देते हैं वह उन्हें परब्रह्म की अनुभूति के साथ उसी तक पहुँचाने वाली भी होती है। बालपोथी के लुभावने चित्र बच्चों के मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और इसी आकर्षण के वशीभूत होकर बच्चे खेल-खेल ही में उसी पोथी के पाठों को भी याद कर लेते हैं और सन्निहित ज्ञान को हृदयंगम कर लेते हैं। परिवर्तनशील कर्मों के द्वारा ही "अक्षर" (अपरिवर्तनशील शाश्वत सत्य) का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मूर्ति पूजा मन्दिरों के कर्मकाण्ड और आठों पहर की पूजा-अर्चा, व्रत-उपवास, त्यौहार और पर्व सभी का उद्देश्य मनुष्य के मतवाले, चन्चल मन को येन-केन-प्रकारेण काबू में करके उसे सीधे मार्ग से आत्म साक्षात्कार के पथ का पथिक बनाना है।

जैसा कि मंत्री जी ने अपने भाषण में कहा है जीवन और जीविका के प्रति पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आने वाला परम्परागत दृष्टिकोण जो आज के युग में बदल चुका है, पुनः प्रतिष्ठित होगा। विज्ञान और पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक; माया कहकर संसार को घोर घृणा की दृष्टि से देखना अथवा घोर अहंभाव से पूर्ण होना; सभी कुछ प्रज्वलित अग्नि के ऊपर जमी हुई राख के समान फूंक मारने मात्र से उड़ जावेंगे। आकाश में तिरते हुये बादलों के समान, जिनकी छाया कभी-कभी पृथ्वी पर भी पड़ती रहती है, ये प्रलोभन और आकर्षण कुछ दूरी तक ही लक्ष्य से दूर हटा पाते हैं, परन्तु इस बात की कोई निराशा

पूर्ण संभावना नहीं है कि भारत अपने प्राचीन महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकार को खो देगा। चूंकि शासक-गण भी तो उसी उत्तराधिकार सम्पत्ति के प्रापक हैं, इसकी उपेक्षा की कम ही संभावना है। शासक शासितों से भिन्न नहीं है। जनता ही तो शासकों को निर्वाचित करती है और उन्हें शक्ति, उत्तरदायित्व और धन सौंपती है कि वे सर्वांगीण, सर्वजनीन, बहुमुखी उन्नति और विकास की योजना और कार्यान्वयन करें। इसलिये भूतकाल की अपेक्षा अब पारस्परिक सहयोग और संगठन की अधिक संभावना है पहले तो शासक और उनकी संस्कृति दोनों ही विदेशी थे।

मंत्री जी ने अपने भाषण में प्रकाश डाला है कि देश में यांत्रिकीकरण, औद्योगीकरण से अनेकों सामाजिक रूढ़ियाँ और वैयक्तिक कुप्रवृत्तियाँ उभड़ कर सामने आ गयी हैं। मंत्री जी ने इन बीमारियों के निराकरण के लिये सनातन धर्म की उपयोगिता और सामर्थ्य को स्वीकार किया है और वेद, शास्त्र, पुराणों के अध्ययन का आग्रह किया है। उन्होंने सुझाव दिया है कि देश के धार्मिक पथ-प्रदर्शकों की एक ऐसी समिति संगठित की जावे जो शासकों को सनातन धर्म के सिद्धान्त और व्यवहार को उन्नत करने और बनाये रखने में सहायता करती रहे। जो शासक देना चाहते हैं, शासित लेने को इच्छुक होवें। जो जनता प्राप्त करना चाहे उसकी प्राप्ति की व्यवस्था शासक करें। देश आध्यात्मवाद के क्षेत्र में इसी मौलिक भावना से आगे बढ़ सकेगा। लोग सोने के पीछे कम, और भगवान की ओर अधिक भागें। विषयवासना, धनलोलुपता, भोगविलास, निद्रा और असत्य प्रचार और वैभव प्रदर्शन को त्याग देना ही उचित है। ये सब मनुष्य को क्षुद्र आकर्षणों में बाँधते हैं; उसके दिव्य स्वभाव को कलुषित करते हैं जो कि सेवा, बलिदान और सबके प्रति प्रेम में विकसित होना चाहता है।

दशहरा १९६६

१७-१०-६६

४८

पूर्णात् पूर्णमुपादाय-पूर्णमेवावशिष्यते

प्रत्येक प्राणी को प्रेम की आवश्यकता होती है। वह प्रेम वायु को अन्दर ले जाता है और उसी प्रेम निश्वास को बाहर निकालता है। क्योंकि प्रेम ही तो जीवन प्राण है। प्रत्येक ही प्रेम स्वरूप है। प्रेम निर्भय होता है, अतः प्रेम को असत्य के आलंबन की कोई आवश्यकता नहीं होती। लोग भय के वशीभूत होकर सत्य को तोड़-मोड़ कर ऐसा व्यक्त करते हैं कि वह उसे अरुचिकर न लगे, कि जिससे लोग डरते हैं। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता है, वह स्वयं ही अपना पुरस्कार है। प्रेम करने-कराने का आनन्द ही तो एकमात्र लाभ है। जब यह ईश्वर के प्रति होता है तो इसे भक्ति कहते हैं। जबकि ईश्वर की महिमा, वैभव, शक्ति और दयालुता का परिचय मिल जाये तो फिर कौन ईश्वर को प्रेम करना न चाहेगा? प्रेम में तो सभी कुछ त्यागना पड़ता है, अहंकार, स्वयं को भूल कर आत्मविस्मृत होना पड़ता है, इससे ऊपर भी उठना होता है, इसे अतिक्रमण भी करना होता है। लोभ, लालच की किंचिन्मात्र रेखा, क्योंकि इसे विषय-वासना कहा जाता है, भी प्रेम को सौदेबाजी के स्तर पर घसीट लाती है। प्रेम को तो वह सब कुछ स्वीकार्य और सन्तोषप्रद होता है जो प्रेमपात्र देता है या करता है। शिशु तो प्रेममूर्ति होता है। इसकी मुस्कराहट कैसी भोली होती है? इसने अभी 'लाभ' के लिए कार्य करने का ढंग ही नहीं सीखा है। सांसारिक पदार्थों के प्रति इसे कोई आसक्ति या

वासना नहीं है। यह एक गुड़िया या खिलौने से क्षणभर खेलता है उसके बाद दूसरे ही क्षण उसे फेंक भी देता है। प्रेम परिपूर्ण शिशु हृदय आयु वृद्धि के साथ-साथ कठोर होता जाता है क्योंकि लालच, घृणा और ईर्ष्या की वृद्धि संयुक्त हो जाती है।

केवल प्रेम से ही सेवा और उन्नति के कार्य सफलतापूर्वक किये जा सकते हैं। प्रेम सहानुभूति उत्पन्न करता है, जहाँ घृणा पथभ्रष्ट करती है वहाँ प्रेम मार्ग बनाता है। जबकि डगमगाता शिशु चलना सीखता है तो प्रेम मार्ग में बाधायें नहीं खड़ी करता है बल्कि उसके गिरने पर दृष्टि और सावधानी रखते हुए अगले कदम बढ़ाने के लिए स्वागत, प्रोत्साहित और प्रलोभित भी करता है। ग्रामवासियों के लिए जिस लाभकारी योजना की रूप-रेखा मंत्री जी ने अभी प्रस्तुत की है उसे प्रेम और सहानुभूति से ही पूर्ण किया जा सकता है। देश में अनेकों लाभकारी कार्य कठोर आलोचना, और अनुचित रूप से हतोत्साहित करने के कारण अलाभ-कर हो जाते हैं। केवल भक्ति ही लोगों के हृदय को सत्य और धर्म से परिवर्तित कर सकती है।

जीवन के उत्थान-पतन को सामान्य भाव से ग्रहण करो। वे तो इस विश्व के घटना-क्रम के स्वाभाविक परिणाम-मात्र हैं। रामकृष्ण स्वामी नामक एक संन्यासी के एक शिष्य ने जब दौड़ते हुए आकर उन्हें सूचित किया कि उनके पुत्र का स्वर्गवास हो गया है तो स्वामी जी अविचलित रहे और केवल यही कहा, "पानी बहता है, वायु चलती है और अग्नि जलती है"—अर्थात् संयुक्त पंचभूतों को कभी न कभी तो पृथक होना ही पड़ता है। दूसरों की चिन्ता से चिन्तातुरों को देखकर स्वामी जी हँस दिया करते, वे चूंकि ज्ञानी थे इसी से निर्भय थे। जिन्हें ज्ञान होता है उन्हें ही गुरु कहते हैं। वे तूफानों में भी अविचलित रहते हैं। जिस पत्तल पर अभी भोजन नहीं परोसा गया

है वही हवा के झँकोरों से उलट-पलट होती है; जब इसे भोज्य पदार्थों से दबा दिया जाता है तो यह अविचलित हो जाती है। सद्गुण, विश्वास, निष्ठापूर्वक लगन से संयम पालन, भक्ति, वैराग्य, शान्ति, आध्यात्मिक भोजन के व्यंजनों की तालिका में हैं।

जब आपको वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जावेगा तो आपको सौभाग्य और दुर्भाग्य पर सुख-दुख की प्रबल अनुभूति नहीं होगी। सच्चा शूर तो वही है जो दोनों को समान रूप से ग्रहण करे। मनुष्य के हृदय में आनन्द के गम्भीर तल को मामूली वायु या तूफान प्रभावित नहीं कर पाते हैं।

मंत्री जी ने उन मालियों का उदाहरण दिया है जो लौकी को लम्बा और सीधा उगाने के लिए उसके एक सिरे पर कुछ भार लटका देते हैं। प्रारम्भ में ही यह उपाय कर देने से लौकी लम्बी और सीधी उगती है। इसी प्रकार बच्चों को भी माता-पिता गुरु जन और समाज, जिसके सम्पर्क में वे आते हैं प्रारम्भ से ही शिष्ट और सद्गुणी बनाने का प्रयास करें। प्राचीन काल में उन्हें ब्राह्म मुहूर्त में ही प्रातः ४ बजे जगाया जाता था। माता प्रातःकाल होने तक उत्तम श्लोकों और गीतों को गाती रहती थीं। तब वह गृह कार्य में लग जाती थी और बच्चे स्वतः प्रार्थना की भावना उससे ग्रहण करते थे। अब बच्चों को पुराणों के पात्रों-पात्रियों, राम, कृष्ण तथा अन्य अवतारों का परिचय सिनेमा की फिल्म-दर्शन से होता है। वे इनको सिने संसार के अभिनेता और अभिनेत्रियों से सम्बन्धित करके जान पाते हैं कि किसने किसका अभिनय किस फिलम में किया है। वे पुराणों और महाकाव्यों की मृदुता और भव्यता से वंचित रह जाते हैं क्योंकि उन्हें आधुनिक और विकृत परिचय के फलस्वरूप वह सब नहीं प्राप्त होता है।

प्रायः माता-पिता बच्चों को महात्माओं के समीप नहीं जाने देते, न उनके प्रवचन और विद्वानों के भाषण सुनने के लिए उत्साहित करते हैं; न उन पवित्र स्थानों पर जाने देते हैं जहां का वायुमण्डल साधना और स्वाध्याय की सुगंधि से सुरभित है। अर्जुन को धनंजय की संज्ञा इसलिए नहीं दी गयी है कि वे जहाँ-तहाँ से धन जीत लाये थे और युधिष्ठिर के कोष को भर दिया था बल्कि इसलिए कि वे स्वयं विवेक, वैराग्य, विचक्षण, रूपी धन से धनी थे। यही वह धन है जिसे जोड़ने, कमाने का उद्योग प्रत्येक को करना श्रेयस्कर है।

क्या पुत्र ने अपने अध्ययन के समय का समुचित सदुपयोग किया है, ज्ञात करने के लिये एक पिता ने शिक्षा समाप्ति के पश्चात् पुत्र के घर लौटने पर उससे कुछ प्रश्न किये। पुत्र ने अपने उत्तरों से पिता को पूर्णतया संतुष्ट और आनंदित किया। अंत में पिता ने उससे भगवान् की महिमा का कुछ वर्णन करने को कहा। पुत्र शान्त बैठा रहा और कुछ न बोला। घंटों अनुनय विनय और धमकी के बावजूद भी वह अडिग और चुप ही रहा। पिता ने ऐसे पुत्र पाने के लिये अपने भाग्य को कोसते हुये माथे पर हाथ पीट लिया। यद्यपि वह अन्य सभी प्रकार से दक्ष था परन्तु वह तो नास्तिक सिद्ध हुआ। अपने इस दुर्भाग्य पर जब पिता अपने आंसू पोंछने लगा तो पुत्र ने कहा कि वह सर्वोत्तम ढंग से उसके प्रश्नों का ही तो उत्तर दे रहा था। क्योंकि "मौनम्" से बढ़-कर भाषा में, शब्दों में उसकी महिमा बखान करने की शक्ति कहाँ है? वह पुत्र तो अत्यंत मेधावी और पंडित पुत्र था, पिता ने भी अपने प्रश्नों और इनके उत्तरों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट कर अपने को असा-धारण पिता सिद्ध कर दिया था।

आप लोगों के अनुशासन की मंत्री जी प्रशंसा करते हैं। परन्तु मैं इतने ही से संतुष्ट नहीं हूँ। जिस शान्ति का प्रदर्शन आपने यहाँ किया

है उसे आप अपने साथ सर्वत्र ले जाइये। 'बहिर्मुखी वृत्तियों को अनुशासन में रखने के लिये हम शान्ति, (मौनम्) का व्यायाम जारी रक्खें। जिह्वा द्वारा निन्दा न करें, आंखों से बुरी नजर से न देखें और कानों से परनिन्दा न सुनें। ईश्वर की सर्वव्यापकता से हर वस्तु हर जीव पवित्र है, दिव्य है। किसी को भी क्षुद्र समझना, भगवान् को क्षुद्र समझने के समान जघन्य है। जब आप अन्य लोगों को "भाइयों और बहिनों" संबोधन के अभ्यासी हो जावेंगे तो आपको अपने अन्दर यह भावना भी जगानी होगी कि ईश्वर ही सबका पिता है और आप सब आपस में भाई-बहिन हैं। यह भाई चारा रक्त संबंधी भाई चारे से कहीं अधिक वास्तविक है; क्योंकि इस भाई चारे में पैत्रिक संपत्ति जिसके लिये आपस में झगड़ा होता है, यहाँ प्रत्येक पूरी की पूरी ले सकता है और दूसरे के हिस्से पर कतई आँच नहीं आने पाती है। पूर्ण में से पूर्ण निकालते जाने पर भी शेष पूर्ण ही रहता है। "पूर्णात्पूर्ण मुपादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

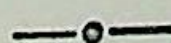
मंत्री जी भी कुछ सेवा कार्य करने के इच्छुक हैं जिसे वे मंत्री की हैसियत से उन हजारों लोगों के लिये करना चाहते हैं जो भारत के अन्य राज्यों से तथा विदेशों से भी, प्रतिवर्ष आते रहते हैं। इसलिये उन्होंने इस प्रशान्त निलयम को ही एक नगर के रूप में विकसित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। जिससे उन हजारों तीर्थ यात्रियों के यहाँ ठहरने की आवासीय तथा अन्य समस्याओं का सुविधाजनक समाधान हो सके।

जहाँ तक मेरा संबंध है मैं तो किसी भी स्थान, ग्राम या व्यक्ति से दूर नहीं रहना चाहता हूँ। चूंकि मुझे सातों समुद्र पार के लोगों में रुचि है मैं उनके पथ-प्रदर्शन और पोषण से संबंधित रहना चाहता हूँ, इसी नाते से पास-पड़ोस के स्थानों, नगरों के लोगों में मेरी रुचि है।

केवल यही मेरा है और वह मेरा नहीं है, ऐसी भावना मेरे अन्दर उठती ही नहीं है ।

उन्होंने घोषणा की है कि प्रशान्ति निलयम तक आने वाली सभी सड़कों का सुधार वे करवा देंगे । मैं इस सुविधा से बहुत संतुष्ट नहीं हूँ । जब यातायात और संचार साधन सुलभ और सुखद हो जाते हैं तो वास्तविक जिज्ञासुओं से कहीं अधिक, संपन्न और कुतूहल वादी, पर्यटक और, दर्शक आकर भर जावेंगे । जब तीर्थ यात्रियों को भगवान श्री निवास के दर्शनार्थ सातपहाड़ियों पर चढ़ना पड़ता था तो उन्हें अपना विश्वास भी भगवान पर अडिग रखना पड़ता था, वे गोविन्द, गोविन्द की रट लगाते हुये आगे बढ़ते थे, जिससे कि उन्हें भगवान् की कृपा से शक्ति और सामर्थ्य मिलती रहती थी । और अब जब कारें और बसे सभी यात्रा मिनटों में सम्पन्न कर देंगी तो ये पहाड़ियाँ भगवन्नाम से नहीं गूंजेंगी । मन्दिर के सामने भगवान् को अपनी प्रार्थना अर्पित करने के पूर्व यात्री की उस शारीरिक सहिष्णुता साधना के बिना मन निर्मल नहीं हो पाता है । परन्तु मैं किसी विरोध में नहीं पड़ता । ऐसी सुविधायें प्रस्तुत की जावें जिनका मेल यहाँ की भावना और वायुमंडल के अनुरूप हो—यही मेरा सुझाव है ।

दशहरा १९६६
१९-१०-६६



४६

आनन्द सौभाग्य का राजपथ

पार्थिव और अक्षम चर्मचक्षुओं से, जो केवल एक सीमा तक ही प्रकाश में सीमित रंगों को देख पाने में समर्थ है तुम मुझे न देख ही सकते हो न पूर्णरूप से समझ ही सकते हो। महिमा मय भगवान् को ज्ञान नेत्रों से ही अवलोकन किया जा सकता है। वह आँख तो श्रवण, मनन और निदिध्यासन के फलस्वरूप ही प्राप्त की जा सकती है। तब सभी संशय छिन्न-भिन्न होकर सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। अर्जुन, जनक और परीक्षित सभी को श्रवण का सुअवसर प्राप्त हुआ था, उन्होंने मनन और निदिध्यासन से इस शिक्षा का अनुसरण किया और साक्षात्कार कर सौभाग्यशाली बने। यह तो आन्तरिक क्रिया, आभ्यंतरिक परिवर्तन और आंतरिक खोज है, कुहासा भी भीतर का है, हृदय द्वार पर पर्दा पड़ा है, जिसे हटाने के लिये त्यागराज ने भगवान् श्रीनिवास से प्रार्थना की थी। अपनी बीमारी दूर करने के लिये दवाइयों का विज्ञापन पढ़कर, अपने निदान के अनुसार दवाइयाँ या पौष्टिक, शीशियों पर चिपके लेबिल या पैकिंग पर छपे विवरण के आधार पर मत छाँटो। एक ऐसे चिकित्सक का परामर्श लो जो तुम्हारे शरीर की विशिष्टताओं और गठन से परिचित हो, उसके निदान को स्वीकार कर उसके नुस्खे को पूर्ण विश्वास के साथ प्रयोग करो। ऐसे महानुभाव को 'गुरु' कहते हैं; वही पर्दा हटा सकने में समर्थ होता है।

पर्दा हट जाने पर सर्वत्र भगवद्दर्शन पूरी तृप्ति से मिलने लगेगा। किसी ने सुकरात से कहा कि उसे तो आकाश या ऊपर अंतरिक्ष में

कहीं भी, जैसा कि लोग ऊपर उंगली उठाकर संकेत किया करते हैं, ईश्वर नहीं दिखाई देता है। सुकरात ने उत्तर दिया कि आँखों पर तिहरे शीशे का चश्मा पहनो तब भगवान दीखेगा। यह तीन लेंस (१) भक्ति या प्रेम (२) विवेक, (३) वैराग्य या त्याग के होते हैं, प्रह्लाद ने इसी को धारण कर रक्खा था, और इसी के फलस्वरूप उसे सर्वत्र ईश्वर दर्शन सुलभ था; पेड़ हो या स्तंभ। उसके पिता ने अपनी आंखों पर घृणित संशय की पट्टी बाँध रक्खी थी इसी से वह भगवद्दर्शन में असमर्थ था।

एक राजा को ऐसे गुरु की खोज थी जो उसे स्वर्ग में सदेह बिठा दे। वह इतना मदोन्मत्त और भ्रमित था कि उसे यह विश्वास था कि वह इसके योग्य है। जब किसी से भेंट होती तो इसी प्रकार के असंभव प्रश्नों की झड़ी लगा देता था कि भेंटकर्त्ता उसके अधैर्य को देखकर निराश हो जाते थे परन्तु राजा उन्हें नहीं छोड़ता और जेल में डाल देता था। अंत में एक व्यक्ति उसके मार्ग दर्शन के लिये आया। उसे दरबार में लाया गया और राजा के सम्मुख बिठाया गया। उस व्यक्ति ने राजा की उपस्थिति की उपेक्षा की, और दरबारियों, नौकरों तथा अन्य राज-कर्मचारियों से वार्तालाप करने लगा, उनके कुशल समाचार पूछता और उन्हें शुभ कामनायें देता जा रहा था। राजा अपने महत्त्व की इस प्रकार उपेक्षा देखकर जल-भुन गया उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि इसकी अच्छी तरह मरम्मत करके धक्का देकर निकाल दो। उस व्यक्ति ने कहा, "बाहर निकाले जाने के पूर्व मैं आपसे इतना कहे देता हूं कि मुझे तो आपकी अवज्ञा करने पर अच्छी तरह पिटाई करने के बाद ही बाहर निकाला जावे क्योंकि मैंने सर्वप्रथम आपका सम्मान क्यों नहीं किया और आपको बचाते हुये इन आपके कर्मचारियों से वार्तालाप करने लगा। अच्छा, ईश्वर तो राजाओं का राजा है, वह सभी ब्रह्माण्डों का अधिपति है, आपने उसी की उपेक्षा की है, अब आप उसे बचाकर

स्वर्ग में घुसना चाहते हैं; ग्राप केवल उसके, (भगवान के) दासों ग्रौर सेवकों से वार्तालाप करते हैं, विचार कीजिये ग्रापको क्या सजा मिलनी चाहिये।" राजा ने ग्रपनी भूल को मान लिया ग्रौर ग्रज्ञान का पर्दा उठाने के लिये "गुरु" को धन्यवाद दिया।

यह ग्रहंभाव ही सभी विवादों के मूल में है जो इस विश्व की शान्ति भंग कर नरक बनाये हुये है। व्यक्ति व्यक्ति से जूझ रहा है; देश देश से घृणा कर रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक जाति में, प्रत्येक समाज में, ईर्ष्या ग्रौर घृणा का ताण्डव मचा हुग्रा है। जिन लोगों की नाक खाँसने मात्र से ही टपक पड़ती है वे छींकने पर नाक टपकाये बगैर कैसे रह सकते हैं ? जिन का क्रोध घर में छोटी-छोटी बातों पर ही भड़क उठता है, वे लोग ग्रन्य देश के लोगों को युद्ध-वर्जन के लिये कैसे समझा सकते हैं ? त्रुटि ग्रौर कारण तो ग्रपने में ही होता है परन्तु हम दूसरों पर दोषारोपण कर ग्रसंतोष की कई गुनी वृद्धि कर देते हैं; कारण, लोभ ग्रौर भय ऐसा कराते हैं। जब कोई साधक किसी महात्मा का ग्रनुयायी होता है तो दूसरा उससे क्यों ? कैसे ? इत्यादि प्रश्न करता है। जब उसे यह उत्तर दिया जाता है कि यह सब अपनी ग्रात्मा की शांति ग्रौर सद्गति के लिये है तो उस साधक के बिना पूछे ही बहुत कुछ ग्रनर्गल, ग्रसत्य प्रलाप कर उसके मन में सन्देह पैदा करके उसे वापस जाने को बाध्य कर दिया जाता है। गड़ीकोटा शास्त्री ने ग्रभी अभी ग्रापसे कहा है कि मैंने उन्हें एक शिवलिंगम् प्रदान करके उसकी पूजा, मेरा स्वरूप मानकर, करने की बात कही है। मैं इस प्रकार का सार्वजनिक प्रचार नहीं चाहता हूँ। मैं केवल 'संदेश' ग्रौर शिक्षाग्रों का प्रचार तो चाहता हूँ। मैं तत्त्व प्रचार चाहता हूँ व्यक्ति-प्रचार नहीं। यही ग्रधिक महत्त्वपूर्ण है। मेरे विषय में कुछ चर्चा की ग्रावश्यकता नहीं है।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी अनुभूतियों और उपलब्धियों की चर्चा जलयात्रा या नभयात्रा में करते हैं; और एक प्रकार से दूसरों को भी उसी प्रकार की शेखी मारने को ललकारते हैं। यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी यदि व्यक्ति अपने ही को ईर्ष्या, अभिमान, लोभ और द्वेष से रहित बना सके। जैसा कि उनके व्यवहार से भी सिद्ध होता है यह उपलब्धि सरलता से प्राप्त होने वाली नहीं है। जो व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ हो चुकता है वह इन कुप्रवृत्तियों से अविचलित रहता है। तोतापुरी श्रीरामकृष्ण से अपने इष्टदेव काली माता को भी त्याग देने का आग्रह करते थे जब कि वे परमानंद की प्राप्ति के लिये साधना कर रहे थे। उन्होंने रामकृष्ण की नाम-रूप में इस दीर्घकालीन आसक्ति से छुटकारा दिलाने में सहायता की। तो फिर इन आजकल के के योगियों और ऋषियों के विषय में, जो कि केवल नाम, धाम और यश के पीछे फिर रहे हैं, के विषय में हम क्या कह सकते हैं ? वे अपनी एक भी इच्छा या आदत नहीं छोड़ सकते। वे एक बार का भोजन नहीं त्याग सकते, एक घंटे शान्त होकर बैठ नहीं सकते; परन्तु वे यह आशा करते हैं कि ईश्वर को उन्हें अमरत्व प्रदान करना ही पड़ेगा, और मनुष्यों को उनका आदर्श अपनाना ही चाहिये !

लोगों में जब रक्त की कमी होती है तब उन्हें अन्य बीमारियाँ भी दबा लेती हैं क्योंकि उनमें बीमारी के कीटाणुओं की प्रतिरोधक शक्ति क्षीण होती है। इसी प्रकार जब उनका ईश्वर में विश्वास क्षीण होने लगता है तो उनमें आत्म विश्वास भी नहीं रहता है; जब उन्हें अपनी ही शक्ति और दैवत्व में विश्वास नहीं रहता है तो शक्ति और दैवत्व के उद्‌गम स्थान, अर्थात् भगवान् में विश्वास नहीं रहता है। तब उन्हें अभिमान, घृणा, ईर्ष्या और इसी प्रकार के अन्य ज्वर आ दबोचते हैं; और उनका मानसिक स्वास्थ्य हरण कर लेते हैं। विश्वास की कमी रूपी रक्ताल्पता से बचने के लिए नाम स्मरण का

अभ्यास धर्म शास्त्रों का स्वाध्याय, सांसारिक सुखों और आकर्षणों की क्षणभंगुरता का मनन, करना चाहिए। जिस विभूति को आप लोग मस्तक पर धारण करते हैं वह यही शिक्षा देने के लिए दी जाती है कि सभी कुछ, जिसमें धारण करने वाला मस्तक भी शामिल है इसी विभूति-राख में किसी दिन परिणत होने को है।

यद्यपि मैं आप से आध घंटे से वार्ता कर रहा हूँ, मेरा चित्त उस पर्दे के पीछे बालकों में अधिक लगा हुआ है जोकि रंगशाला (ग्रीनरूम) में हैं। वे "राधाभक्ति" नाटक प्रस्तुत करने की तैयारी में संलग्न है; और वे इतने उत्साहित हैं कि उन्हें भोजन करने का भी समय नहीं मिल पाया है। ये बालक जिस प्रकार से जितना प्रेम मुझे करते हैं, और जो प्रेम वारि मैं उन पर बर्साता हूँ यह केवल हम दोनों के ही जानने की बात है। यह प्रेम ही है जिसने मुझे इस नाटक के माध्यम से राधा की भक्ति प्रदर्शित करने के लिए प्रेरणा दी है। यद्यपि हम लोग पाठशाला के इन बालकों को समझाते हैं कि ग्रीष्मावकाश में घर जाकर कुछ दिन माता-पिता के पास भी कुछ सप्ताह रह आओ, वे इस अवसर का उपयोग ही नहीं करना चाहते हैं, जब वे जाने की बात सोचते हैं तो रोने लगते हैं। उनके शुद्ध हृदय कोमल भक्ति से संपृक्त हैं। जहाँ तक इस नाटक का सम्बन्ध है मैं इन्हें किसी अन्य को नहीं सौंपना चाहता हूँ; इसीलिए मैंने स्वयं रिहर्सल (पूर्वाभ्यास) की देखरेख की है; मैं स्वयं उनकी वेश-भूषा की तैयारी और 'मेकप' (मुख मण्डल की पेंटिंग) अपनी देख-रेख में कराता हूँ। मैंने इनके अभिभावकों को भी दूर-दूर के गांवों से यहां इसीलिए बुलवाया है कि वे भी इस आनन्द को प्राप्त करें। जिस नाटक को मैंने स्वयं अभिनय के ही लिए लिखा है, उसका, अपने बालकों द्वारा, मेरी देख-रेख में, अभिनय किये जाते हुए देखकर वे लोग भी पुलकित होवें। इस नाटक के कथोपकथन, गीतों और शब्दों में मेरे दर्जनों प्रवचनों का सारांश भी

सम्मिलित है। आप में से प्रत्येक के मन में उठने वाले सन्देहों और प्रश्नों का समाधान इन बालकों के अभिनय में मिल जावेगा। देखो, सुनो और लाभान्वित होओ।

दशहरा १९६६
२०-१०-६६

—०—

५०

संकीर्ण मतभेदों का जीवन

एक विचित्र ढंग के धर्म का अविर्भाव हुआ है और वह दिनों-दिन लोगों में अपना प्रभाव बढ़ाता जा रहा है। इसे "नवीनतावाद" की संज्ञा दी जा सकती है। पुरातन को पुरातन होने के कारण त्यागना तथा नवीन को नवीनता के लिए अपनाना। यह हल्के छिछले कार्यों से प्रसन्नता अनुभव करता है; उन गंभीर विचारों को, जिन्हें समझने में कठिनाई होती है, त्याग देता है। वे उदात्त-भाव जो कठिनता से हृदयंगम हो पाते हैं। वे कर्त्तव्य, जो पूर्ण करने में कष्ट प्रद प्रतीत होते हैं, सब छुटते जा रहे हैं। चहल-पहल, प्रदर्शन, तड़क-भड़क, भड़क उठना ही इसके मुख्य लक्षण हैं। यह किसी सीमा, मर्यादा, बन्धन अथवा निषेध को स्वीकार ही नहीं करता है। वृद्ध, विद्वान, अधिकारी अथवा सज्जन कोई भी इसके लिए वन्दनीय नहीं हैं। प्राचीन धर्मग्रंथों के धार्मिक कृत्यों से सम्बन्धित सभी विधि-निषेध, व्रत-उपवास, अर्चना-पूजा और विश्राम सभी का यह खण्डन करता है। जो लोग संयम नियम को निवाहने का प्रयास करते हैं उनकी खिल्ली उड़ायी जाती है। परम्पराओं और रीति रिवाजों पर आग्रह करने वाले वृद्ध जनों को दक़ियानूस कहकर अनादर किया जाता है। उन्हें तीर्थ यात्रा के भाव ही अरुचि कर हैं; कोई स्थान भी उनके लिए विशेष पवित्र नहीं होता है। मूर्ति पूजा से जो आनन्द और ज्ञान प्राप्त होता है उसे यह समझने में असमर्थ रहते हैं; उसे यह अन्धविश्वास और घपला कह कर उड़ा देते हैं।

यहाँ तक कि तथाकथित शिक्षित वर्ग भी इस फैशन की दासतामें जकड़ गया है। वे पश्चिमी वेश-भूषा में सज्जित पश्चिम के मानसपुत्र ही होते हैं। अपने विश्वास और मान्यताओं के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकने की उनमें क्षमता ही नहीं होती; किससे स्थाई संतोष और कल्याण की प्राप्ति होती है, क्या तात्कालिक दिखावा और छलना है इसकी विवेचना करने की उन्हें दीक्षा ही नहीं मिली होती है। उन्हें तो समूल उखाड़ कर बनावटी पोषण द्वारा कृत्रिम विधि से विकसित किया गया है। इसीलिए वे इस नवीनतावाद के शिकार हो गये हैं।

इस संक्रामक बीमारी के शमन के लिए ही प्रशान्ति निलयम् की स्थापना की गयी है। ये पंडित लोग आपको समझावेंगे कि मनुष्य तो एक बहुमूल्य रत्न है जो पंच-प्रकोष्ठों में सुरक्षित रहता है पांच-कोष, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इनके नाम हैं। पंडित लोग आप से पूछेंगे कि आप इस रत्न को एक थैली कोयले के बदले में क्यों बेचे दे रहे हो ? जब तुम्हारे पास इतना बहुमूल्य रत्न है तो क्यों भीख मांगते फिरते हो, क्यों विदूषकों की तरह उछल-कूद मचाते हो ? जब मनुष्य अपने आपको उन पशुओं से भी निम्नस्तर पर उतार देता है कि जिनकी श्रेणी से वह ऊपर उठा है तो भगवान का अवतार होता है। वह मानवों के बीच घूमता है चेतावनी देता है, प्रोत्साहित करता है, ज्ञान देता है, अपना दर्शन देता है, उत्साहित करता है और मनुष्य के कर्मपथ को आलोकित कर उसका मार्ग दर्शन भी करता है। उसने अर्जुन का रथ भी हाँका। अवतार को तो कोई भी अवसर या स्थिति मिले वह मनुष्य को उठाकर उसको अपने भावों, वृत्तियों और बुद्धि का स्वामी बनने की शिक्षा देता है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "तुम्हारे और कौरवों के युद्ध में मैंने एक महान पद का भार उठाने का निर्णय किया है"। मैंने भी एक महान कार्य भार उठाने

का संकल्प किया है। प्रशान्ति विद्वान महासभा के ये पंडित ही मेरे यंत्र (अस्त्र) है जिन्हें मैंने प्रयोग के लिए चुना है।

जब महाभारत काल में विराट के राजा के यहाँ द्रोपदी कष्टमय जीवन बिता रही थी, उसने कृष्ण से प्रार्थना की, "मैं अपने चतुर्दिक शठता और दुष्टता के प्रति कैसे आत्मसमर्पण कर सकती हूँ? मैं तो भारतमाता की पुत्री हूँ। मैं एक महान परिवार में उत्पन्न हुई हूँ जिसकी महान कीर्ति और मर्यादा है। मुझे अद्वितीय सनातन संस्कृति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है"। अपने को पाने के लिए आपको अपनी संस्कृति के अनुरूप ही जीवन यापन करना चाहिए।

लगभग ९०० वर्ष पूर्व कृष्ण मिश्र ने एक नाटक "प्रबोधचन्द्रोदयम्" लिखा था, उसमें सद्गुण राजा, शान्ति रानी थी राजा को अपने प्रति-स्पर्धी 'मोह' के विरुद्ध युद्ध करना था। वेदान्त दर्शिका ने भी एक ऐसा ही नाटक 'संकल्प सूर्योदय' नाम का लिखा था। जिसमें यही विषय था। सम्राट विवेक को पग-पग पर महामोह से संघर्ष करना पड़ा जब तक कि उसने 'विघ्न' जो उसके पंच क्षेत्र, यम नियम आसन, प्राणा-याम प्रत्याहार में स्वच्छन्द विचरण करता था, जीत नहीं लिया, वह सर्वत्र अपने मार्ग को धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा प्रशस्त बनाता चला गया। प्रबोध मानसतत्व है, मन को विवेक और साधना के द्वारा शुद्ध और उर्ध्वगामी बनाना है। मन को साधना की प्याली में डालकर गला देना है और भगवान् के साँचे में ढालना है जिससे इसका प्रत्येक पर-माणु एक दिव्य या दैवी परमाणु हो जावे।

समस्त विश्व इस समय पृथक-पृथक कोठरियों में बस रहा है। ये पृथक्करण जाति, धर्म, रंग, पंथ, कवीलों और भिन्न-भिन्न मान्य-ताओं के हैं। जो लोग इन कटघरों की वैधता और उपादेयता के बारे

में तर्क करते हैं, वे लोग स्वयं ही अपना घिरौंदा अलग ही बना बैठते हैं। धातु के टुकड़ों को इकट्ठा कर देने पर भी वे टुकड़े ही रहते हैं क्योंकि अभी वे एक नहीं हुए हैं। अभी तो दुनियाँ केवल ढेर के रूप में ही संगठित हो पायी है। इसे प्रेम की प्याली में अभी नहीं गलाया गया है और न भगवान् के सांचे में ढाला ही गया है। मनुष्यों के हृदय से घृणा को निर्मूल करना है। भाषणों और लेखों से मानव-एकता नहीं हो सकती। जब जंगलों में आग लग जावे तो क्या महासागर गर्म हो जावेंगे ?

स्वयं अच्छा बनने और अच्छा करने से जिस आनन्द की उपलब्धि होती है वह अपने में ही पर्याप्त प्रेरणा और पर्याप्त पुरस्कार है। पाप-पंक में लिप्त होने के सभी प्रलोभनों से बचो, गलत रास्तों पर मत चलो. कुसंगति से दूर रहो। इससे आपके स्वाभिमान में वृद्धि होगी, अपनी दृष्टि में आप स्वयं ऊँचे उठ जावेंगे। आपको अपना मस्तक किसी के सम्मुख झुकाने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप ऐसा जीवन जियें तो आपका यह जीवन ही मेरे प्रचार का सर्वोत्तम साधन हो जावेगा। जबकि असत्य और द्वेष का यहाँ ऐसा दौर-दौरा है तो इसे अपने क्षमा और विवेक की परीक्षा ही समझो आज का अखबार कल की रद्दी होता है; और यदि उसमें गंदगी है तो उसके अच्छे पैसे भी नहीं आते हैं। मुझे प्रसन्नता है कि कुछ लोग मेरे नाम के प्रयोग से ही रोजी कमा रहे हैं।

आप अपने अनुभवों को जोड़ते चलें और दूसरों के हवाई हमलों की उपेक्षा करते जावें। उन लोगों को या तो ऐसे अवसर नहीं प्राप्त हुए हैं अथवा वे जान-बूझ कर दुष्टता दिये जा रहे हैं। कुछ कीड़ों को कपड़ों में छिद्र करने का स्वभाव होता है। वे कुछ भी भेद-भाव नहीं करते हैं उनकी प्रकृति ही हानि पहुँचाने और घायल करने की होती

है। रेशम हो या ऊन अथवा रूई, सस्ती हो अथवा बहुमूल्य, नकली हो या असली उनमें पहचानने की क्षमता ही नहीं होती। अपने दुर्गुण को चरितार्थ करने ही में उन्हें आनन्द आता है; वे तो हानि पहुँचाने से ही आनन्दित होते हैं। ऐसे लोगों से दूर रहो, सत्संग का संगठन करो। जिस प्रकार जल में मछली प्रसन्न रहती है उसी भाँति आप भी प्रसन्न रहने की चेष्टा करो।

दशहरा १९६६
२३-१०-६६



५१

आदर्श कविता

आज विजयादशमी का दिन प्रशान्तिवासियों के लिये तिहरी पवित्रता का दिन है। प्रशान्तिवासियों से मेरा अभिप्राय उन सभी लोगों से है जो यहां अथवा कहीं भी प्रशान्ति निलयम में रहते हैं। आज का दिन पवित्र त्रिवेणी का दिवस है। आज दशहरा की समाप्ति है; यह यज्ञसप्ताह की समाप्ति है जो कि गत सात दिनों से पारायण चल रहा है; और यह पूर्व-अवतार शिरडी शरीर की समाधि का भी समाप्ति दिवस है। सम् + आप्ति का यह भी अर्थ है ब्रह्मानन्द की प्राप्ति। इसलिये आज का दिन उस अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति का भी अवसर है।

साधना के दो चरण, कर्म और उपासना, जो भगवत् प्राप्ति के लिये किये जाते हैं, देखे जा सकते हैं, और अंकित भी किये जा सकते हैं। परन्तु ज्ञान, जो परिपक्वता का चिह्न है, देखा नहीं जा सकता है। कर्म रूपी यमुना और भक्ति रूपी गंगा का संगम दिखाई देगा परन्तु ज्ञान की सरस्वती तो अदृश्य रहकर भूमि के नीचे ही आकर मिलती है। परन्तु आज लोगों में कर्म के प्रति उत्साह नहीं है, भक्ति के लिये पुलक नहीं है और ज्ञान के लिये जिज्ञासा नहीं है। सच्ची विद्या वही है जिससे आत्मा का साक्षात्कार हो सके। जब इन तथ्यों की उपेक्षा की जाती है तो मनुष्यों के पुनर्शिक्षण के लिये, उन्हें उनका कर्त्तव्य-धर्म को बताने के लिये अवतार को आना पड़ता है।

यह बात नहीं, कि आज पृथ्वी पर संत और ऋषियों का अभाव हो गया है। महाकवि, महापुरुष और महापंडित, जैसे कि हमारे साथ हैं, आज भी हैं। परन्तु आज की इस धनलिप्सा और वैभवलिप्सा की विक्षिप्त भागदौड़ में, जहां दूसरों को पराजित करने अथवा उल्लंघन करने के लिये निरंतर संघर्ष चलता रहता है, लोगों के पास इन महान लोगों के संदेश को सुनने मनन करने, और हृदयंगम करने का समय ही नहीं होता है। तो फिर उनकी बताई हुई साधना का आनन्द कौन उठावे! आधुनिक कवियों की तुलना प्राचीन कवियों से नहीं की जा सकती यद्यपि 'कवि' शब्द का प्रयोग दोनों के ही लिये होता है। प्राचीन कवि अपनी आत्म शुद्धि इस सीमा तक कर लेते थे कि उनकी आत्मा में भगवान् का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता था। आधुनिक कवि उन सभी गंदगियों को अपने साथ बनाये रखते हैं कि जो निम्न प्रवृत्तियों और उनकी तृप्ति के लिये आकुल रहती हैं। वे भक्ति से अधिक अपने वित्त का प्रदर्शन करते हैं। उन्हें अपनी इंद्रियों और वासनाओं पर कोई निग्रह नहीं होता है। वे घृणा, लोभ के दास होते हैं। वे जिस संदेश को फैलाते हैं उसे भी अपवित्र कर देते हैं क्योंकि वे निम्न आदर्शों का, सस्ती विजयों का बखान करते हैं। ऐसे लोगों को तो 'कवि' नाम से संबोधित ही नहीं करना चाहिये।

इन्द्रियों को मनुष्य पर अधिकार नहीं जमाने देना चाहिये। उन्हें तो मनुष्य के आधीन यंत्र की भांति प्रयोग में लाना चाहिये। वे तो केवल नौकर मात्र हैं, चपरासी हैं; सहायक हैं। चाकू का सर्वोत्तम प्रयोग फल या सब्जी काटने में है। आपको इससे अपना गला तो नहीं ही काटना चाहिए। इन्द्रियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना है कि वें तमस् या रजोगुण से रहित होकर ही कार्य करें। उन्हें न तो निष्क्रिय होकर रहना है और न वे मनुष्य को ही बलात् घसीट ले जावें; न तो प्रसुप्त रहे न भयानक रूप से सक्रिय होकर पतन के गर्त में ही गिरा दें।

गुणों से भी ऊपर उठ जाना है। एक शिष्य ने गुरु जी से शान्ति का मार्ग दिखाने की प्रार्थना की। उन्होंने उत्तर दिया अपने अन्दर सहिष्णुता का विकास करो; यह सहिष्णुता सभी व्यक्तियों, वस्तुओं और कृत्यों तथा घटनाओं के प्रति हो। किसी प्रकार से भी घृणा या इच्छा को मत उठने दो। केवल भगवान् की प्राप्ति की ही इच्छा की जा सकती है। और परब्रह्म परमात्मा की उपासना, प्राप्ति का उपाय करो।

स्थाई अपरिवर्तनीय, न घटने वाला प्रेम ही विश्वेश्वर प्रेम हो सकता है, अर्थात् अखिल भुवननायक के प्रति प्रेम ऐसा ही होना चाहिये। चल-प्रेम तो परिवर्तनशील सांसारिक वस्तुओं अथवा व्यक्तियों की कोटि का प्रेम होता है। जब एक भक्त किसी मूर्ति पर दो अक्षत निष्काम भाव से अर्पित करता है, बिना किसी पुरस्कार या वरदान की इच्छा से शुद्ध भक्ति भाव से चढ़ाता है तो वे दाने सोने के दानों में बदल जाते हैं। यदि वे दाने सकाम भाव से अर्पित किये जाते हैं तो पथरा जाते हैं। लोग कष्टों से, शोक और हानि से मुक्ति पाने के लिये, धन-धान्य शक्ति स्वास्थ्य पाने के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं; परन्तु यदि आप भगवान् से संबंध बना लें, उसके हो जावें; उसे अपना बनालें तो वह आपकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देगा। अभाव नष्ट कर देगा। इस संबंध को व्यापारिक स्तर तक नीचे मत घसीटो। सौदाबाजी ठीक नहीं। मुझे यह दो, वह दो, यह कर दो तब मैं आपको बदले में यह पूजा, या प्रसाद चढ़ा दूंगा। यदि आप भक्ति, साधना को मजदूरी की भाँति ठहराकर करेंगे तो आपका दर्जा मजदूर या कुली के स्तर का ही होगा। आप तो बस उसी के हो जाइये। वह तो निकम्मो, निठल्लों और कामचोरों को भी पालता है; क्या आपकी पूर्ति नहीं करेगा? पिता तो पुत्रों का पालन करता ही है चाहे वे निकम्मे, कामचोर हों अथवा किसी खेत या फैक्ट्री में कार्य करने वाले परिश्रमी व्यक्ति हों। जब आप भगवान को अपने धन का एक अंश भेंट करते हो

तो यह कार्य आपकी उस भ्रमित बुद्धि के कारण होता है कि मानों पूरी संपत्ति आपकी हो और अनुग्रहपूर्वक आप अपना हाथ ऊपर रखते हुये भगवान् जो कि पाने वाले हैं, का हाथ नीचे है, क्योंकि दाता ऊपर हाथ करके प्रापक को देता है।

आज पढ़ी जाने वाली कविताओं में से एक में यह प्रश्न उठाया गया है कि भगवान को ऐसे नेत्र क्यों देने चाहियें जो बाहर को देखते हैं और फिर उन नेत्रों को दोष दिया जाता है कि जब वे बाहरी दुनियाँ में भटकते हैं ! नहीं, नेत्र नहीं भटकते हैं, बल्कि वह तो मन का प्रतिनिधित्व करने के कारण आँख भटकती है। यदि मन आँख को अलग रहने की आज्ञा देता है तो आँखों को माननी ही पड़ती है। कवि ने ईश्वर को मतवाला या पागल मन देने का उपालम्भ दिया है; नहीं, मस्तिष्क पागल नहीं है। इसका प्रयोग तो बन्धनों के जकड़ने अथवा शिथिल करने, दोनों कार्यों में किया जा सकता है। आपको ही चुनाव करना है कि किस कार्य के लिये मन का उपयोग करें, यह तो दोनों में से प्रत्येक के लिये एक यन्त्रमात्र है। मंत्र की नहीं, मंत्र के प्रयोग करने के उद्देश्य की निन्दा कर सकते हो।

कवि को प्रचार कार्य में नहीं पड़ना चाहिये। उसे कविता को लम्बी करने अथवा प्रगल्भ बनाने के लिये फालतू पंक्तियाँ नहीं जोड़नी चाहियें। भावों अथवा वृत्तियों को उभाड़ने के लिये कोई कृत्रिम प्रयास नहीं करना चाहिये। ये तो स्वाभाविक ढंग से स्वाभाविक रूप में प्रसंगानुकूल चरित्रों के कारण उठना चाहिये। अन्यथा कविता असंगत हो जावेगी और भव्य दिव्य न होकर हास्यास्पद बन जावेगी। एक ब्राह्मण बड़े ही शुद्ध पाठ से वेद पारायण कर रहा था, उदात्त और अनुदात्त स्वर यथास्थान प्रयुक्त कर रहा था। इसे सुनकर एक साहूकार ने उससे एक गीत गाने को कहा। ब्राह्मण ने प्रतिवाद किया कि उसे

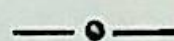
संगीत नहीं आता है। साहूकार ने उसे भयंकर परिणाम भुगतने को तैयार रहने को कहा यदि वह न गायेगा। इसलिये कि दण्ड न भुगतना पड़े, उसने भय से इसी प्रकार गाया कि, "मैं गा नहीं सकता, मैं गाऊंगा नहीं, यह दुष्ट मुझे गाने को बाध्य करता है" (मोहि मारि मारि ससुर गवावत है इत्यादि)। भय या प्रलोभन, सन्देह अथवा अभाव कवि की अभिव्यक्ति के प्रेरक नहीं होने चाहिये। अपनी त्रुटियों के लिये समाज को दोषी ठहराना ऐसा ही है जैसे कि सिर दर्द के लिये तकिया को दोष दिया जावे।

खलिहान में सैलाने पर अनाज के दाने तो नीचे समीप ही गिरते हैं परन्तु भूसा उड़कर दूर जा पड़ता है। क्षुद्र नाली में फेंकने योग्य सड़े पत्रों से जो नीच हरकतों से गंदे कलमों के द्वारा लिखा जाता है वह दानों को भूसे से अलग करने की शिक्षा ली जा सकती है। कोई भी सत्य को हिला नहीं सकता और असत्य को उसके स्थान पर स्थापित नहीं कर सकता। मैं सत्य में स्थित हूँ और सत्य को उसके स्थान पर प्रतिष्ठित करने आया हूँ। ईर्ष्या और लोभ के कारण मनुष्य कुछ पैसों के लिये धूर्तपने और अपना चरित्र और सम्मान बेचने पर भी उतर सकता है। जब लोग देखते हैं कि यहाँ हजारों के वे विशाल मानव समुदाय केवल शुद्ध प्रेम के ही कारण एकत्रित होते हैं क्योंकि उनके हृदय में प्रेम होता है; तो जिनके हृदय में प्रेम नहीं है, केवल घृणा ही घृणा है तो उन्हें अपना घृणा से विषाक्त वमन इधर उधर नालियों में करना ही पड़ता है। वे कैसे शान्त रह सकते हैं?

जो जो मानव जाति का उद्धार करने आये उनके निन्दक प्रत्येक युग में होते रहे हैं। राम, कृष्ण, शंकर कोई भी इनसे बच न सका। इनसे घृणा भी मत करो क्योंकि देर या सवेर उन्हें अपनी भूल पर पश्चात्ताप करना ही पड़ेगा। दूध में पानी मिल जाने पर भी दूध, दूध

के भाव बिक जाता है। मेरे संबंध में झूठ भी बिक कर उनका कुछ लाभ करा ही देता है। जोंक, भर पेट रक्त चूस लेने के पश्चात् जब उनका चरमबिन्दु आ जाता है और पेट फटने की नौबत आने पर, छूट पड़ती हैं। उनके परिवर्तन का मूल्य चुका दो कि वे भी सात्विक वृत्ति वाले हो जावें, उन्हें दृष्टि प्राप्त होवे इसलिये उनके अन्धेपन के इलाज के लिये कुछ दे डालो जिससे वे असत्य त्याग कर सत्य से संलग्न हो जावें। द्वेष से द्वेष की वृद्धि होती है; घृणा से कीचड़ ही उछलती है। इन पथ भ्रष्टों से भी प्रेम करो; क्योंकि शीघ्र ही वे भी तीर्थ यात्रियों के दल में मिलने वाले हैं।

दशहरा १९६६
२३-१०-६६



५२

पुरुष तो केवल एक भगवान् ही है

यह तो मानव की स्वाभाविक इच्छा है कि वह सर्वशक्तिमान के समक्ष पहुँच जाना चाहता है, उसे देखना चाहता है और सदा सर्वदा के लिए उसी से संयुक्त रहना चाहता है; क्योंकि मनुष्य के अंतरतम में उसी स्थान पर लौट जाने की इच्छा रहती है जहाँ से वह चला था। जिस आनन्द को खो दिया है उसे पुनः प्राप्त करना चाहता है। खोयी हुई महानता को प्राप्त करना चाहता है। मनुष्य तो स्वयं ही दैवत्व-पूर्ण है; इस प्रकार गंभीर ही गंभीर का आह्वान करता है, अंशअंशी को पुकारता है घटाकाश, महदाकाश से संयुक्त होना चाहता है। चूंकि मृत्यु सदा मनुष्य को अपने निश्चित समय पर धर दबोचेगी अतः मनुष्य को उस सर्वशक्तिमान् के साक्षात्कार के लिए अपने प्रयत्नों में शीघ्रता लानी चाहिए। आकाश में मंडराती हुई चिड़ियों को पृथ्वी पर पड़ा दाना तो दिखाई दे जाता है परन्तु जो जाल उनके फँसाने के लिए लगाया गया है वह उन्हें नहीं दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी बुद्धि से सुदूर भविष्य की बातों का स्पष्ट अनुमान लगा लेता है; परन्तु जो मृत्यु निरन्तर उसका पीछा कर रही है उसे देखने के लिए उसके पास आँखें नहीं होतीं।

आनन्द के स्रोत अर्थात भगवान् के सामने पहुँचने के लिए आपको महान साधकों और सन्तों के मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा जैसाकि जयदेव, गौरांग, मीरा, रामकृष्ण और अन्यों ने किया है। उनके उप-देशों पर अमल करो उनके उदाहरण का अनुसरण करो। प्रभु अर्पित

कार्य प्रणाली, सर्वशक्तिमान की शरणागति, प्रेममूर्ति के प्रति अद्वितीय प्रेम, यही तो मधुर पथ है जो पग-पग पर आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है। सभी साधकों का यही अनुभव रहा है कि भगवन्नाम्, जोकि उनकी जिह्वा पर रहा करता था, संसार की सभी मधुर वस्तुओं की सामूहिक मधुरता से भी अधिक मधुर है। यह उस दीपक की तरह आपके जीवन के प्रत्येक क्षण को आलोकित करता रहेगा जोकि मनुष्य अपनी यात्रा के अगले पग को आलोकित करने के लिए हाथ में लिए हुए होता है। जब राधा से पूछा गया कि वह भगवान् कृष्ण से क्या चाहती है तो उसने उत्तर दिया कि जब भगवान् उसके होते हैं तो वह संतुष्ट रहती है उसके अतिरिक्त राधा को कुछ भी नहीं चाहिए था।

मस्तिष्क यह कल्पना करता है कि वह आस-पास के पदार्थों से, जिसके सम्बन्ध में उसे इन्द्रियों से सूचना मिलती रहती है, उसे प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है। मस्तिष्क को ज्ञान से वशीभूत किया जा सकता है कि सब कुछ ब्रह्म ही तो है और यह सब उसी की लीला है। यह अनुभव करने के लिए कि यह जगत उसी भगवान् की लीला मात्र है और आप उसी के हाथ में एक कठपुतली मात्र हो आपको गोपियों की भक्ति से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। वे शरणागति भाव में इतनी विभोर थीं कि उन्हें देहाध्यास ही नहीं रह गया था। उनके तो आंखों में, मन में, गति में, हृदय में केवल एक कृष्ण का रूप ही समाया हुआ था। उनकी भक्ति बाहरी दिखावा मात्र नहीं थी, पलायनवाद की तिकड़म नहीं थी कोई क्षणिक आवेश न था। यह तो उनका जीवन प्राण थी और उनके अस्तित्व का कारण थी।

अर्द्ध रात्रि में एक मनुष्य ने अपने घर में चोर के घुस आने की आहट पायी इसलिए उसने अपनी पत्नी से जोर-जोर से रोने के लिए

कहा और इसी बीच में वह जोर २ से उसे फटकारता जा रहा था कि वह उससे गिरवीं रखे अपने सभी जेवरों की मांग उस समय क्यों कर रही है ? क्यों मंगलसूत्र ही मांग रही है? वह भी तो ३ रुपये पर गिरवी रखा है अभी एक ही दिन तो हुआ है। उसने घोर निर्धनता की बातें की कि घर में जब एक पैसा भी नहीं है, तो वह जेवर कैसे छुड़ा लावे ? इस कहानी को सुनकर चोर ने स्वयं को धिक्कारा कि व्यर्थ ही उसने इस घर में सेंध काटने का कष्ट किया और शीघ्र वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया।

दुनियादारी में ऐसी चालें सफल हो सकती हैं, परन्तु उस सर्वज्ञ को इस प्रकार धोखा नहीं दिया जा सकता। ऐसी चालें तो साधक पर ही उलटी पड़ जाती हैं। जब अहंकार जैसे चोर तुम्हारे ज्ञान को धूर्ततापूर्वक अपहरण करें कि जिस ज्ञान को आपने अपने अंतःकरण में स्थान दिया है, अंतरंग चेतना में प्रतिष्ठित किया है, तो भगवान् को सहायता के लिए पुकारो जिससे आप इन चोरों से निबट सकें। और निश्चिय ही आपको सहायता प्राप्त होगी।

मन, जिसने कि आप पर अपना अधिकार जमा रक्खा है, एक जादूगर है, वंचक है। एक विवाह कार्य में, किसी नगर में एक भद्र महिला लड़की वालों के घर में प्रवेश पा गयी, उन्होंने उसको बरातियों की कोई सम्बन्धी जानकर बड़ी अभ्यर्थना की; और लड़के वालों ने बहू की रिश्तेदार समझकर आवभगत की। इस प्रकार उसने उभयपक्ष का सत्कार और विश्वास प्राप्त कर लिया ऐसा कई सप्ताह चला। अन्त में, जिज्ञासावश, किसी ने पूछ-ताछ प्रारम्भ कर दी कि वह वास्तव में है कौन ? प्रत्येक पक्ष ने उससे अपना कोई सम्बन्ध नहीं माना, इतने में ही वह अदृश्य हो गयी।

यदि जिज्ञासा प्रारम्भ कर दी जावे तो मन भी अदृश्य हो जावेगा क्योंकि यह तो ताने-बाने से बुना हुआ एक कपड़ा है। इसका प्रत्येक सूत एक इच्छा है, आसक्ति, अभिलाषा है। उन्हें यदि निकाल डालो तो कपड़ा नहीं रहेगा। भ्रम ही रूई है, इच्छा सूत है और मन वस्त्र है। वैराग्य के द्वारा इस ताने-बाने को खींच कर अलग-अलग किया जा सकता है। साधकों को विवेक और वैराग्य को अपना अंगरक्षक बनाये रखना चाहिए। फिर वह इस संसार में निर्भय होकर विचरण कर सकेगा।

एक बार एक संन्यासी एक जमीन्दार के मकान के अन्दर घुसा चला गया। परन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जमीन्दार कीचड़ में लोट लगा रहा है। कारण पूछने पर जमीन्दार बोला, "मैं दुनियाँ को यह दिखाना चाहता हूँ कि मेरे पास कोई भी कीमती वस्तु नहीं है; परन्तु आप तो संन्यासी हैं आप से झूठ क्या बोलूं, मैंने बुरे दिनों के लिए काफी धन संग्रह कर रक्खा है।" संन्यासी ने उसे मूर्ख की उपाधि दी और समझाया कि शुभ कार्यों पर इस संग्रहीत धन को व्यय कर दो। मधुमक्खी की तरह होने से क्या लाभ? कठोर परिश्रम करके और पेट काट कर शहद को छत्ते में भर दिया, और फिर किसी ने धुंआँ करके सब शहद ले लिया। शहद की मक्खी को धुएं के अतिरिक्त कुछ न मिला। अन्तिम सांस लेने तक जोड़े रखने से सदुपयोग कर लेना कहीं श्रेयष्कर है।

दुनियादारी को गौण स्थान दो, प्रथम कर्त्तव्य तो दुनियाँ की जकड़ के बंधनों को ढीला करने का है। यदि तुम गुड़ियों से खेलना बंद करके रोओ तो जगज्जननी दौड़ी हुई आवेगी, अपना प्यार देगी। अपने हृदय के अन्तरतम से पुकारो। मन में आसक्ति को निःशेष कर दो; तभी आपको शेषशायी की कृपा प्राप्त होगी।

सांसारिकता में डूबे हुए लोगों के रंग-ढंग पर ध्यान मत दो। वे तुम्हें विवेक-वैराग्य के जन-पथ से दूर हटा कर गली-कूंचों में भटका देंगे। इन क्षुद्र लोगों से अवतार भी नहीं छुट पाते हैं, ये लोग उन्हें लक्ष्य बना के भी विष वमन करते रहते हैं। तो फिर वे लोग, जो अवतार के सिद्धान्तों का प्रचार करके अपने विश्वप्रेम का परिचय देते हैं, कैसे इन क्षुद्र व्यक्तियों के आक्षेपों और निन्दारोपों से बच सकते हैं ?

पाण्डव लोग कभी कृष्ण जी की निन्दा की ओर ध्यान नहीं देते थे। उन्हें उनकी महिमा का ज्ञान था और पाण्डवों ने अपने आपको पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण कर दिया था। कृष्ण जी ने भी उनके प्रेम का समुचित उत्तर दिया था। उन्होंने घोषित कर दिया था कि धर्मराज मेरा मस्तिष्क, अर्जुन कंधे, भीम उदर और नकुल सहदेव चरण हैं और कृष्ण हृदय हैं।" पाण्डवों और भगवान में ऐसा सम्बन्ध था। केवल पाण्डव ही ऐसा जानते थे, मानते थे और वे ही लाभान्वित भी हुए और लोग इससे वंचित रहे। भगवान तो हृदय-वासी हैं। उनके संसार त्यागने के समाचार को सुनकर धर्मराज ने भी महाप्रस्थान का आयोजन किया 'कि बिना पीछे देखे, चुपचाप उत्तर दिशा की ओर पैदल चल दो, चलते चले जाओ जब तक कि गिर कर शरीर न छूट जावे।" उन्होंने भीमसेन से सलाह की। भीमसेन ने निवेदन किया, "भाई ! आज क्या हम कुछ और हो गये हैं ? हम तो जैसे द्यूतक्रीड़ा के समय थे वैसे ही आज भी आपके साथ हैं। तब भी तो आपने पाँसे फेंक कर हम लोगों को हार दिया था और हमारी स्वीकृति तो ली नहीं थी। अब जो मार्ग अपने लिए सर्वश्रेष्ठ समझते हो वही हम लोगों के लिए भी उत्तम है। हम लोग तो पाँच-प्राणों के समान हैं जोकि एक ही शरीर में रहते हैं। कृष्ण हमारे हृदय थे और हम सब एक ही शरीर में तो निवास करते हैं।"

गोपियों और गोपालकों के भी हृदय कृष्ण ही थे। भागवत में हमें उनका परिचय ऐसा ही मिलता है। वे कृष्ण को अपना पति, स्वामी, भगवान मानते थे; वास्तव में भगवान ही तो एकमात्र पुरुष हैं। अन्य सभी तो अबलायें, अर्थात् स्त्रैण, और निर्बल लिंग वाले हैं। पुरुषों में असीम बलशाली भी दुख और विपत्ति पड़ने पर एकान्त में रोते हुये देखे गये हैं। जैसा अन्य लोगों को होता है वे लोग भी जो बड़े बली होते हैं, कभी-कभी असहाय और निर्बलता अनुभव कर रो उठते हैं। जब वे निराशा और संशय-ग्रस्त होकर अनिश्चित मन वाले हो जाते हैं तो वे भी प्रार्थना और भक्ति का सहारा लेते हैं। अत: वे भी निर्बल ही हैं। केवल भगवान ही बलवान और सभी परिस्थितियों में दृढ़ रहने वाले होते हैं, वे अभेद्य, अछेद्य और सभी को शक्ति प्रदान करने वाले होते हैं। इसलिए जब आप गोपियों के प्रेम के विषय में पढ़ें तो स्मरण रक्खें अन्य सभी प्राणी स्त्रैण दुर्बलता से युक्त हैं। केवल भगवान ही एकमात्र पुरुष हैं। प्रेम के द्वारा ही भगवान को प्रसन्न किया जा सकता है तभी वे हम सब लोगों को दर्शन देंगे और ज्ञान प्रदान करेंगे।

अब मुझे समाप्त करना चाहिए; क्योंकि बंगलौर के इन भक्तों ने एक फूलों का झूला तैयार किया है और वे आग्रह कर रहे हैं कि मैं उसमें बैठूं और झूलूं। मैं ऐसी बातें पसन्द नहीं करता। मैं आपके हृदय झूले में झूलना कहीं अधिक पसन्द करता हूँ जहाँ तत्त्वमसि के झोंकों से ऊँकारा के झूले में झूलना, सातों लोकों के जीवों के हृदयों में एक साथ ही, कितनी शानदार बात होती। आप लोगों ने अपने हृदय के झूले पर माधव को न बिठा कर मानस को बिठा रक्खा है, इसी से मनुष्य जाति को शान्ति और आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है।

दशहरा १९६६

२४-१०-६६

५३

सबके प्रिय सबके हितकारी

मानव-जीवन एक पतली धारा के समान बहा जा रहा है, कभी घाटी में, कभी टीलों के ऊपर, कभी दलदल में होती हुई यह धारा अन्त में दैवत्व के महासागर में विलीन हो जाती है तब यह अपेय खारी जलराशि में ही समा जाती है। जल का बहाव सदा ऊँचे से नीचे की ओर होता है। आग की लपटें सदा गहराई से ऊँचाई की ओर उठती हैं। इसीलिए तो हम साक्षात्कार को ज्ञानाग्नि की संज्ञा देते हैं। मनुष्य को कष्ट इसीलिए होता है कि उसकी भूख तो आकाश की तरह विशाल और विस्तृत, परन्तु गला सूची-छिद्रवत संकीर्ण है। उसकी गला पृथ्वी के समान विस्तृत हो जाना चाहिए और शान्ति तथा सहिष्णुता से उसका हृदय चौड़ा होकर खिल जावे, तभी मनुष्य की शुद्ध अखण्ड आनन्द की इच्छा की पूर्ति हो सकेगी। एक बार जब प्राणी को मनुष्य का शरीर प्राप्त हो जावे फिर उसे निम्नयोनियों में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि केवल मनुष्य ही विवेक और विचक्षण शक्ति से सम्पन्न होता है। जब उसे विकलता होती है तो वह विचारता है कि क्यों यह विलकता मेरे भाग में आयी ? वह इसका कारण खोजता है। यह भगवान् की सनक नहीं है कि उसे दुख मिला ओर न और किसी और की करनी से दुःख प्राप्त हुआ है। यह तो अपनी ही करनी का फल है। चाहे यह इसी जन्म की हो अथवा किसी पिछले जन्म का कोई पाप उदय हुआ हो। केवल मनुष्य ही इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकने में समर्थ है।

अनन्त आकाश में असंख्य तारागण बिखरे पड़े हैं, रात्रि में फिर भी अंधेरा रहता है। परन्तु दिन में सूर्य, जो कि उन तारागणों की तुलना में कइयों की अपेक्षा एक प्रकाश बिन्दुमात्र है, हमें प्रचण्ड ताप और प्रखर प्रकाश प्रदान करता है। तारागण हमसे बहुत ही दूर हैं; वहाँ से पृथ्वी तक प्रकाश आने में दस लाख वर्ष भी लग जाते हैं जबकि सूर्य से यहाँ प्रकाश आने में केवल साढ़े आठ मिनट ही लगते हैं, अतः यह हमारे अत्यंत निकट है। ज्ञान का तारा हमसे बहुत दूर है, हम उसे समीप नहीं ला सकते, न उसके पास ही पहुँच पाते हैं। हमें उसकी संध्या के धुंधले प्रकाश से ही संतोष करना पड़ता है; जो कुछ ज्ञान सूचना, समझदारी, विद्वत्ता और बुद्धि हमें प्रदान करते हैं। साधना के द्वारा परिष्कृत आत्म-ज्ञान से जो भव्य झांकी देखी जा सकती है उसके लिये हम उद्योग ही नहीं करते। वी० के० राव हम लोगों को बतला रहे थे कि किस प्रकार भय के वशीभूत होकर पाश्चात्य जातियाँ यहूदियों और अन्य लोगों की निर्ममता पूर्वक बृहत्संख्या में हत्या कर रही हैं। दो-दो विश्व युद्धों में व्याप्त असन्तोष और द्वेष से जितना नर संहार हुआ है उससे आज की विचित्र शान्ति (अथवा अशान्ति) प्राप्त हुयी है। पश्चिम के मनीषी अब पूर्व की ओर आशा लगाये विचार कर रहे हैं कि किस प्रकार पूर्वार्त्यों से शान्ति रक्षण और शान्ति प्राप्ति का मार्ग, प्रशान्ति में सदा स्थित होने की कला सीख सकें।

एक सिंह ने झील के शान्त जल में अपना प्रतिबिम्ब देखा। वह अपने समान तरुण, भयंकर और बलशाली प्रतिबिम्ब सिंह से ईर्ष्या करने लगा। इस सिंह ने उसे समाप्त करने के लिये गर्जन किया और उसके टुकड़े टुकड़े कर डालने के लिये जलराशि में कूद पड़ा। वह जल में डूब कर मर गया। ईर्ष्या का फल यही होता है। अन्य लोग जो कि हमारा प्रतिबिम्ब ही तो हैं हममें ईर्ष्या का उद्रेक कर देते हैं और हमें विनाश पथ पर धकेल देते हैं।

भक्ति भाव आपको विनम्रता का पाठ पढ़ाकर रही सही ईर्ष्या को भी समाप्त कर देता है। ज्ञान, अर्थात् आत्मज्ञान जो कि भगवान् का ही एक अक्षुण्य अंग है और यह सब भगवान ही तो है, आप को सभी से संबंधित कर देता है। फिर भेदभाव की गुंजाइश ही कहाँ रह जाती है; जो कि ईर्ष्या को पनपने दे।

हरिश्चन्द्र सत्य से अडिग रह कर अमर हो गये। कर्ण दान से अडिग रहे और कष्ट में पड़े किसी की सेवा का अवसर पाकर आनन्दित होते थे, उन्हें भी अमरत्व प्राप्त हुआ। बाधाओं को इकट्ठा मत करो। थोड़ा-थोड़ा करके त्यागते जाओ और बलिदान की भावना से संपृक्त हो जाओ। दूसरों की सेवा में आने का प्रयास करो जितना हो सके करो। आसक्ति के स्नेह का हृदय दीप प्रज्वलित कर अज्ञान के अंधेरे को दूर करो। भगवन्नाम की बत्ती बनाकर उसे महावाक्य से ज्योतिर्मय कर लो। भगवान् की महिमा और सर्वव्यापकता के संबंध में जो अज्ञान है उसे दूर करने के लिये भगवान से संबंध जोड़कर आगे आगे प्रकाश बिखरते चलो। इसे तो आनन्द के दीप का तैल बना लो।

कृष्णकर्णामृतम् से रायानिगर ने कुछ कविता पाठ किया। इसमें कृष्ण की बालक्रीड़ाओं का कुछ विशद और आकर्षक वर्णन किया गया है। बाह्य रूप से तो छन्दों में बाह्य वस्तुओं का वर्णन किया गया है। अब आप वस्तु चित्र का उपयोग आन्तरिक भक्ति जगाने के लिये कीजिये। उदाहरण के लिए एक छंद में यह दर्शाया गया है कि दही का बर्तन उलट कर, मक्खन का लोंदा लेकर कृष्ण कहीं जा छुपे हैं और दही की कीचड़ में सने उनके पदचिह्नों का अनुसरण कर माता यशोदा ने जाकर उन्हें छिपने की जगह ही जा पकड़ा है। भगवान योग रूपी उस मक्खन के भूखे हैं जो कि मन को विवेक से मथ कर अंतिम फल के रूप में प्राप्त किया जाता है। वह उसे खाना चाहते हैं अतः आत्म-

साक्षात्कार के एकान्त में निकल जाते हैं। हम भी भगवान् को उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुये खोज सकते हैं, यह चरणचिह्न तो सर्वत्र ही पड़े हुये हैं, आवश्यकता है अभ्यासी लगन वाले नेत्रों की जो उन्हें पहचान लें और देख लें। जहां भी सौंदर्य, सद्गुण और विनम्रता, न्याय, सत्य, प्रेम और शान्ति पावें वहीं भगवान् के चरण पड़े हैं।

आँखों को भगवान् के चरणचिह्न पहचानना सिखाना है, मन को वशीभूत करना है। यह मन ही तो विचारों और भावनाओं की धुरी है। निर्विकल्प चेतना, ब्रह्म के चिन्तन के अंश से ही मन की उत्पत्ति हुयी है "परब्रह्म अपनी कल्पना को मन के द्वारा व्यक्त करता है। अस्तु, मनुष्य का मन तो परब्रह्म की ओर न जाकर, बहिर्मुख होकर इन्द्रियों को वाहन बनाकर दौड़ रहा है। वह अपने केन्द्र, आत्मा को ही भूला हुआ है। यह क्यों और कैसे संभव हुआ है यह अनिर्वचनीय है। हम इतना जानते हैं कि यह ऐसे ही हुआ करता है, इसे रोका जा सकता है; इसे बचाकर निकला जा सकता है। बुद्धि को भी इसका रहस्य ज्ञात नहीं होता है जिसे माया कहा जाता है। क्योंकि बुद्धि भी तो माया से आवृत होती है। इस रहस्य को समझने के लिये बुद्धि का अतिक्रमण कर ऊपर उठा जाता है। यह एक तथ्य है और तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता, उसका तो सामना करना ही पड़ता है। विश्व की पृष्ठ भूमि में मन ही तो है। यदि मन के कार्य, विचार स्वस्थ, अहिंसक और प्रेम से पूर्ण, नैतिकतायुक्त होते हैं तो शान्ति कहीं दूर नहीं होती है और ब्रह्म भी प्राप्त किया जा सकता है। इसी लिये साधना मन को अंतर्मुखी बनाकर करना चाहिये, केवल ईश्वर की ओर उन्मुख करके, जो कि इस विश्व का उद्भव केन्द्र है, साधना करना चाहिये।

दशहरा १९६९
१०-९-६९

५४

प्रत्येक ओर एक प्रहरी रहे

दैवत्व की दानवत्व पर विजय के उपलक्ष्य में नवरात्रि का त्यौहार मनाया जाता है। यह विजय महाशक्ति, जिसका दूसरा नाम चंडी, दुर्गा अथवा काली भी है, के प्रभाव से हुयी थी। आज दीपावली है, यह स्वर्गीय शक्तियों की नारकीय शक्ति पर विजय को स्मरण कराने का उत्सव है। श्री कृष्ण-सत्यभामा की नरकासुर पर विजय का त्यौहार है। यह ऊर्ध्वगामिनी शक्ति का अधोगामिनी शक्ति पर विजय का उल्लास है। मानव सम्पूर्ण जीवन भर अधोगामी कुप्रवृत्तियों से उर्ध्वगामी भावनाओं के निरन्तर संघर्ष को अनुभव करता रहता है। यह धर्म-क्षेत्र है, जहाँ जन्म से मृत्युपर्यन्त कुरुक्षेत्र का युद्ध चलता रहता है। जीवन तो आग से खेलना होता है। व्यक्ति को ताप की ऊष्मा तो मिलती रहे मगर जलने से भी बचा रहे। मनुष्य को इन्द्रियों और बुद्धि का प्रयोग अपने उद्धार के लिये करना है; न कि उनकी छलना से विषयों में फँस जाना। जिस आनन्द को मानव ने खो दिया है उसे पुनः अपनी अन्तर्चेतना से प्राप्त करना है और इस चेतना को अज्ञान रूपी अंधकार ने ढंक रक्खा है। वह स्वर्ण कंकण जो अरहर के खेत में खो गया है पतीली की उबलती दाल में से कैसे प्राप्त हो सकता है ? अन्तर्दृष्टि से आनन्द का अन्वेषण करो, उसे व्यवस्थित करो, और तब आपको आनंद वहीं से प्राप्त भी होगा।

निरन्तर कृष्ण, जिन्होंने नरकासुर का वध किया था, का चिन्तन करने से मनुष्य के अन्दर का नरकासुर भी नष्ट किया जा सकता है।

अनवरत स्मरण चलता रहे। यदि आप लोहे के टुकड़े को किसी पत्थर पर घिसें तो गर्मी उत्पन्न होती है। इसे द्रुतगति से घिसना जारी रक्खो तब तो यह लाल होकर दहकने लगेगा। यदि आप बीच-बीच में लम्बा अवकाश देकर क्रिया करेंगे तो लोहे का टुकड़ा ठंडा हो जावेगा और तब तक का सभी प्रयास व्यर्थ हो जावेगा। कार्य को पुनः फिर दोहराना होगा। कुछ लोग १०,००० या बीस हजार भगवन्नाम की सीमा दनिक चर्या में बाँध लेते हैं। जब उतना जाप पूरा हो जाता है तो वे सन्तुष्ट हो जाते हैं। जब दूसरा दिन प्रारंभ होता है तभी वे पुनः जाप प्रारंभ करते हैं। इसी बीच में मन जो कि काई से ढंकी जल की सतह की तरह होता है, एक बार प्रयास करने से काई हटकर स्वच्छ जल की सतह निकल आती है परन्तु प्रयास के रुकते ही पुनः काई से ढंक जाता है इसीलिये तो नाम-जप को दोहराते रहना चाहिये। स्मरण तो मनुष्य की प्रत्येक गतिविधि के समय भी गुप्त रूप से अन्दर अन्दर धार की तरह बहते रहना चाहिये; जागृत अवस्था के प्रत्येक क्षण में। तब तो यह स्वप्नावस्था में भी झरने की तरह उमड़ता रहेगा और सुषुप्ति में भी "मैं" उसी भगवान् में सदा के लिये लय रहने लगेगा। मां चाहे कुयें से जल खींच रही हो या गौशाले में हो उसके मन में पालने में पड़ा शिशु सदा रहता है, यहाँ तक की पाकशाला और मन्दिर में पूजा के समय भी शिशु की स्मृति रहती है। मनुष्य को भी इसी प्रकार अपना मन प्रभु चरणों में लीन रखना है उसका शरीर चाहे जहाँ, चाहे जिस क्रिया में संलग्न हो।

यह सतत स्मरण की अवस्था दीर्घकालीन प्रयास से ही आती है। यह एकाएक प्राप्त हो जाने वाली स्थिति नहीं है। इसलिये हर समय लगातार स्मरण का प्रयास करते रहना चाहिये। विश्वेश्वर को हृदय में स्मरण करते हुये आप विश्वपर्यटन कर सकते हैं। एक पुजारी जिसे शिव मंदिर में देवार्चन के लिये रखा गया था, अपने पुत्र को पूजा

आरती का भार समझा कर दूसरे गाँव को गया। लड़का नौसिखिया था। आरती करते समय प्रज्वलित कपूर की आरती को दाहिने हाथ में रखकर घुमाया जाता है और बायें हाथ से घंटी बजायी जाती है दोनों क्रियायें साथ साथ होती है और मंत्र द्वारा स्तुति पाठ भी किया जाता है। कुछ अभ्यास से ही यह सब कृत्य दक्षतापूर्वक करना सीखा जाता है। लड़के के दोनों ही हाथ काँप रहे थे। इसी प्रकार भगवान् के युगल चरणों को दृढ़ता से धारण करने की क्रिया आपको भी सीखना है, फिर आप चाहे जहाँ विश्व भर में घूमो और नाना प्रकार के कर्त्तव्यों का निर्वाह करते रहो आप उस भगवान् को ही समर्पित रहते हुये यह सब करो। शारीरिक 'शक्ति' और मानसिक चैतन्यता के साथ ही स्थाई आनन्द प्राप्ति करने की चतुरता, 'युक्ति' को भी विकसित करो तभी आपकी 'अनुरक्ति' भगवान् में होगी और आप 'भक्ति' भाव से भर कर संसार से 'विरक्ति' हो जावेगी और अंत में 'मुक्ति' प्राप्त हो जावेगी।

लक्ष्मी और उनकी बड़ी बहिन ज्येष्ठा देवी (अर्थात निर्धनता) में इस बात के लिये विवाद हुआ कि किसकी स्थिति उच्चतर है। वे त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पास इसका निर्णय कराने गयीं, परन्तु उन्होंने निर्णायक का दायित्व लेने में असमर्थता प्रकट की। उन्होंने समयाभाव का बहाना किया। जब विवाद नारद के पास पहुँचा तो उन्होंने सुझाया कि वाराणसी का एक व्यवसायी इसका निबटारा कर देगा। वे दोनों उसके सामने गयीं, वह द्विविधा में फँस गया क्योंकि यदि उसके निर्णय से लक्ष्मी देवी असन्तुष्ट हो गयीं तो उसका परिणाम उसके लिये दुखद होगा और न वह बड़ी बहन का वरदान ही स्वीकार कर सकता था क्योंकि वह तो निर्धनता की देवी थी। इसीलिये उसने अपने उत्तार से दोनों को प्रसन्न कर दिया, "बड़ी बहन जाते समय आकर्षक कल्याणकारी होने के कारण स्वागत योग्य है और छोटी आते समय सुन्दर और कल्याणकारी होने के कारण स्वागत योग्य

है ।" दोनों ही समान रूप से सुन्दर, कल्याणकारी और स्वागत योग्य घोषित होने से सन्तुष्ट थीं । मुमुक्षु को दुनियाँ दूर हटती हुयी सुन्दर, कल्याणकारी और स्वागत योग्य लगती है अर्थात् सभी पार्थिव आकर्षण और विलास दूर हटने से ही भक्त का कल्याण होता है । इस समय हम लोग 'एटम' को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और 'आत्मा' को नगण्य मानते हैं । जीवन के मूल्यों का यह उलट-फेर दुखान्तकारी है ।

जो भी वस्तु आप चुनें उसके वास्तविक मूल्य की भावना आप पर अवश्य प्रभाव डालती है । आपका लक्ष्य तो भगवत् प्राप्ति है, चरम तत्त्व, जिसका यह सब दृश्यमान जगत बाह्य खोल मात्र है, की प्राप्ति ही अंतिम उद्देश्य है । इसे कभी भी दृष्टि से ओझल न होने दो। जब तक आप अपने लाभ पर दृष्टि जमाये हुये कार्य करते हैं, आपको उस कार्य के परिणामों से अवश्य ही सुख या दुख होगा; क्योंकि आप इनको भुगतने के ही लिये उत्पन्न हुये हैं । जो व्यक्ति एक जेल से दूसरी जेल को स्थानान्तरित किया जाता है उसके दायें-बायें दो सिपाही प्रहरी बनकर चलते ही हैं, पुण्य-पाप के यह युगल प्रहरी जीव के एक जन्म से दूसरे जीवन धारण करते समय उसके साथ ही रहते हैं । यदि आप उनकी चौकसी से बचना चाहते हैं और एक जेल से दूसरी जेल में जाने से बचना चाहते हैं तो कर्म करो परन्तु कर्म के परिणामों के संबंध की कोई गणना न करो, अर्थात् कर्मफल की चिन्ता न करो । भगवान् पर ही छोड़ दो क्योंकि कर्म करने की प्रेरणा तो उन्हीं की दी हुयी है और इस कार्य को उन्हीं ने संभव बनाया । कार्य, कार्य की इच्छा और आशा सब उसी भगवान् को समर्पित कर दो ।

समर्थ रामदास अपने बाल्यकाल में एक बार पुस्तक पढ़ते हुये बाजार से जा रहे थे किसी ने चलते-चलते पढ़ने के लिये उन्हें फटकारा उसने कहा कि रामदास विद्यालय जाकर अध्ययन कर सकते हैं । परन्तु

रामदास ने उत्तर दिया, "मेरे लिये तो सम्पूर्ण विश्व ही विद्यालय है, जिसमें मुझे जीवन भर पढ़ना है। विद्यालय, जहाँ मुझे कुछ पाठ पढ़ने हैं और तथा विश्व में, जहाँ मुझे अन्य पाठ पढ़ने हैं, मैं कोई भेद नहीं समझता हूँ। गृहस्थी स्त्रियों के लिये विद्यालय है, कार्यालय या फेक्ट्री या खेत पुरुषों के लिये विद्यालय हैं। शिक्षा का काम तो मृत्युपर्यंत चलता रहता है और जन्म लेते ही प्रारंभ हो जाता है। सभी अनुभवों का सार ही संसार है।

निस्सन्देह आपको अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अपने लिये स्वयं ही नाम-रूप जिस पर आप का विश्वास दृढ़ हो सके, चुन लेना चाहिये। आप जानते ही हैं कि किस प्रकार पिता-पुत्र जो एक गधे को खरीद कर घर ला रहे थे, अन्य लोगों के सुझावों के वशीभूत होकर पुल पर से निकलते समय अपने गधे से ही हाथ धो बैठे। वह नदी में गिर गया। पहले दल के लोगों ने गधे पर पुत्र का आरूढ़ होना पसंद किया, तब किसी अन्य ने लड़के को इसलिये बुरा भला कहा कि वह बुड्ढे को पैदल दौड़ा रहा है। जब वे दोनों ही सवार हो गये तो अन्य लोगों ने उनकी निर्दयता की निन्दा की और जानवर को घर ले जाने का सुझाव दिया। अन्ततोगत्वा गधा उस भीड़ में ऐसा चौंका कि नदी में जा गिरा। यदि आप हर किसी की बात मानकर निर्णय लेना चाहेंगे तो वह निर्णय ठीक प्रकार से लिया ही न जा सकेगा। ऐसा तो होता ही है। जप, ध्यान, स्मरण के लिये एक नाम-रूप का चुनाव कर लो। तभी एकाग्रता हो सकेगी।

उस प्रेम के संबंध में, जिससे कि आप यहाँ बंधे हुये हो, चर्चा हुयी थी। मेरे प्रति आपका प्रेम और आपके प्रति मेरा वात्सल्य भाव यही तो जोड़ने वाली कड़ियाँ हैं। आप को यहाँ प्रशान्ति निलयम में टिकाये रखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं जानता हूँ कि अन्य व्यक्तियों

ग्रौर संस्थाओं के प्रति भी ग्रापका कर्त्तव्य है क्योंकि वे ग्राप की सेवा पर निर्भर करते हैं। वे भी मेरे ही हैं। मैं ग्रापको ग्रनुभव कराना चाहता हूँ कि मैं सर्वत्र हूँ, मैं किसी काल, स्थान ग्रौर कारण के बन्धन में नहीं हूँ।

जब नरकासुर नष्ट हो गया अर्थात् मनुष्य के षड्‌रिपु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) जो उसे पतन की ग्रोर घसीटते हैं, वशीभूत कर लिए गये तो पुनः ज्ञान की ज्योति स्पष्ट होकर प्रकाशित हो उठी। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए ग्राज के दिन दीपक जलाकर प्रत्येक मकान की देहली पर सजाकर पंक्तिवद्ध करके रखे जाते हैं कि उस ग्रन्धकार का नाश हो जावे जोकि दुष्टता और पाप का निवास स्थान है। सत्य ग्रसत्य की शक्तियों को पराजित कर देगा। सत्यभामा का यही ग्रर्थ है कि वह भगवान् का यंत्र है जिसके द्वारा नरकासुर का नाश किया गया था। दीपावली के सम्बन्ध में इन कहानियों के विस्तार में मुझे जाने की ग्रावश्यकता नहीं है। सद्‌गुणों का ग्रपने में विकास करो, सत्कर्मों में संलग्न रहो, सदा सत्संग में रहो—साई समाज के निर्माण का यही ढंग है।

दीपावली १९६६
११-११-६६

—०—

५५

प्रणव (ओ३म्) ही प्राण है

विश्व आजकल दलबन्दी और घृणा से व्याप्त है अतएव प्रशान्ति अथवा निर्बाध आन्तरिक शान्ति की नितान्त आवश्यकता है। जब कभी किसी को कोई बीमारी, जैसे मस्तक या उदर में पीड़ा, होती है तो चिकित्सक उसके कारण की खोज करता है, तब उपयुक्त औषधि की व्यवस्था करता है। वह एकदम रोगी को कुछ चूर्ण या मलहम देकर तत्काल नहीं भगा देता है। यदि वह ऐसा करता है तो वह उस विश्वास के योग्य नहीं है जो लोगों ने उसमें प्रकट कर रक्खा है। इस संसार में उलझे रहने से, जोकि समय और स्थान के अनुसार निरन्तर परिवर्तनशील है, जीवन भी परिवर्तनशील है, यही मुख्य कारण है। संसार में होने वाले उत्थान, पतन से ही तो सुख-दुख की उत्पत्ति होती है। शोक की कमी होने को ही आनन्द, तथा आनन्द की कमी को दुखदायी शोक, माना जाता है। यह दोनों एक ही सिक्के के दो पार्श्व हैं जिसका नाम संसार है। इस संसार में सार यही है, कि इसमें अतिसूक्ष्म सत्य है। भगवद्गीता में इसे अश्वत्थ वृक्ष बतलाया गया है। इसका अर्थ है "वह जो दूसरे दिन नहीं होगा"। इस विशेषण से वह भ्रम या मायाजाल स्पष्ट हो जाता है जिसे कि स्थायी और सत्य मान बैठते हैं। परन्तु विशाल वृक्ष होने से यह ज्ञान की कुल्हाड़ी से ही काटा जा सकता है; या जैसा गीता में कहा गया है, ज्ञानाग्नि से भस्म किया जा सकता है।

चेतना में वह अग्नि प्रज्वलित करने के लिए, आध्यात्मिक अनु-

शासन का पालन ही एक उपाय है। सीढ़ियाँ कठिन अवश्य हैं क्योंकि प्रत्येक पग पर आप से अहंकार रहित होने की अपेक्षा की जाती है यह अहंकार ही बड़ी बाधा है जो चेतना में मजबूती से गहरी जड़ें जमाये हुए है। सीढ़ियों का क्रम ऐसा है :—

(१) प्रत्येक कार्य भगवान् को समर्पण करना है। इसलिए प्रत्येक कार्य सत्य, न्याय, सद्गुण और प्रेम से ओत-प्रोत होना चाहिए और इस कार्य को सत्य, न्याय, सद्गुण और प्रेम के आदि-श्रोत अर्थात् सर्वान्तिर्यामी भगवान् की पूजा के पुष्प रूप में अर्पण करने की भावना से किया जावे।

(२) दलबन्दी की लड़ाई से अनुशासन भंग न किया जावे। उस आदि स्रोत अथवा भगवान् का कोई भी नाम-रूप अंगीकार किया जा सकता है। आजकल वैष्णव और शैव एक दूसरे का बहिष्कार करते हैं। आग पानी की तरह सम्बन्ध रखते हैं। वे विपक्षी से कुछ भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं। आपस में एक दूसरे के लिए नग्न खड्ग लिए प्रहार के लिए सन्नद्ध हैं इस प्रकार वे सत्य के रत्न को ही खो बैठे हैं। जब राजदरबार में उभयपक्ष के प्रचारकों ने अपने अपने मुक्के तान लिए तो राजा ने पूछा कि क्या उन लोगों ने भगवान् के इसी रूप की झांकी देखी है? झांकी और दर्शन तो एक को भी प्राप्त नहीं हुआ था, उन्होंने तो केवल पुस्तकें पढ़ी थीं और पुस्तकों से शास्त्रार्थ करना सीखा था। विश्वास की जड़ी से सीसा स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है इसका ऐसा विचित्र रासायनिक प्रभाव होता है। सक्कूई के विश्वास वासे ही पत्थर का टुकड़ा स्वर्गीय तत्व में बदल गया था; मूर्ति दैवी आदर्श की प्रतिमूर्ति बन गई थी। अपने विश्वास को पुष्ट करो और अन्य के विश्वास को मत छेड़ो; क्यों किसी से तर्क करते हो कि "साई" ही सर्वोपरि है, जब कि सत्य तो यह है कि भगवान् को किसी भी रूप में पूजो, किसी नाम से पूजो वह 'साई' की ही पूजा है?

(३) आध्यात्मिक अनुशासन के पालन में चालाकी-चतुराई से दूर रहो और विद्वत्ता प्रदर्शन से भी बचो। शब्दों की जादूगरी, अलाभ-कर मनोरंजन है। एक बगुले को चन्द्रमा से श्रेष्ठतर होने की भ्रान्ति हो गयी; क्योंकि उसने विद्वत्तापूर्ण दम्भ से कहा "चन्द्रमा तो केवल एक ही पक्ष में श्वेत रहता है जबकि मैं उभय पक्ष में श्वेत हूँ (चन्द्रमा का पखवारा १५ दिन का होता है बगुले ने पक्ष का अर्थ पंख लगाकर स्वयं को उभय शुक्ल पक्षीय सिद्ध किया)। चन्द्रमा नीरज से केवल अल्प समय (घोर शीत-ऋतु) के लिये शत्रुता रखता है और मैं तो सदा नीरज का शत्रु रहता हूँ।" (नीरज का अर्थ नीर में उत्पन्न कमल जो चन्द्रोदय के समय बंद हो जाता है और नीरज का अर्थ जल में उत्पन्न मछली, कीड़े जिन्हें बगुला खाता है)। यह तो केवल शब्दों की खिलवाड़ मात्र है इससे वास्तविक श्रेष्ठता तो नहीं सिद्ध होती।

(४) परब्रह्म को प्राप्त करने के लिए प्रेम ही पर्याप्त है। प्रेम घृणा के न होने पर होता है जबकि अरुचि और द्वेष भाव न हो। प्रेम का अर्थ सक्रिय रूप से सहानुभूति और प्यार रखना जिससे आप दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी अनुभव कर सकें। ईश्वर में चार गुण हैं जब आप उन गुणों का अपने में विकास कर लें तो आप भगवान् को समझ सकते हैं। वे गुण है :—प्रेम, सौन्दर्य, माधुर्य और शोभा। केवल एक प्रेम का ही विकास कर लेने से शेष तीन स्वतः आ जाते हैं। सम्पूर्ण विश्व के रचयिता के प्रति जब आप इस प्रकार प्रेम से पूर्ण हो जाओगे तो वह स्थिति सौन्दर्य की होगी; जब आप विश्व प्रेम के महासागर में निमग्न होगे तो माधुर्य की स्थिति में होगे; जब आपका मन अपनी व्यक्तिगत सत्ता को खोकर विश्वात्मा के मन के साथ संयुक्त होगा और अपना पृथक अस्तित्व खो देगा तब 'शोभा' की स्थिति होगी।

जो लोग इस अनुशासन का पालन करने में अत्यधिक अशक्त हैं, वे ही नाना प्रकार के दोषारोपण और बहानेबाज़ी किया करते हैं। एक किसान का कुत्ता बड़ा भयंकर पशु था। वह एक मुलाकाती पर खीसें निकालकर झपटा और उसे काट ही लेता यदि मुलाकाती सामने पड़ी कटीली लकड़ी कुत्ते के सिर पर समय से न दे मारता। कुत्ता पीड़ा से गुर्राता हुआ पीछे हटा। कुत्ते का स्वामी भौंकने की आवाज़ सुन कर बाहर आ गया और कुत्ते के सिर पर चोट देखकर मुलाकाती से क्रोध में भरकर झगड़ने लगा। यहाँ तक कि मामला राजदरबार में न्याय के लिए पहुँचा। राजा ने उससे पूछा कि "जब किसान के कथनानुसार कुत्ता एक निरापद पशु है तो तुमने कुत्ते को क्यों मारा?" मुलाकाती ने निवेदन किया "यह तो क्रियात्मक रूप से मुझ पर झपटा और दाँत निकाल कर गड़ा ही दिये होते।" किसान ने कहा कि "केवल दांत निकालने मात्र से ही मुलाकाती को कँटीली झाड़ी से कुत्ते को चोट पहुँचाने का अधिकार नहीं मिल जाता है, वह एक साधारण चिकनी छड़ी से भी काम ले सकता था।" मुलाकाती ने प्रतिवाद किया कि "जब जीवन ही संकट में पड़ गया हो तो फिर न तो छड़ी का चुनाव करने का अवसर रहता है और चिकनी कंटीली को देखना होता है; उस समय तो जो हाथ लग जावे उसी से प्राण रक्षा की जाती है।" इसके अतिरिक्त, उसने पूछा, "क्यों न कुत्ता ही मुझ पर पूंछ से झपटता और उसी से काटने का प्रयत्न करता ? जब कुत्ता दांतों का प्रयोग करने पर आमादा था तो मैं भी उतनी ही तीखी वस्तु से आक्रमण रोक कर प्रहार करने का अधिकारी था"। राजा ने इस तर्क का समर्थन कर सराहना की और उसे ससम्मान मुक्त किया। चूंकि कुत्ता किसान का पालतू था इसीलिए किसान ने यह सब चालबाजियाँ और कुतर्क किये। मुलाकाती को भी जवाबी चालें चलनी पड़ीं। सरल व्यवहार से मामले को वहीं समझदारी से आपस में ही निबटाया जा सकता था।

आध्यात्मिक क्षेत्र में जो कुछ भी आप करें वह आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में करें; उससे आध्यात्मिक प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसे अच्छी तरह विचार कर करें। अनेक लोग यह नहीं जानते हैं कि 'ॐ' या 'प्रणव' में तीन ध्वनियां अ + उ + म् एकत्रित हैं। जब आप अंग्रेजी में 'गॉड' शब्द लिखते हैं; तो उसके अक्षरों की ध्वनि के अनुसार 'जीओडी' नहीं उच्चारण करते हैं; आपके गले से एक ही ध्वनि 'गॉड' निकलती है। इसी प्रकार ओ३म् को भी एक ही स्वर 'ॐ' की ध्वनि से उच्चारण करते हैं। 'ॐ' में म की ध्वनि धीरे-धीरे हल्की होकर शान्त हो जाती है। इस शान्ति को अनुभव भी किया जाता है। 'ॐ' या प्रणव पहले बच्चों को बोलना प्रारम्भ ही से सिखाया जाता था; जब उसे विद्यारम्भ कराया जाता था। हम वर्ण-माला के प्रत्येक स्वर और व्यंजन को 'अक्षर' की संज्ञा देते हैं। अक्षर का अर्थ है, अपरिवर्तनशील। 'ॐ' शाश्वत भगवान् का, जो सर्वोपरि है, प्रतीक ध्वन्यात्मक स्वरूप है। भारत के बच्चों को इसीलिए प्रारंभ में ही प्रथम अक्षर के रूप में इसकी शिक्षा दी जाती थी। अब तो 'ॐ' का स्थान ए, बी, सी ने ले लिया है। 'ॐ' तो तारों की अन्तरिक्ष में गति से उत्पन्न ध्वनि है। यही वह है जो निराकार में सृष्टि रचना के संकल्प के समय उद्वेलित होकर क्रिया में परिणत हुई थी। सत्य तो यह है कि साम्यावस्था में प्रत्येक क्षोभ प्रत्येक गति, क्रिया के साथ ही कम्पन उत्पन्न होकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। फिर वह ध्वनि कितनी ही सूक्ष्म क्यों न हो। आँखों के पलक बन्द करते ही ध्वनि उत्पन्न करते हैं। यह ध्वनियाँ इतनी हल्की होती हैं कि इन्हें कान से सुन सकना असंभव सा है। इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ, पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई तब भी 'ॐ' की ध्वनि उत्पन्न हुई थी। वह ध्वनि आदि ध्वनि थी, मौलिक ध्वनि थी। जब आप द्वन्दात्मक संसार में 'सः' और 'अहं' वह और मैं की एकता का आह्वान करके द्वित्व पर विजय की चेष्टा करते हैं तो "सोऽहम्" का

जाप करते हैं। जब 'मैं' चेतना और 'वह' की पृथक चेतना अदृश्य होकर एकाकार हो जाती हैं तब "ॐ" रह जाता है। "सोऽहम्" में से 'सा' और 'अहम्' को घटा देने से 'ॐ' ही रह जाता है।

इसी अनुभव की आप आकांक्षा रखते हैं, आप अंगीकार करते हैं और आपकी आवश्यकता भी यही है। परन्तु आप के कार्य, दैनिक चर्या, और जीवन क्रम का पथ यही सिद्ध करते हैं कि आप इस अनुभव को सच्चाई से नहीं चाहते हैं। आप कहते हैं कि आप बंगलौर जा रहे हैं परन्तु आप बैठ जाते हैं दूसरी दिशा में जाने वाली गाड़ी में जो 'गुन्त-कल' को जाती है। पहले भली प्रकार से मालूम तो कर लो कि तुम्हें किस गाड़ी में बैठना ठीक है तब उसमें सवार होओ। संसार में, दम्भी, ढोंगी और धूर्त लोगों की, जोकि मार्ग जानने का दावा करते हैं; कमी नहीं है। परन्तु अन्तर्यामी भगवान् से मार्गदर्शन और आलोक की प्रार्थना करना ही सर्वोत्तम उपाय है। निश्चय ही आपको प्रकाश और पथप्रदर्शन प्राप्त होगा। आपने यह तो पढ़ा ही होगा कि तपस्वियों की तपस्या से संतुष्ट होकर जब भगवान् उनको जंगल या गुफा में दर्शन देते हैं तो सबसे पहले उनसे पूछते हैं "जो वरदान चाहो मुझसे मांग लो" मानो कि उन्हें यह पता ही नहीं हो कि तपस्या किस लिए प्रारम्भ की गई थी विशेष रूप से उस दशा में जबकि वे उस तपस्या से संतुष्ट हुये हैं और स्वयं उस स्थान पर चल कर आये हैं और तपस्वी को पुरस्कृत करना चाहते हैं। फिर भी ईश्वर कारण पूछते ही हैं। कि किसी लिए जिह्वा ही तो मानव के मन की प्रतिनिधि बनकर बात करती है। तपस्वी के हृदय में मुख्य इच्छा के रूप में कुछ भी रहा हो, जिह्वा अंतिम क्षणों में किसी प्रसुप्त इच्छा को ही प्रकट कर सकती है यद्यपि तपस्वी ने भूत काल में कितनी ही एकाग्रता से अपनी इच्छा को भगवान् के समक्ष प्रकट करने का संकल्प कर रक्खा हो। ध्रुव तो वन में भगवान् के दर्शन पाने ही के लिए तपस्या करने गये थे कि वे भगवान से अपनी और

अपनी माता के लिए राजकुमार और महारानी के समकक्ष स्थिति को प्राप्त करना चाहते थे। अंत में ध्रुव को यह अनुभव हुआ कि यह तो बहुत छोटा वरदान है और 'सर्वशक्तिमान्' से इतनी तुच्छ बात के लिए क्यों याचना की जावे। इसीलिए उन्होंने आवगमन् से मुक्ति और भगवान् का निरंतर साहचर्य मांगा। ऐसे भी अन्य लोग हुए हैं जिन्होंने अपनी तपस्या की मुख्य इच्छा को विस्मृत कर दुर्लभ क्षणों में कुछ का कुछ मांग लिया। वाणी को अनर्गल प्रलाप और व्यर्थ शब्दोच्चारण से संयमित कर प्रशिक्षित करना है। इसे संयम से आवश्यकता के अनुसार नपे तुले शब्दों के लिए प्रयोग करो। जो मन में आया, कह डाला यह ठीक नहीं। मन की प्रेरणा को निम्नतम की स्थिति में लाकर प्रकट करो। मौनम् से विद्युतशक्ति संग्रह होती है और इसे आप दीर्घकाल तक 'ध्यान' लगाकर प्राप्त कर सकते हैं। स्वयं प्रेम से पूर्ण हो जाओ, फिर आपके शब्दों से भी प्रेम का प्रसार होगा। वे फिर मृदु शान्तिदायक होकर दुखियों का दुख दूर करेंगे।

प्रेम को जाग्रत करने और बढ़ाने का सबसे अधिक प्रभावशाली उपाय नामस्मरण है। बल्कि इससे भी अच्छा यह है कि आप अपना समय 'प्रणवोपासना'' ॐ का जापकर बितावें। 'ॐ' सृष्टि का मूल है। यह तो सृष्टि का आधार, शक्ति और स्रोत तीनों ही है। यह तो प्रत्येक जीव का प्राण है। हारमोनियम के स्वरों से वायु निकालने पर सा, रे, ग, म, प, ध, नी के स्वर निकलते हैं। इसी प्रकार सभी संसारों में सभी स्वरों के मूल में 'ॐ' की ध्वनि है। इसकी महिमा को जानो और इसके जाप का अभ्यास करो।

गीता में भगवान् ने आश्वासन दिया है कि यदि व्यक्ति अंतिम श्वास के साथ 'ॐ' का उच्चारण कर प्राण त्याग करता है तो वह मुक्त हो जाता है निस्सन्देह केवल इसका स्मरण बहुत लाभकारी नहीं होता है। 'ॐ' की

ध्वनि उसकी क्या सहायता कर सकती है जिसका मन इस, उस इच्छा के पीछे दौड़ा-दौड़ा फिरता है और दुनियाँ से कूच करने के विचार से रोता रहता है और आने वाली दुनिया के विचार से काँपा करता है, उसकी यह ध्वनि क्या सहायता करेगी ? 'ॐ' की महिमा को जीवन भर धारण करना चाहिए जिससे कि यह प्रयाण के समय मस्तिष्क के सम्मुख आ जावे।

कुछ लोग स्त्रियों के लिए 'ॐ' का जाप वर्जित बतलाते हैं। यह तो निर्मूल अन्धविश्वास है। शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं कहा गया है। जब स्त्रियों को ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकार है, (याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रैयी को ब्रह्मविद्या पढ़ायी थी), जैसा कि जनक की सभा की महान विदुषी गार्गी शास्त्रार्थों में भाग लेती ही थी, तो फिर कोई 'प्रणव' को उन लोगों से दूर कैसे रख सकता है ? प्रणव ही ब्रह्म है "ॐ इति एकाक्षर ब्रह्म" एक अक्षर का शब्द 'ॐ' ही ब्रह्म है। जिन लोगों ने शास्त्रों की रचना की है वे इस विविध रूप सृष्टि में एक अद्वैत ब्रह्म का 'ॐ' के रूप में साक्षात्कार कर चुके थे। वे जाति, लिंग आदि भेदों से ऊपर उठ चुके थे। वे सभी जीवों स्त्री, पुरुष, जड़-चेतन सभी की मुक्ति की कामना रखते थे। ज्ञान और योग के इस महान मंत्र से ऐसे संत लोग स्त्रियों को कैसे वंचित रख सकते थे ? कृष्ण ने भी तो ऐसा नहीं कहा है "कि जो मनुष्य मृत्यु के समय ॐ का उच्चारण करता है" इत्यादि। उन्होंने तो "जो कोई" शब्द का प्रयोग किया है जिसमें किसी भी लिंग की शर्त नहीं रक्खी गई है। वे यह नहीं कहते हैं कि "जो कोई जिसे अधिकार दिया गया हो" और न वे यह कहते हैं कि "योग्यता रखने वालों में जो कोई।" भगवान् का स्पष्ट संकेत स्त्रियों को भी प्रोत्साहित करने के लिए है कि वे "प्रणवोपासना" में लग जावें। आप ने देखा ही होगा कि मैं तो किसी को उस उपासना से

हतोत्साहित नहीं करता हूँ। आध्यात्मिक विजय के लिए यह प्रशस्त राज-पथ है, जिस पर सब कोई चल सकते हैं।

जन्मदिवोत्सव १९६६
२३-११-६६



५६

मानव का अवमूल्यन

देश में इस समय बहुत तर्क वितर्क और आन्दोलन व्याप्त हैं क्योंकि प्रचलित मुद्रा का अवमूल्यन कर दिया गया है। कुछ लोग इस कदम को अच्छा बताते हैं; कुछेक की दृष्टि में ऐसा करना पड़ा; जबकि अन्य लोगों का कहना है कि इसे टाला जा सकता था अथवा स्थगित किया जा सकता था। परिणाम सभी के लिए परेशानी और चिन्ता का है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक शोचनीय तो मानव का अवमूल्यन है जोकि इन दिनों बड़े व्यवस्थित रूप से किया जा रहा है। आज मानव को एक यंत्र, हाथ का औज़ार मानकर व्यवहार किया जा रहा है; न कि उसे स्वयं के विकास और पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए जन्मा जीव जाता है। प्रत्येक मनुष्य को त्रुटियों और परीक्षाओं से गुज़रते हुए स्वयं शिक्षित होकर स्नातक बनना पड़ता है; और अपने आत्मतत्व का वास्तविक रूप जानना पड़ रहा है। उसका भविष्य महान है और इसे प्राप्त करने के लिए उसे पर्याप्त चतुरता और अन्य गुणों से सज्जित भी किया गया है। वह परिस्थितियों का असहाय दास नहीं है। दुख तो यह है कि मानव ने प्राप्त सद्गुणों और चतुरता को मोर्चा लग जाने दिया है और स्वयं अपना लक्ष्य भुला दिया है। जिस मार्ग पर उसे चलना है, उस पर अनेक झाड़-झंखाड़ उग आये हैं और उस पर लगे मीलों के पत्थर तथा अन्य परिचय स्तम्भ अदृश्य हो गये हैं। इसीलिए जिस 'व्यक्ति' ने उस सड़क का निर्माण किया था वह स्वयं पुनः मनुष्यों को उस सड़क पर मार्ग-दर्शन करने, सड़क की मरम्मत और नवीनीकरण के लिए आया हुआ है।

अपने इस महान लक्ष्य के लिए किस प्रकार मानव को करोड़ों वर्षों में विकसित किया गया है, आकृति और गुणों को सुधारा गया है। विश्व की उत्पत्ति के आदि काल में जो प्रचलित उथल-पुथल और हड़कम्प था उसमें दो क्रियायें परस्पर एक दूसरे को पराभूत करने के लिए संघर्ष रत थीं। एक ओर तो ज्वालामुखी के मुखों से उत्तप्त लावा निकल-निकल कर पृथ्वी के तल को, झुलसाता हुआ घाटियों आदि में भरता हुआ विकृत कर रहा था। यह सभी ओर विनाश की लीला फैलाता, आतंक और मृत्यु की विभीषिका उत्पन्न करता सभी के विनाश की सूचना सा दे रहा था। दूसरी ओर अदृश्य रूप से एक कोषीय जीव 'अमीवा' जल की सतह पर बहुलता से तैर रहा था और जहाँ-तहाँ किनारे पर, चट्टानों की छत्र छाया में विवर्धित होकर जीवन की चिनगारी को आग की उस बाढ़ से बचाते हुए, अक्षुण्ण रखने की चेष्टा में लगा हुआ था। उस समय कौन कह सकता था कि भविष्य इसी जैवी प्रतिनिधि 'अमीवा' जो स्वयं घटना-क्रम से उत्पन्न होकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष-रत था, के हाथ रहेगा ? शीत और अग्नि के उस विनाश तांडव से यह 'अमीवा' जीवन के सूक्ष्म कणों के रूप में, बच सकेगा ऐसी आशा कौन कर सकता था ?

परन्तु, अन्ततोगत्वा, चैतन्यबिन्दु ही विजयी हुआ। केवल बुद्धि, परिस्थिति के अनुसार अनुकूलन और जीवित रहने की अदम्य इच्छा ने इसे पंच महाभूतों के विनाशकारी प्रकोप पर विजयी बनाया। चैतन्य के विकास से 'अमीवा' ही अनेक जीवधारियों के रूप में विकसित और संगठित होता गया जो भीषण दानवाकार आकृति से लेकर सूक्ष्म यंत्रों से दिखाई दे सकने वाले अनेक आकार नाम, रूप उत्पन्न होते गये। अंत में यही मानव के रूप में भी विकसित होकर जन्मा। मानव में चैतन्य के विकास के परिणाम स्वरूप सज्जनता, सद्गुण, सहानुभूति, बलिदान, वक्तृत्व कला और संगीत, नृत्य और गायन,

विद्वता और साधना, आत्मबलिदान और साधुता और दैवत्व की निधि, नहीं-नहीं, दैवत्व ने ही मानवाकार में अपने को व्यक्त किया।

इसी से मानव को सृष्टि का उत्कृष्ट प्रसून कहा जाता है। यही है वह लक्ष्य जिसके लिए उसने पत्थर, घास, वृक्ष, पक्षी और पशु की स्थितियों से संघर्ष करते विकसित होते हुए वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है। इसलिए जिस दुर्लभ पुरस्कार को मनुष्य ने जीता है उसे योंही क्षुद्र-स्वार्थों और झूठे-सुखों के लिए नष्ट नहीं कर देना चाहिए। उसे पुनः पशुत्व या अन्य मानवेतर स्थितियों, (योनियों) में नहीं पतित होना चाहिए। उसे तो दैवत्व की ओर ही निरन्तर अग्रसर होते रहना है। उसे अपनी शक्ति और दुर्बलता से परिचित होकर अपने लक्ष्य के प्रति सावधान रहना है, अपने मार्ग और क्षमताओं को स्मरण रखना है। उसे अपनी क्षमता और मान के अनुसार ही कार्य करना चाहिए।

मानव को वह क्षमता प्रदान की गयी है कि जिससे वह शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि से अपनी आत्मा को पृथक करके अनुभव कर सकता है। वह अनुभव करता है और कहता है, "मेरे नेत्र, मेरे कान, मेरे पैर, मेरे हाथ, मेरा मन, मेरी बुद्धि" इत्यादि। वह अपनी चेतना के गहन स्तरों में अनुभव करता है कि वह इन सबसे पृथक है, वह तो उनका प्रयोग कर्त्ता, स्वामी और अधिकारी है। अन्य कोई पशु अपने को शरीर से पृथक नहीं अनुभव कर पाता है। वे तो अपने शरीर को ही अपने आप समझते हैं। वे नहीं जानते हैं कि वे इस भौतिक ढांचे के अन्दर के निवासी हैं। मानव एकान्त में थोड़ा मनन और तर्क करने से यह जान सकता है कि यह भौतिक कलेवर अवास्तविक और अस्थाई है। इससे वैराग्य उत्पन्न होना चाहिए जोकि विवेचन की क्रिया से विवेक द्वारा उत्पन्न होता है।

एक बार भी यदि मनुष्य शरीर और उसके सम्बन्धों से अनावश्यक आसक्ति से ऊपर उठ सके तो वह सुख-दुख, शुभाशुभ, शोक, प्रसन्नता इत्यादि द्वन्दों से मुक्त हो जाता है। वह फिर दृढ़ता से साम्यावस्था साहस और क्षोभ रहित स्थिति में हो जाता है। तब मनुष्य अनुभव करता है कि दुनियाँ ईश्वर के सम्बन्ध से एक ही परिवार मात्र है और सभी कुछ प्रसन्नता, प्रेम और आनन्द का पारावार है। वह इस सब विश्व को अपना ही विस्तार समझने लगता है, यह सब विभिन्न अभिव्यक्तियाँ उसी एक दैवी संकल्प की परिकल्पनायें हैं और यह दैवी संकल्प उसी की आत्मा से तत्वतः एक है। इस प्रकार अपने व्यक्तित्व के विस्तार से समस्त विश्व को अपनी लपेट में ले लेना मानव की सबसे बड़ी छलांग होती है। इससे उच्चतम कोटि का आनन्द प्राप्त होता है, यह वह अनुभव है जिसे सन्तों और ऋषियों ने दीर्घकाल तक तपस्या और प्रार्थना के पश्चात् प्राप्त किया था।

अहंकार में से ही लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, विश्वासघात तथा अनेक दुर्गुण उगते हैं; जिनसे मानव का पतन होता है। ये उसकी बुद्धि को बादलों की भांति ढंक लेते हैं। वे सत्य से उसका ध्यान विचलित कर देते हैं जिससे असतय और अवास्तविक, सत्य और वास्तविक प्रतीत होने लगता है। तथा सत्य विकृत तथा असत्य प्रतीत होता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि नियमित साधना के द्वारा मन को इन विकारों से शुद्ध कर लिया जावे जिससे कि मानव की दुर्बल इच्छा शक्ति दैवी संकल्प से संयुक्त हो जावे जिससे वह भगवान् की महिमा में ही समा जावे। विद्वता या चतुरता चाहे कितनी ही महान और प्रखर क्यों न हो, उसमें शोधक शक्ति नहीं होती है। वे तो घमंड और प्रतिद्वन्दिता का मिश्रण ही कर देते हैं। विद्वान व्यक्ति सदा सज्जन ही नहीं होते हैं और न आध्यात्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति, जिन्हें भौतिक प्रकृति पर शक्तियाँ प्राप्त हैं, घमंड, ईर्ष्या और लोभ से रहित हो पाते

हैं। शुद्ध हृदय वाले की पहिचान सत्य, धर्म, प्रेम, शान्ति से की जा सकती है। जहाँ यह चारों हैं वही ईश्वर व्यक्त होकर विराजमान है।

आज विश्व घोर संकट में फंसा है क्योंकि साधारण मनुष्य और उसके नेतागण क्षुद्र इच्छाओं, क्षुद्र उद्देश्यों के वशीभूत होकर पथ से विचलित हो गये हैं। क्योंकि इनकी पूर्ति के लिए उतने ही क्षुद्र हथकन्डे फेंकने लगे हैं और भावनाओं से भी पतित हो गये हैं। मैं तो इसी को "अवमूल्यन" मानता हूँ। यद्यपि मानव तत्वत: दिव्य है परन्तु वह पशु जीवन जी रहा है। बहुत ही कम लोग 'आदि मानव' के स्तर तक का जीवन बिता पाते हैं।

अपने घर-परिवार, गाँव, राज्य और विश्व को एक प्रशान्ति-निलयम् में परिणत करने के स्थान पर (जोकि मानव को शान्ति प्रदान करें) मानव ने विश्व को भयंकर क्रोध-घृणा और लोभ का क्रीड़ांगन बना दिया है। इन्द्रियों को (जोकि मानव को सूचना मात्र देने वाली क्षुद्र वाहिनियाँ हैं) मानव ने अपनी सेविका के स्थान पर स्वामिनी बना रक्खा है, वह बाह्य सौन्दर्य, क्षणिक सुरीलापन, बाह्य मृदुता, चटपटा स्वाद और हल्की सुगंधियों का दास बन गया है। वह अपनी सभी शक्तियों और परिश्रम से प्राप्त योग्यताओं को लेकर इन उद्दाम निम्न आकांक्षाओं की प्रेरणाओं की तृप्ति में जुटा हुआ है।

जब यह इन्द्रियाँ मस्तिष्क, बुद्धि के आधीन हो जाती है तो आपको स्थायी आनन्द प्राप्त होता है, जब इन्द्रियाँ स्वामिनी होती हैं तो वे आपको कीचड़ में घसीट ले जाती हैं। अवमूल्यन का सबसे दुखद परिणाम यही हुआ है। हर कार्य जो विवेक की शक्ति को घटाता है, और इन्द्रियों की मांग की पूर्ति करने वाला होता है, मानव का अवमूल्यन करता है। बुद्धि को तो इनका शासक होना चाहिए; जब भी इन्द्रियों

की तृप्ति की कोई मांग उठे, बुद्धि तत्काल विवेचन प्रारम्भ करे और पूछे "क्या यह कार्य मानव में निहित दैवत्व के अनुकूल है ?" इससे अवमूल्यन रुक जावेगा।

मानव को 'वनमानुष' या चिम्पाज़ी की श्रेणी में विकसित पशु मानना अथवा उसी कोटि की मिट्टी और पदार्थ से निर्मित स्वीकार करना, मानव के अवमूल्यन को स्वीकार करना है। मानव तो माधव का ही एक अणु है। वह तो प्रफुल्लित होकर, पूर्ण विकास को पाकर स्वयं भगवान् बनने की क्षमता से युक्त है। उसका जन्म सदा आनंद-मय जीवन के लिए हुआ है परन्तु वह सर्वत्र दुखी है। यही तो दुखद स्थिति है। यह तो उस प्यास से मरते हुए धोबी के समान है जोकि घुटने तक गहरी धारा में खड़ा है; अथवा उस मनुष्य के समान है जो अपने नेत्र स्वत: बन्द कर अंधेरे में लुढ़क रहा है। आनंद का स्रोत तो मानव में ही है। प्रकाश का स्रोत उसके नेत्रों में है। वास्तविक शिक्षा तो यह है कि मानव जाने कि किस प्रकार वह इस आनंद और प्रकाश के स्रोत से आनंद का झरना और प्रकाश-पुंज प्राप्त करे। यदि यह कार्य विद्यालयों और कालेजों के द्वारा नहीं किया जाता है, तो माता-पिता और समाज के वरिष्ठ लोगों को, जो इस अवमूल्यन को रोकना चाहते हैं, यह कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

त्रिचनापल्ली
प्रशान्ति विद्वान् महासभा
१८-१२-६६

—०—

५७

उसी कक्षा में पड़े रहना

जब सूर्य, जोकि दृष्टि को प्रेरित करने वाला देवता है, उत्तर की ओर गतिमान् होता है, मानव को भी उत्तराभिमुखी गति अथवा भगवान् की समीपता की ओर ले जाने वाले कार्यों, में गतिशील होना चाहिए। वर्ष को दक्षिणायन और उत्तरायण दो भागों में विभक्त करने का यही उद्देश्य है। परन्तु यह तो केवल चेतावनी अथवा प्रेरणादायक अनुरोध है। मानव तो उत्तर-दक्षिण की सीमा से ऊपर उठकर सदा वर्ष-भर भगवद्मुखी अथवा उत्तरायण गति से आगे और उच्चाति-उच्च जा सकने के प्रयत्न में लग सकता है। न तो मकर संक्रान्ति के आगमन् की उसे प्रतीक्षा में रुके रहना है और न कर्म-संक्रान्ति के साथ अपनी साधना रोक देना है। हमारी सभी आध्यात्मिक साधना और पवित्र प्रयासों का उद्देश्य अपने लिए भगवत्कृपा को प्राप्त करना है। इसीलिए जब आप किसी मंदिर में जाते हैं तो मुख्य मन्दिर में खड़े होते हो और टंगे हुए घंटे को बजाते हो इसी भावना से कि भगवान का ध्यान भक्त के आगमन की ओर आकर्षित होवे। इस घंटा ध्वनि के साथ ही हार्दिक प्रार्थना भी संयुक्त होनी चाहिए।

साधना का स्वरूप किसी निर्धारित कार्यक्रम को यंत्रवत दोहरा देना मात्र नहीं होता है कि सभी औपचारिकताओं का निर्वाह करना मात्र पर्याप्त नहीं है प्राचीनकाल में एक ऋषि ने अपनी कुटिया में एक बिल्ली पाल रक्खी थी, जब भी वे अग्निहोत्र करते थे तो बिल्ली आग के चारों ओर उछल-कूद मचाकर उनकी पूजा में परेशानी उत्पन्न करती थी।

इसीलिए वे अग्निहोत्र प्रारम्भ करने से पूर्व ही उसे पकड़ कर एक पले के नीचे कुछ समय के लिए बन्द कर देने लगे। उनके पुत्र, ने जो यह सब कृत्य वर्षों तक देखा था, सोचा कि अग्निहोत्र से पूर्व बिल्ली पकड़ना और उसे बन्द करके रखना भी इसी का एक अनिवार्य कृत्य है। वह भी बड़े उद्योग से कहीं न कहीं से एक बिल्ली पकड़ता और उसी कमरे में उसे बंद करके अग्निहोत्र करने लगा। और इसको सम्पन्न कर बड़ी सफलता और प्रसन्नता का अनुभव करता था। अर्थहीन यंत्रवत् क्रिया का यह एक उदाहरण है।

माया ही मनुष्य को नामरूप को वास्तव मानने को प्रेरित करती है। आसक्ति इसी माया से उत्पन्न होती है। इस विविधता के घूंघट की ओट में उसने वास्तविकता को छिपा रक्खा है। माया माधव का आवरण या वस्त्र है; जो इसे सत्य मानते हैं वे मानव हैं। साधना के द्वारा मानव इस छलना से बच निकल सकता है और यह अनुभव कर सकता है कि यह सब असत्य है और सदा न रहने वाली है। पोतराजू जानते थे कि यह सब भगवान् का ही रूप है, वे लिखते हैं कि भागवत् का प्रणयन भगवान् ने ही उनके अन्दर किया था। वही एक सब में है, गीता कहती है 'माम् एकम्।' वे पूर्णतया भगवान की शरण में हो गये थे। श्रीनाथ ने जो उनके पत्नीबन्धु थे, स्वयं भी एक महान कवि थे, उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी कृति राजा को अर्पित कर दें; जो निश्चय ही उन्हें रत्नों और स्वर्णमुद्राओं से मालामाल करेगा। पोतराजू ने श्रीनाथ से पूछा कि 'एक ही समय में मनुष्य दो नौकाओं पर कैसे आरूढ़ हो सकता है?" और उनका सुझाव अस्वीकृत कर दिया। उनके मन ने राम के चरणों को छोड़कर अन्यत्र जाने से इनकार कर दिया, क्योंकि वह तो वहाँ अमृत का आस्वादन कर चुका था। गोपन्ना के मन से भी राम के निवास की सौन्दर्य वृद्धि के अतिरिक्त सभी विचार निकल चुके थे और भद्राचलम् में वे राम की सेवा में ही रत रहते थे केवल त्याग

से अमरत्त्व और भगवान में लय हुआ जाता है। आप सदा असंग रहकर अपने हृदय की गहराई के शांत आनन्द में निमग्न रहें। यदि ऊपर-ऊपर लहरें उठे तो उठती रहें और गिरती रहें क्यों कि यह तो वायु की जल सतह पर स्वाभाविक प्रक्रिया मात्र है। इसमें आप अपनी आंतरिक शान्ति को सदा अविचलित रखने में सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करें।

आप सदा एक ही कक्षा में कब तक पड़े सड़ते रहोगे ? क्या अगली कक्षा में उन्नत होकर जा बैठने की तुम्हारी बिल्कुल इच्छा नहीं है ? भक्ति के दो दर्जे होते हैं 'सहज भक्ति' और 'विशेष भक्ति'। सहज भक्ति, भजन-पूजन और नामस्मरण, व्रत, तीर्थयात्रा आदि होती है। 'विशेष भक्ति' चरित्र की निर्मलता की आकांक्षा, मनोविकारों का संयम, दया, प्रेम, शान्ति अहिंसा आदि का अभ्यास करना है और 'मानव कहाँ से क्यों यहाँ आया है ?' की जिज्ञासा में रत रहना है। यह लज्जा की बात है कि लोग साल पर साल बीतते जाने पर भी उसी कक्षा में पड़े हुए हैं। इसके बाद इससे भी ऊँची एक कक्षा और है जिसे परा-भक्ति कहते हैं। चतुरता से बाहरी समस्यायें सुधारीं तथा हल की जा सकती हैं। केवल प्रगाढ़ साधना ही से आन्तरिक उथल-पुथल की चरम स्थिति को सुधारा और हल किया जा सकता है। चार मित्रों ने रूई का व्यापार प्रारम्भ किया। रूई की गांठों को रखने के लिए उनके पास एक गोदाम था। बिनौलों के कारण चूहे आने लगे। चूहों की भीड़ को भगाने के लिए उन्होंने एक बिल्ली को वहाँ के लिए रखा। चूंकि वे बिल्ली को बहुत प्यार करते थे उन्होंने बिल्ली के पैरों में सोने के घुंघरू बांध दिए। एक बार बिल्ली गांठों के ढेर पर से कूदी वह एक पैर से लंगड़ाने लगी। इसलिए उन लोगों ने कुछ मल्हम लगाकर मला और चुटैल पैर में लम्बी पट्टी बांध दी। पट्टी किसी प्रकार ढीली हो गई और बिल्ली को भी अपने पीछे दूर तक घिसटने वाली पट्टी की कोई चिन्ता नहीं हुई, वह आग के पास बैठ गई। जब पट्टी को आग लग गई, वह घबड़ा

कर अपनी रक्षा के लिए इधर-उधर भाग कर अंत में गोदाम में ही घुस गई। परिणाम यह हुआ कि समूचा गोदाम थोड़ी देर में ही एक राख के ढेर में बदल गया। चारों मित्रों ने बिल्ली के चारों पैरों को एक एक करके अपने हिस्से में बांट रखा था। टूटा पैर भी जिस मित्र के हिस्से का था उसे ही शेष तीनों ने इस काण्ड का दोषी ठहराया और उससे क्षति-पूर्ति की माँग की।

मामला न्यायालय तक पहुँचा। उभय पक्षीय आरोप और प्रत्यारोप सुनने के पश्चात् जज ने कहा, "टूटी टांग का कोई उत्तरदायित्व इस काण्ड में नहीं है, उसे तो शेष स्वस्थ तीन टांगें ही गोदाम में घसीट ले गई जबकि उसमें बंधी पट्टी ने आग पकड़ ली थी। इसलिए तीन स्वस्थ टांगों के स्वामियों द्वारा टूटी टांग के स्वामी को मिलकर क्षतिपूर्ति दी जावे।" इस प्रकार जो बात प्रारंभ में सही लगती है, पुनर्विचार के पश्चात् वही गलत सिद्ध हो जाती है। दुनियाँ की दृष्टि से सही और बात है और भगवान की दृष्टि में सही कुछ और ही होता है। अतः पता लगाना चाहिए कि भगवान किस दृष्टि-कोण को सही मानेगा, यह तभी होगा जब आप भगवद्भक्तों की संगति में रहें और उनसे सत्य-रामर्श की याचना करें। आपको सज्जनों से बचना नहीं, बल्कि उनकी संगति में रहना चाहिए।

श्रावण, भाद्रपद मास में खेतों में प्यासी फसलें होती हैं और मनुष्य दूसरे ही प्रकार की, इन्द्रियों के आनन्द रूपी विषाक्त जल की, प्यास से पीड़ित रहता है।

आत्म-समर्पण के बाद प्रत्येक को मुकट धारण करने का अधिकार मिल जाता है। जो षड्‌रिपु निरन्तर व्यक्ति के राज्य में उपद्रव करते रहते हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर उनका पूर्ण रूप से

आत्म समर्पण होना चाहिए। जब तक अतःकरण में यह छै भयानक शत्रु हैं तब मुकुट धारण किए रहने पर मनुष्य अपने माथे पर रत्नों के स्थान पर पत्थर कंकड़ों का ही भार ढोता है। वह तो पत्थरों को ढोने वाला कुली मात्र है। वास्तविक मुकुट धारण करना तो विभीषण का था जिसने राम की अध्यक्षता और उपस्थिति में आत्मसमर्पण और बलिदान के द्वारा उस दर्जे को प्राप्त किया था।

राह में पड़ी किसी कील से साइकिल के एक पहिये के ट्यूब में छिद्र हो जाता है। 'मैं' और "मेरे" इन दो कीलों से मनुष्य की उन्नति में 'पंक्चर' (छिद्र) होते रहते हैं। विवेक और वैराग्य ही मनुष्य के दो सहायक होते हैं। उन्हें सदा शक्तिमान और सभी सुविधाओं से सम्पन्न रक्खो क्योंकि वे मानव को निरापद और प्रसन्न रहने में सहायता करते हैं। एक पुत्र, अपने पिता के पूछने पर कि वह हाई स्कूल पास करने के पश्चात कौन सा 'कोर्स' (पाठ्यक्रम) लेना चाहेगा, बताया करता था "दौड़ का कोर्स।" इन अंगरक्षकों (विवेक और वैराग्य) के न रखने से यही परिणाम होता है। जब कृष्ण भीष्म का वध करने के लिए रथ से कूद पड़े और हाथ में रथ का पहिया ले लिया तो अर्जुन ने भी रथ से कूद कर उनके दोनों चरण पकड़ लिए और प्रार्थना की, "हे भगवान् आपने शस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा की थी लोग ऐसा न कहें कि अर्जुन को भीष्म से बचाने के लिए भगवान् ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी, "मैं मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार हूँ।" यह अर्जुन की भक्ति का मापदण्ड था। भीष्म में भी इतनी ही भक्ति थी। वे युद्ध के लिए एक पग भी आगे न बढ़े और न उन्होंने भगवान् के इस कार्य की कोई आलोचना की। वे शान्त भाव से भगवान् की रूप माधुरी का पान करते हुए उनके भव्य दर्शनों से तृप्त होते रहे। उन्होंने अपने आपको इस सीमा तक भगवान् की इच्छा के प्रति समर्पण कर दिया था। भगवान् से संयुक्त हो जाओ। उनकी उपस्थिति का अनुभव करो और उनकी

महिमा से आश्चर्यचकित होओ। उन्हें अस्वीकार्य किसी शब्द अथवा कार्य से भगवान को 'निराश' अथवा 'संकटग्रस्त' मत बनाओ। उन्हें किसी प्रकार की भी लेशमात्र चिन्ता या परेशानी का अवसर मत दो। य ।पि उन्हें तो ऐसी कोई निराशा, संकट चिन्ता या परेशानी कभी होती ही नहीं है फिर भी यदि आप उन्हें खूब प्यार करते हैं, तो आपको अपने स्वामी और प्रियपात्र के लिए अवश्य ही ऐसा लगेगा। जटायु को सदा अविरल राम का ध्यान लगा रहता था और राम के द्वारा वह पुरस्कृत भी हुआ; वे उसके अन्तिम क्षणों में वहाँ पहुँच गये और स्वयं अपने हाथों से उसका अंतिम संस्कार किया। इतना तो वे अपने पिता दशरथ के लिए भी न कर पाये। जब पाण्डवों की ओर से शान्ति समझौते की बात करके कौरवों की सभा से कृष्ण वापस आये तो सहदेव ने कहा, "भगवान् आप हमें क्षमा करें, मैं जानता था कि वे दुष्ट लोग आपकी बातों पर ध्यान नहीं देंगे, मेरी चलती तो मैं आपको वहाँ न जाने देता, परन्तु आप तो इतने दयालु थे!" भगवान आपको बचावेंगे, वे ही आपकी सेवा करेंगे और आपके पक्ष में रहेंगे; आपको केवल अपना चरित्र सुधारना और अन्तःकरण को पॉलिश करके रखना होगा जिससे उनका प्रतिबिम्ब वहाँ पड़ सके।

आपका आदर्श तो यह हो, "प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो" इसी का आप अनुसरण करें। चोल सम्राट श्रीरंगम् के गोपुरम् मंदिर की बड़ी ख्याति सुनकर दर्शन करने गये। छै माह तक अनेक बार वे अपना रथ सजा कर यात्रा पर निकले परन्तु हर बार गले में माला पहिने एक काषाय वस्त्रधारी साधु, जिसके मुख-मण्डल के चतुर्दिक एक तेजोवलय था, उनके रथ को रोक कर खड़ा हो जाता था। जब सम्राट उसका सम्मान करने के लिए रथ से नीचे उतरते तो वह उन्हें बातों में इतना उलझा लेता कि उसकी रोचक बातें सुनकर सम्राट अपनी यात्रा की बात ही भूल जाते थे और उन्हें अपने उद्देश्य की याद ही नहीं रहती थी।

एक दिन, जब वे श्रीरंगम् की यात्रा पर न जा सकने के कारण, उनकी महिमा का स्मरण कर अपनी आँखों में दिव्य रूप न भर पाने पर शोकाकुल हो विलाप कर रहे थे कि भगवान उनके समक्ष प्रकट हो गये, उन्होंने पूछा, "तुम क्यों शोक कर रहे हो ? मैं ही वह 'स्वामी' हूँ जो हर बार तुम्हारी यात्रा के प्रारम्भ के अवसर पर प्रकट होकर तुम से भेंट करता था। मुझे पहचानो मैं ही सबमें व्याप्त हूँ। यही श्रीरंगम् की वास्तविक तीर्थयात्रा है।" जिस किसी से भी आपकी भेंट हो जावे उसे श्रीरंगम् स्थित भगवान ही समझो, अपना स्वामी मानो। जो भी आपके पास आवे उसे निष्कलंक प्रेम प्रदान करो।

अपनी अपार जलराशि से महासागर क्या सेवा करता है ? एक भी मानव की प्यास वह नहीं शान्त कर पाता है। यदि एक कंजूस सौ वर्ष तक भी जीवित रहे तो उससे किसका भला होगा ? आज मेरा आप लोगों को यही संदेश है। क्रोध, शोक और पीड़ा को मत प्रकट करो, खुश रहो और अपने चारों ओर प्रसन्नता को बिखेरते रहो। मृदुता या मधुरता की भेंट ही भगवान् पसंद करते हैं।

एक बार एक मनुष्य था जिसने अपनी पुत्री की बारात के लिए एक वृद्ध हाथी को किराए पर लिया था। वैवाहिक कृत्य सम्पन्न होने के पश्चात जब जलूस घर लौटा, नववधू हौदा से नीचे उतरी, तत्क्षण हाथी ने एक अंगड़ाई लेकर प्राण त्याग दिया। हाथी के स्वामी को इस दुखद समाचार को पाकर बड़ा आघात लगा; उसने इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना को स्वाभाविक रूप में हुई मानने से इनकार कर दिया। उसने हठ किया कि ऐसा ही जीवित हाथी लौटाया जावे। इसी बात को लेकर वह न्यायालय में गया। जज ने कच्ची मिट्टी के कुछ बर्तन उस दरवाजे के पिछवाड़े रखवा दिये जिससे कि लोभी स्वामी को निकलने के लिए खोलना पड़ता था। जब उसने द्वार खोला तो सबके सब बर्तन टूट गये

जज ने आग्रह किया कि उसे उन्हीं बर्तनों को जैसे का तैसा साबित करना ही पड़ेगा। इस प्रकार उस व्यक्ति के मस्तिष्क में समझदारी का उदय कराया गया।

इस प्रकार की हठधर्मिता को निःशेष कर दो। कुछ समझदारी का प्रयोग करके इसका तीखापन सुधारो। समझदार और न्याय बुद्धि परायण बनो, सहानुभूति पूर्ण बनो। दूसरों के दृष्टिकोण का सम्मान करना सीखो। इन मामलों में दिन प्रति सुधार करते रहो। आज आपके लिए मेरा यही आशीर्वाद है।

प्रशान्ति निलयम्, मकर संक्रान्ति
उत्तरायण १४-१-६७

—०—

५८

एक ही ज्योति से जलाये गये दीपक

आपको एक अमरीकी बहिन अपने योग साधना और शिक्षण संबंधी कुछ अनुभवों को बतला रही थी। पूर्णत्व की प्राप्ति के दो राजपथ, प्रार्थना और ध्यान हैं। प्रार्थना से आप भगवान के चरणों में विनम्र भक्त की भांति प्रणत होते हैं ध्यान से भगवान प्रेरित होते हैं कि वे आप तक अवरोहण कर आपको प्रेरित करें और आपको उठाकर अपने तक पहुँचा दें। इससे आप और भगवान के बीच ऊंच नीच स्तर का भेदभाव समाप्त होने लगता है। बन्धन से मोक्ष की ओर जाने वाला यह प्रशस्त राजमार्ग है; यह ठीक है कि प्रार्थना द्वारा भी आप यही फल प्राप्त करते हैं। जिस स्वरूप को आपने ध्यान के निमित वरण किया है उसी की आकृति आपको अपने अंतःकरण में स्मृति द्वारा चित्रित कर बनाये रखना होता है। अथवा जैसाकि इन्द्रादेवी ने अभी कहा है और जैसा कि वे पश्चिम में अपने शिष्यों को सिखाती रही हैं। आप एक ज्योति, एक सीधी प्रकाश की रेखा, पर ध्यान को केन्द्रित कर सकते हैं। कल्पना करो कि उसका सभी दिशाओं में प्रसार हो रहा है, वह वृहत् से वृहत्तर होती जा रही है, सभी को आत्मसात् करती हुई आपके अन्दर ही अन्दर बढ़ रही है, अंत में यहाँ तक कि प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी न रह जावे। उस सर्वग्राही प्रकाश की महिमा में अंधकार की दुष्ट संतानें घृणा और ईर्ष्या अदृश्य हो जावेंगी। जानो कि वही प्रकाश सभी में है। यहाँ तक कि जिसे आप अपना भीषणतम प्रतिद्वन्दी मानते हैं उसके भी अंतःकरण में वही ज्योति विराजमान् है।

जब किसी मकान के देवालय की दीवाल पर आप मेरा चित्र देखते हो उस समय क्या आप अपने अन्दर एक श्रद्धा और संबंध की लहर उठती हुयी सो अनुभव नहीं करते हो ? आप उसे (प्रतिद्वन्दी को) किसी कारण से ना पसंद करते हो परन्तु यह चित्र आपको और उसकी अधिक समीप ला देता है चाहे आप और वह व्यवसायिक क्षेत्र में एक दूसरे के विरोधी ही क्यों न हो। इसी प्रकार समझो कि प्रत्येक के हृदय में उसी देव का चित्र विद्यमान है जिसकी आप अपने हृदय में पूजा करते हो। हम को मानो, और अपने मतभेदों और भ्रमों को व्यवस्थित कर सौम्यता की भावना उत्पन्न करो। सभी गड्ढों को पाट कर भाई-भाई की तरह तीर्थ यात्रा में मनसा, वाचा, कर्मण व्यवहार करो और इस कठिन मार्ग पर परस्पर साहस और प्रेरणा देते हुये आगे बढ़ो।

अथवा, यदि आप मुझे ध्यान का केन्द्र मानकर साधना करते हैं, सुखासन की स्थिति में बैठ जाओ। यह आसन न तो कष्टप्रद होता है न उछल कूद करने की स्थिति होती है। पहले कुछ अच्छे स्तोत्रों का पाठ कर मन को केन्द्रित करो और पवित्र धार्मिक कहानियों का चिन्तन करो जिससे सांसारिक विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियाँ शान्त, वशीभूत हो जावें तब जिह्वा पर भगवन्नाम रखते हुये अपने बुद्धि रूपी हाथ से, भाव की तूलिका से 'स्वामी' का चित्र चित्रित करो। धीरे-धीरे केशराशि से प्रारंभ करके मुखाकृति का निर्माण करो फिर ग्रीवा और नीचे की ओर कल्पना करते हुये, प्रत्येक की धारणा में समय देते हुये, चित्र पूर्ण करो। पुन: पैरों से प्रारंभ कर मस्तक और केशराशि तक ऊपर उत्तरोत्तर चित्र निर्माण करो। इस प्रकार एक क्षण के लिये भी अपने ध्यान को उस आकृति या रूप से विचलित न होने दो कि जिस स्वरूप का ध्यान करना आपको प्रिय है।

इस प्रक्रिया से मन भटक नहीं सकता। उदाहरण के लिये जब गणेश का स्वर्णिम चित्र बनाया जाता है; तो मस्तक स्वर्णिम, चरण स्वर्णिम, वस्त्र स्वर्णिम; सभी अंग प्रत्यंग स्वर्णिम बनाये जाते हैं। चित्र का प्रत्येक भाग दिव्य होता है। इस प्रकार गंभीर ध्यान द्वारा वह चित्र हृदय पटल पर अंकित किया जावे जिससे कि यह कागज पर चित्रित चित्र की तरह इसको छीलकर अथवा रबड़ से घिस कर मिटाया न जा सके। जिस स्थिति में आप चित्र की कल्पना करें उसे बदलें नहीं। यानी आज बैठे हुये स्वामी, कल खड़े हुये, परसों टहलते हुये रूप में, ऐसा परिवर्तन ठीक नहीं है। यदि 'बालकृष्ण' का नवनीत लिये हुये चित्र बनाते हो तो फिर 'गोपालकृष्ण' वंशीवाले का या "गोवर्धन-धारी" अथवा "गीतोपदेशक आचार्य कृष्ण" सारथी रूप में मत बदलो। एक रूप चुन लो वही सहायता पर्याप्त है।

वर-वधू के दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध होने के साक्षी बनाने के लिये निमंत्रण पत्र भेजे जाते हैं, बैंड ध्वनियाँ बजाते हैं, झंडियों से स्थान सजाये जाते हैं, आमंत्रितों को दावत दी जाती है और कई प्रकार की घोषणायें और शाखोच्चार किया जाता है। इसी प्रकार त्यौहार, उत्सव, पर्व, व्रत-उपवास, प्रतिज्ञायें और कृत्य तीर्थयात्रायें सभी भगवान् की कृपा के आह्वान के लिये किये जाते हैं कि आत्मा और परमात्मा का धार्मिक विवाह सम्पन्न हो जावे। मूल कृत्य तो बहुत साधारण ही होता है। आत्मा यह अनुभव करले कि वह भी परमात्मा का ही अंश है और अभी तक जिस भ्रम, माया जाल के कारण वह इस तथ्य को हृदयंगम नहीं कर पा रही थी वह भ्रम और भेद तो निर्मूल है, उसका अस्तित्व ही नहीं है। द्वित्व का भ्रम ही न रहे, सब अद्वैत ही है। यही समाधि की स्थिति होती है। इससे चेतना एक ही स्थिति में, शान्त, सौम्य, जागरूक रहती है उसमें किसी क्रिया उत्थान-पतन या ऊँच-नीच का भाव परिवर्तन नहीं आ पाता है।

इन्द्रादेवी आपको योगाभ्यास की शिक्षा देंगी। परन्तु मैं इस बात पर बहुत आग्रह करता हूँ कि शिक्षार्थी का मस्तिष्क निष्पाप और निर्मल रखने में बड़ी सावधानी रखी जावे। मन तो कैमरे की तरह होता है। इसके लेंस को जिस पदार्थ की ओर घुमाकर बटन दबा दोगे उसी पदार्थ का चित्र हृदय पटल पर अंकित हो जावेगा। इसलिये सदा सावधान रहो, इसे सदा सबसे पवित्र लक्ष्य भगवान् की ओर घुमाकर बटन दबाओ। जब पवित्र गंगा जी समीप हैं तो फिर पोखरे में क्यों लोटते हो? भगवान् की किसी भी रूप में आराधना करो और सदा पवित्र बने रहो। स्वयं समस्त विश्व में व्याप्त होने की भावना रक्खो और अपने ही मन में समस्त विश्व को प्रसन्न, पारिवारिक मिलन की सुखद स्थिति में, होने की कल्पना करो। ईर्ष्या, जिस से समस्त साधना की जीवनी शक्ति का शोषण होता रहता है, तभी आपके अन्दर प्रवेश कर सकती है यदि आप अपने पड़ोसी को भिन्न, भेदपूर्ण और अभद्र समझते हो। आप अपने हाथ को कोई घृणित वस्तु नहीं समझते क्यों कि वह आपका अपना अंग है। आपका पड़ोसी भी उतना आपका अपना आत्मीय है। एक ज्योति, जिसे हम भगवान् कहते हैं उससे प्रज्वलित किये गये हम सब पृथक-पृथक अस्तित्व वाले दीपक हैं। बर-गद के एक अत्यंत सूक्षबीज से विशालकाय दीर्घ-जीवी वट वृक्ष उगता है जिसमें उतनी ही क्षमता वाले खरबों बीज उत्पन्न होते हैं। भगवान् स्वयं ही अपनी महिमा को जानते हैं और कोई नहीं जान सका, न जान सकेगा। "जानहिं राम न सकहिं बखानी"। एक बीज ब्रह्म से ही यह अनेकों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते रहते हैं। जिसकी शाखा रूप में अनेकों द्वीप औ महाद्वीप, महासागर हैं, प्रत्येक जीव एक बीज है। इसी से तो कहा जाता है कि प्रत्येक जीव के हृदय में ईश्वर विराजमान है। फल के अन्दर बीज तो कड़ा रहता है; जब फल सड़ जाता है तब भी बीज नहीं सड़ता है। इसी प्रकार शरीर के परिवर्तन अथवा विकृत होने पर भी आत्मा अप्रभावित रहता है। मनुष्य निश्चित आयु लेकर आया

है और उसे उन कार्यों को करना है जिनका पुरस्कार मुक्ति या विश्वात्मा में लीन होना है; जैसे एक बिन्दु महासागर में लीन होता है। अपने इस लक्ष्य को याद रक्खो।

समय, उसकी नियमितता, ध्यान अथवा योगिक साधना में एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रतिदिन उसी समय अभ्यास किया करो। यदि किसी कारण, जैसे रेल यात्रा में, आप दैनिक चर्या का निर्वाह न कर सकें तो उस समय प्रशांति निलयम् का स्मरण करें कि वहाँ ध्यान में कैसा आनंद आता था, इसी पवित्र स्मरण से रोमांचकारी ध्यान की स्मृति आ जावेगी। उससे आपको प्रशांति निलयम् में ध्यान के समय प्राप्त होने वाले आनंद के समान ही आनंद की अनुभूति होगी। बाह्य जगत आन्तरिक जगत का ही प्रतिबिम्ब है इसे अच्छी तरह समझ लो। अंतर में बिम्ब है और बाह्य जगत ही उसका प्रतिबिम्ब है। भगवान् को अंतर में देखने की चेष्टा करो और उसी के प्रतिबिम्ब के रूप में बाह्य दृश्यमान जगत को समझो। इसी ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। "ज्ञानात् एवं तु कैवल्यम्।" यदि स्वामी को आपने अपने हृदय में नहीं बिठाया है तो घर भर की दीवालों पर स्वामी के चित्रों की भर मार करने से क्या लाभ है? आप कहते हैं कि स्वामी जी सर्वान्तर्यामी हैं वही तो प्रत्येक विचार, शब्द और कार्य की प्रेरणा देते हैं। फिर भी आप कहते हैं "स्वामी जी, क्या आप मेरे दुख को नहीं जानते हैं?" परन्तु आप यह नहीं कहते हैं, "स्वामी जी क्या आप मेरी गलतियों को नहीं जानते हैं?" इन बातों को आप मुझसे छिपाने का साहस करते हैं मानों कि मैं नहीं जानता हूँ। ऐसी भक्ति तो केवल प्रदर्शन मात्र होती है दूसरों को दिखाने भर को है। आपका द्वार चाहे जैसा सुन्दर चित्रित हो परंतु यदि अंदर से उसे दीमक ने खा लिया है तो वह पहले ही धक्के में भरभरा कर गिर पड़ेगा, वह दबाव या बोझ नहीं झेल सकेगा। अपने को अन्दर से सुदृढ़ कठोर और अडिग बनाये रहो, बाहरी लीपपोत की

आवश्यकता नहीं है। अपने व्यक्तित्व के गहन स्तरों तक भक्ति की जड़ों को प्रवेश करने दो।

जो साधक भक्ति मार्ग से भगवान् के महल तक जाता है उसे महल के द्वार पर विशालकाय माया-श्वान प्रहरी से भेंट करनी पड़ती है; जो उसे अन्दर प्रवेश पाने से रोकता है। वह असहाय होकर पुकारता है, "मालिक मुझे भी अन्दर ले जाइये"। इस प्रकार भगवान् अपनी दिव्य करुणा से द्रवित होकर आते हैं और माया-श्वान को एक ओर ठेलकर साधक को अपनी उपस्थिति में स्थायी रक्षण प्रदान करते हैं। जबकि ज्ञानी स्वयं स्वामी बन कर मायाश्वान को पराभूत कर देता है।

इन्द्रा देवी ने कहा कि जब तुम दीपक और ज्योति का ध्यान करते हो तो तुम्हें कल्पना दृष्टि से देखना चाहिए कि प्रकाश विकीर्ण होकर माता-पिता, सम्बन्धी और बाद में मित्रों, यहाँ तक कि शत्रुओं को भी आलोकित कर रहा है। आपको पार्थिव सम्बन्धों को, जो आकस्मिक हैं, स्मरण करने की आवश्यकता नहीं है। आप स्वयं विश्वास पूर्वक सोचें कि आपके अन्तर का प्रकाश आपके चारों ओर फैलकर, सभी को अपनी परिधि में लेता हुआ सभी देशों और क्षेत्रों के असंख्य दीपों को आलोकित कर रहा है। अपने अन्दर की अभेद्यता और कठोरता को समाप्त कर दो जोकि तुम्हारे अन्दर के प्रकाश को आवृत किये हुए और अवरुद्ध किये है। यही कार्य तो साधक के लिए सबसे कठिन परन्तु सबसे आवश्यक है। जब देह भ्रान्ति दूर हो जाती है तो आत्म ज्योति चमकने लगती है। जब आप स्वयं शरीर भावना में आबद्ध हैं; अपने को शरीर मान बैठे हो तो फिर आत्मा का प्रकाश कैसे हो ?

परमात्मा ही वास्तविकता है। सबसे प्रथम "एकोऽहंबहुस्यामि" का संकल्प उसमें उदय हुआ "मैं एक से अनेक हूँगा।" परिणामस्वरूप उसी एक से एक के द्वारा एक एक उत्पन्न होता गया; क्योंकि उस एक के अतिरिक्त अन्य कुछ था ही नहीं। यह शरीर मिट्टी के दीपक के समान है जिसमें पूर्व जन्म के संस्कारों का तेल भरा है और 'अहं' भाव ही बत्ती है। जब ज्ञान इसे प्रज्वलित कर देता है तो तेल शीघ्र समाप्त होने लगता है और प्रखर प्रकाश उत्तरोत्तर फैलने लगता है। अन्त में जब सभी तेल समाप्त हो जाता है तो बत्ती भी जलकर समाप्त हो जाती है। मिट्टी का दीपक तब फेंका जाकर धूलि का अंश बन जाता है।

जब तक आप आनन्द और शान्ति को स्वयं न प्राप्त करले, समाज सेवा के कार्यों को एक दक्ष कार्यकर्ता की भांति प्रारम्भ न करें। पहले स्वयं, फिर परोपकार। प्रेम भगवान है अतः प्रेम में मग्न रहो। लोग जंगली हाथियों को बन में देखने जाते है तब हाथी ही की सवारी पर जाते हैं। स्वयं हाथी पर आरूढ़ होकर भी अन्यत्र हाथी खोजे जाते हैं। इसी प्रकार मानव, जो स्वयं भी भगवान का निवास है, अपने बाहर प्रकृति के प्रसार में भगवान को खोजता फिरता है। अपने इष्ट देवता के सभी में दर्शन की चेष्टा करो। काली माता के मन्दिर में अर्पित दूध को जब एक बिल्ली आकर पीने लगी तो रामकृष्ण परमहंस उसे भगाया नहीं। उन्होंने उसको जगदम्बा के रूप में ही देखा। कुमार स्वामी ने जब माँ पार्वती के गाल पर उंगली के नाखून का निशान देखा तो उन्हें बड़ी ठेस लगी। जिज्ञासा और पूछने पर उनकी इष्ट देवी ने बतलाया वही तो स्वयं उत्पीड़क थे, क्योंकि खेल में अनजाने उन्होंने एक बिल्ली के खरोंचा मार दिया था क्योंकि वे यह नहीं जानते थे कि सभी जीव मां के विभिन्न रूप मात्र हैं। प्रत्येक जीव में साई है अतः किसी से भी घृणा न करो, कठोरता का व्यवहार न करो।

जो व्यवहार अपने प्रति नापसन्द करते हो वैसा दूसरों से न करो। क्योंकि वह "दूसरा" भी तुम्हीं हो।

यदि कोई तुम्हारे विरुद्ध भोंड़ी-भाषा का भी प्रयोग करता है तब भी तुम शान्त और मृदु बने रहो, कहो "मुझे आश्चर्य है कि मेरे व्यवहार से आप पर यह प्रभाव हुआ।" बदले में मुस्कराते रहो, उसकी बातों को हृदय में मत स्थान दो। स्मरण रक्खो कि ऐसे विचित्र लोगों से जो सदा झूठ में लिप्त रहते हैं, स्वामी जी भी नहीं बच पाते हैं। जब ऐसे गन्दे आरोपों को सुनो तो मुस्कराते हुए शान्त बने रहो। आपके उन्नतिशील ध्यान की यही पहिचान और परीक्षा होगी।

इस उच्चकोटि की उदासीनता से अपना मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य ठीक रक्खो। अपना शारीरिक स्वास्थ्य भी सुरक्षित रखो; क्योंकि अस्वस्थता साधक के मार्ग में एक महान बाधा और गन्दगी के समान है। शरीर उपेक्षा नहीं सहन करेगा, यदि यह रुग्ण है तो बार-बार ध्यान में उभरेगा। शरीर एक यान है, इन्द्रियाँ उसके विभिन्न कल पुर्जे हैं उसमें साधना का पेट्रोल डाले हुए चालू रखो। जब ध्यान को समाप्त करो तो एकाएक न उठ बैठो। तनाव को धीरे-धीरे शिथिल करो, जोड़ों को हल्के-हल्के मल लो। उसी स्थान पर शान्त बैठे हुए ध्यान के रोमांचकारी आह्लाद का स्मरण करते हुए "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" का उच्चारण करते हुए अन्दर शान्ति का अनुभव करो।

आज मंगलवार का शुभ दिन है। इसे मंगल इसीलिए कहा जाता है कि आज के ही दिन हनुमान् ने सीताजी को उनके उद्धार हेतु राम के आगमन का शुभ संदेश दिया था। सीताजी ने घोषित किया "आज के दिन को आगे से मंगल कहा जावेगा।" पुनः इसी दिन रावण जिसने इतना

आतंक फैला रक्खा था राम के द्वारा पराजित होकर मारा गया था। इसलिए मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आप लोग कुप्रवृत्तियों का दमन करके नाश करदें और साधना के मार्ग पर द्रुतगति से आगे बढ़ें।

प्रशान्ति निलयम्
२२-१-६७

—०—

५९

आकाश में उड़ान की लीक या रेखा

इन्द्रा देवी ने जो कुछ कहा है वह इस देश में हम लोगों के लिये नवीन नहीं है। वास्तव में उन्होंने योग के मौलिक सिद्धान्तों को यहीं सीखा और योग के द्वारा वे अनेक जीवों को पश्चिम में शान्ति और आनन्द प्राप्त करा रही हैं। उनका अभियान "अंधेरे में प्रकाश" ले जाने का सनातन धर्म का आदर्श है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि कोई किसी को एकाग्रता का प्रशिक्षण दे, क्योंकि मानव का एकाग्रता के बिना तो कोई कार्य सम्पन्न ही नहीं होता। किसी कार को चलाना, कुम्हार के चाक पर बर्तनों का बनाना, कपड़े में किसी डिजायन को बनावट में उतारना, किसी खेत को घास रहित करना—इन सभी कार्यों में चित्त की एकाग्रता आपेक्षित होती है। जीवन-पथ में अनेक उतार चढ़ाव आते हैं, उनको पार करना, अपने भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले परिचितों से वार्तालाप करना इत्यादि कार्यों में सावधानी अथवा एकाग्रता की बड़ी आवश्यकता होती है। इन्द्रियों को लगाम लगाकर रखना होता है जिससे वे कार्यों में न तो विक्षेप उत्पन्न करें और न अपनी ओर मन को घसीटें; मन इधर-उधर भटका-भटका न फिरे; व्यक्ति के अभीष्ट पदार्थों को मन नाना प्रकार के लुभावने या भयंकर रूपों में न प्रस्तुत करे। ऐसा करने से एकाग्रता के अभ्यासों में सफलता प्राप्त होती है।

योग चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम है। मानव चेतना सरोवर की लहरों को शान्त करना है। व्यक्ति की जागरूकता की शान्त गहराई को कोई क्षोभ, उत्तेजना या भाव उद्वेलित न करे, ऊपर की सतह

भी शान्त लहरों से रहित रहे । इस प्रकार की शान्त साम्यावस्था ही ज्ञान में अधिष्ठित हो जाने की पहिचान होती है । साधना रूपी औषधि को 'विचार' रूपी अनुपान और पथ्य के साथ सेवन करने से मानव मन की चन्चलता और उद्वेग सभी बीमारियाँ निर्मूल हो जाती हैं ।

इन्द्रा देवी के द्वारा बतलायी हुई "प्रदीप्त दीपक ज्योति" ध्यान पद्धति को इस प्रकार समझना चाहिए । प्रथम आप कल्पना करें कि आप आलोक में हैं, फिर धीरे-धीरे अनुभव करें कि प्रकाश आप में ही है; आप स्वयं प्रकाश हैं इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । परन्तु अपेक्षा कृत सरल बात तो यह है कि जो प्रकाश आप अपने अंदर में देखते हो उसे बाह्य जगत पर प्रक्षिप्त करके अधिकाधिक आलोकित रूप में, विस्तृत क्षेत्र को भगवान् की महिमा से संपृक्त देखते हुये अभ्यास को बढ़ाओ । वही महिमा, आलोक आपके अन्दर भी है । जब आप यह अनुभव करने लगेंगे कि आप प्रकाश ही हैं तो आप भारहीन हो जावेंगे; हर वस्तु प्रकाशित होगी । इसीलिये प्रशान्ति पताका पर आत्म-ज्योति को हृदय कमल से विकीर्ण होने वाले तेज पुंज के रूप में अंकित किया गया है । जैसे कि ज्ञान रूपी सूर्य की प्रथम किरण के संस्पर्श से हृदय-कमल खिल रहा होता है ।

अन्धकार को पराभूत करने के लिए आप प्रकाश के अतिरिक्त अन्य साधनों का प्रयोग भी कर सकते हैं । सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परात्पर पूर्ण ब्रह्म की चेतना को विकसित करने से भी कल्याण होता है । उस विश्वात्मा का कोई रूप, जैसे कृष्ण जिनके शरीर का वर्ण विशाल महासागर या नीलाकाश के समान है, ले सकते हैं । उनके रूप का ध्यान करो, अपने मस्तिष्क में इस चित्र की कल्पना करो, धीरे-धीरे चित्रण की प्रक्रिया में समय और ध्यान की प्रगाढ़ता में अधिकाधिक वृद्धि करते जाओ । (प्रारंभिक दिनों में आपका ध्यान दूर-दूर भटका फिरेगा

परन्तु हिम्मत न हारना)—मोरपक्ष, कस्तूरी तिलक, भौहें, नेत्र, नासिका, नासाग्र मोती, मुंह, ओंठ, दांत, और वंशी—इस प्रकार तो आप अपने मानस-पट पर भगवान् के चित्रण में घंटों लगा सकते हैं। अपने भावों और विचारों को पवित्र और महान बनाने का यह उत्तम उपाय है। इस ध्यान में लगाया गया प्रत्येक क्षण आपको मुक्ति-पुरी के समीप एक पग पहुँचा देगा जोकि बन्धनों से रहित स्वतंत्रता की दिव्य नगरी है।

आप जन्मदात्री जननी को भूलकर खिलाने वाली धाय से ही अनुरक्त हो रहे हो। तुम्हारी वास्तविक मां 'साईं' है जिसमें आपके लिए अहंभाव रहित प्यार है। इसी के लिए तो रामकृष्ण मां, मां, चिल्लाकर मां की कृपा के लिए रोते थे। प्रत्येक के अन्दर एक अव्यक्त प्रेरणा होती है जो उसे उसके वास्तविक स्वरूप, अंतिमतत्व, से एकाकार हो जाने के लिए उकसाती रहती है। जैसे कि प्रवाह वेग से प्रभावित होकर नदी की धारा निरंतर सागर की ओर बहती रहती है। घड़ी का पेन्डुलम दाहिनी ओर से बाईं ओर तभी जावेगा जब कि घड़ी में चाबी लगी होगी। इसी प्रकार यदि आप मन को उत्साहित और प्रेरित करते रहेंगे तो वह भी उचित से अनुचित, विनोद से पीड़ा, सुकृत से विकृत की ओर प्रधावित रहेगा। मन रूपी घड़ी में इच्छा कामना रूपी चाबी लगाना बन्द करो, यह भी अपनी चाल-बाजियों से हरकतों से रुक जावेगा।

अपने कष्टों के आंसुओं की गणना मत करो। अपने शोकों के प्रवाह को मत वेगवान बनाओ। उन्हें अपने मन से इसी प्रकार निकल जाने दो जैसे आकाश में पक्षी उड़ जाते हैं और आकाश में उनके उड़ान की कोई रेखा नहीं बनती है; अथवा सिनेमा के पट पर बाढ़ों के, अग्नि ज्वाल के चित्र बनते रहते हैं, परन्तु पट अप्रभावित रहता है न तो वह गीला होता है न झुलसता है।

जब निराशा आ घेरे तो हिम्मत मत हारो। कदाचित आप इसे असत्य समझें अथवा इसका साक्षात्कार आपको अपेक्षाकृत दुखद स्थिति में ला पटके। कुछ भी हो इसे भगवद् इच्छा समझो और भगवान् जानते हैं कि आपके कल्याण के लिए कौनसा विधान सर्वोत्तम रहेगा। निराशा और संकट तो केले के छिलके की तरह है। वे तो फल के स्वाद और मधुरता को सुरक्षित रखने का आवरण है। इस महान विचार को रखते हुए अपने मन को आत्मा के स्वरूप और महिमा से युक्त करो। इसी से आप सावधान और साहसी बने रहेंगे। आत्मज्ञान के कोड़े से इन्द्रियों और मन की उछल कूद को रोक दो।

प्रतिदिन ध्यान के समय आत्मतत्व पर मन को एकाग्र किया करो। इसी दैनिक चर्या को निष्ठा और नियमपूर्वक दृढ़ता से पालन करते रहो वही समय, स्थान और अवधि क्रम, आसन सभी कुछ अपरिवर्तित रहे। तभी उपद्रवकारी विचारों और भावनाओं का शमन किया जा सकेगा। जैसाकि रामकृष्ण कहा करते थे, "जहां-तहां कुछ फीट की गहराई तक खोदने से क्या लाभ ? और फिर क्या शिकायत से कराहना कि पानी नहीं निकला। विश्वासपूर्वक एक ही स्थान पर लगातार खोदते जाओ। अंतस्तल में प्रवाहित जलधार तक खोदने वाले वर्मा की नोक चली जावे। खोदने से उत्पन्न ध्वनि—राम, राम, राम लगातार सुनाई पड़ती रहे और आपको पुरस्कार स्वरूप आत्मदर्शन या साक्षात्कार प्राप्त होगा। "राम" उस जड़ी का नाम है; यदि आप जड़ी का नाम ही ओठों से दोहराते रहें तो व्याधिनाश नहीं होगा। यह तो तब होता है जब औषधि को अन्दर तक लिया जाता है तभी व्याधि बोरिया-बिस्तर बांध कर प्रस्थान कर जाती है। शरीर पर झटकों का, वैसा ही मन पर जाप का, प्रभाव पड़ता है। झटकों से शरीर चैतन्य और सबल होता है; जाप से मन सामर्थ्यवान होता है और उससे कुविचार रूप रोगाणु निकल जाते हैं। हृदय रूपी पात्र में, बुद्धि की मथानी से, साधनारूपी

मंथन क्रिया करने से भगवद्दर्शन (या आत्मसाक्षात्कार) रूप नवनीत प्राप्त होता है।

यदि आप यह कहें कि जप, ध्यान के लिए समय नहीं मिलता है तो मैं यही कहूंगा यह सब काहिली के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जिस महान कार्य के लिए मानव इस दुनियां में जन्म लेता है उसके लिए निर्धारित समय पर क्षुद्र कार्य किस प्रकार अपना अधिकार जताते हैं? प्रतिदिन इस प्रकार जग जाओ कि मानों मृत्यु से उठे हो और कहो, "अब इस प्रकार मेरा जन्म हुआ। मुझसे मृदुभाषण होवे, सभी के प्रति मेरा व्यवहार शान्त और सुखदायक होवे; मुझसे ऐसे कार्य बन पड़ें जिससे सभी को आनन्द प्राप्त होवे। और मेरे मन में सभी के लिए कल्याणकारी विचार उत्पन्न होवें। हे प्रभु! आपकी सेवा से मेरा आज का दिन सफल होवे"—अपनी शय्या पर ही इस प्रकार प्रार्थना करो पूर्व इसके कि आप अपनी दैनिकचर्या प्रारम्भ करें। इस प्रतिज्ञा को पूरे दिन भर स्मरण रक्खो। रात्रि में सोने से पूर्व बैठ कर दिनभर के अनुभवों की समीक्षा कर जाओ कि तुम्हारे किसी विचार, शब्द या कार्य से किसी को कष्ट या दुख तो नहीं पहुँचा है। तब प्रार्थना करो, "अब मैं मर कर आपकी गोद में गिर रहा हूँ। मेरी भूलों को क्षमा कीजिए और मुझे अपनी गोद में प्यार से स्थान दीजिए।" कुछ भी हो निद्रा तो मृत्यु की लघु भगिनी ही है।

ऐसा स्वभाव डालो कि प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में जग जाया करो। अर्थात् ३ बजे प्रातः शय्या पर उठ बैठो। प्रारम्भ में आपको एक अलार्म घड़ी की सहायता लेनी पड़ सकती है। परन्तु शीघ्र ही ध्यान की प्रेरणा से आप उठने लगेंगे। ध्यान के लिए बैठने से पूर्व स्नान की कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि स्नान के कृत्य से सभी इन्द्रियाँ चैतन्य हो जाती हैं और इस प्रकार वे विभिन्न दिशाओं में आपको आकर्षित कर

ध्यान की सफलता में बाधा डाल सकतीं हैं। नियमितता, हार्दिकता और निरन्तर क्रिया से आपको सफलता प्राप्त होगी।

प्रशान्ति निलयम्
२२-१-६७

—०—

६०

प्रत्येक मुखरित स्वर भगवन्नाम यश गायन है

यह भारतवष वास्तव में एक पुण्य देश है। यहाँ के ऋषियों ने शान्त जीवन के साधनों का अन्वेषण किया है, मानव की अनेक जातियों में आनन्दमय जीवन, शोक रहित जीवन, के सिद्धांत और आचरण निर्धारित किए हैं। उन्होंने आत्मविद्या को प्रकाशित किया जिसका प्रमुख तत्व 'प्रेम' है। जहाँ प्रेम होता है वहीं भगवान् का निवास है। प्रेम सहानुभूति, दान, श्रद्धा, प्यार, बलिदान, त्याग के रूप में व्यक्त होता है। ईश्वर ही प्रेम है, प्रेममय, प्रेमस्वरूप, प्रेमभास्कर रूप में साक्षात्कार करने वालों ने भगवान् का वर्णन किया है। इसलिए भगवान को प्रेम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति को 'परम प्रेम स्वरूपा' कह कर वर्णन किया गया है वह प्रेम की सर्वोच्च स्थिति होती है। यह अन्धा प्रेम नहीं है, प्रेम अन्धा होना भी नहीं चाहिए।

मैं तो अटल विश्वास की आधारशिला के लिए पहले गहन जिज्ञासा का समर्थन करता हूँ। जिज्ञासा से प्रेम के निर्झर को सशक्त बनाया जाता है। क्या ईश्वर से बढ़कर कोई अन्य वस्तु प्रेम करने योग्य हो सकती है ? क्योंकि भगवान ही तो सौंदर्य, शक्ति, महिमा, यज्ञ, तेज और बुद्धि के पूर्णत्व की अभिव्यक्ति है। भगवान के प्रति प्रेम रखने से मनुष्य में भगवान के ऐश्वर्य के सभी प्रकारों के प्रति, उनकी कृपा के प्रति, उनकी महिमा के प्रति और बहुरूपता के प्रति प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न हो जाते हैं। रामकृष्ण ने एक पुष्प में भगवान के सौंदर्य के

दर्शन किए, उन्हें सर्वत्र ही भगवान के अनन्त ऐश्वर्य का दर्शन प्राप्त हुआ और प्रत्येक मुख से उसी की महिमा का गान सुनाई दिया; उन्हीं की वंशी ध्वनि। यहाँ तक कि कलुष और दुष्टता को भी प्यार किया जाता है क्योंकि ईश्वर ने उन्हें भी अपनी सष्टि में स्थान दिया है।

सच्चे भारतीय के हृदय में यह प्रेम होना आवश्यक है, यही तो उसे प्रत्येक कार्य में प्रेरणा और मार्गदर्शन देता है। भारत माता की संतान की पहिचान ही उसमें 'भगवद् रति' का होना है। उसका शाब्दिक अर्थ ही ऐसा होना है। इस पुण्य भूमि के महान पुरुष और स्त्रियों ने अपने जीवन को क्षुद्र पार्थिव ऐश्वर्यों और सुखों की प्राप्ति के लिए नहीं नष्ट किया है। बल्कि इनको 'राम भक्ति के बाधक' कहकर त्याग और उपेक्षा की है। उन्होंने गद्दियों और राज्यों का त्याग किया है, युद्ध का त्याग किया। युद्ध-भूमि पर दर्शन शास्त्रों को सीखा और आध्यात्मिक गुरुओं की खोज में विश्व का कोना-कोना छान डाला। वे तो उन मनुष्यों की तरह जो अपना नाम धाम भी भूल चुके हों, ऋषियों से पूछते थे कि वे कौन हैं, क्यों यहाँ, और कहाँ से आये हैं; यह जिज्ञासा आत्मसाक्षात्कार न प्राप्त होने तक चलती रहती। वे सभी से यह नहीं पूछते थे, जैसा कि आजकल लोग पूछते हैं "आप कौन हैं, कहाँ से आए हैं, क्या नाम है ?" परन्तु वे केवल मनीषियों से ही पूछते थे, "कृपया बतलाइये मैं कौन हूँ।" पूर्ण सन्तोष और शान्ति प्राप्त करने का यही मार्ग है।

"मैं" ही तो वह आधारशिला है जिस पर आप अपने दैवत्व और धर्म-महल का निर्माण करना चाहते हैं। यह सत्य तो कर्म और उपासना के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। इसके लिए कर्म के फल का समर्पण, भक्ति के आवश्यक कार्य हैं उनसे स्पष्टता और पवित्रता प्राप्त होती है। जिस प्रकार आग और पानी के संयोग से भाप

उत्पन्न होकर एक इंजिन को संचालित करती है, बड़ी-बड़ी रेलगाड़ियों और जहाजों को आगे घसीट कर ले चलती हैं; कर्म और उपासना ज्ञान को उत्पन्न करते हैं जो मानव जीवन को शान्ति और आनन्द की पटरियों पर निर्विघ्नता से चलाता है। कर्म और उपासना से वैराग्य उत्पन्न होता है। वे मानव को वास्तविक मूल्यांकन की क्षमता प्रदान करते हैं। उन्हें भान होता है कि पार्थिव पदार्थों से मन को हटा लेने से ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है; न कि इन्द्रियों को भौतिक सुखोपयोग के विषाक्त वन में चरने देने से।

जब आप हानि अथवा संकट प्रतीत होने वाली स्थिति से निराश हो रहे हो तो स्वयं को नामस्मरण की क्रिया में संलग्न कर दो। भगवन्नाम के जप और कीर्तन से, स्मरण से आपको सान्त्वना साहस और वास्तविक स्थिति का बोध प्राप्त होंगे। याद रखिए सन्तों ने कितने-कितने कष्टों को बड़े उत्साह और भगवान की देन मानकर स्वागत करते हुए भोगा है। आप भी शान्त होकर तूफानों से निकलो। लोगों ने उन्हें पागल कहा, उनकी खिल्ली उड़ाई, परन्तु वे जानते थे कि वे तो भगवान् के कृपा-धाम में हैं न कि किसी मानव पागलखाने में। उन्हें अपने भाग्य पर पूर्ण विश्वास था, उन्हें भगवान पर पूर्ण विश्वास था, जब विपत्तियां उनकी आकाँक्षा को दबाना चाहती थीं तो वे इन विपत्तियों पर हंस देते रहे क्योंकि वे अपने अन्तरात्मा की शक्ति, गुप्त शक्ति से परिचित थे।

अब प्रशान्ति निलयम स्थित वेदशास्त्र पाठशाला के छात्र आपके सम्मुख इस रँगमंच पर एक नाटक का अभिनय करेंगे। ऐसे विशाल जनसमूह के समक्ष शायद ही उन्होंने अभिनय किया होगा। उनका नाटक आध्यात्मिक शिक्षाओं से संपृक्त होगा। यह नाटक भक्ति-ज्ञान और विश्वास के राज्य का, सरल मृदु-संगीत और वार्तालाप द्वारा

प्रदर्शन करता है। वे राधा की आन्तरिक भक्ति, जो कि अज्ञानियों और विकृत मस्तिष्क वालों के कुरुचिपूर्ण दुष्टता से प्रेरित आलोचना की लक्ष्य रही है, का प्रदर्शन करेंगे जो आध्यात्मिक प्रयास आपको करना है उसके संबंध में भी यह छात्र बहुत कुछ प्रकाश डालेंगे। यदि आपके समवयस्क उन बातों को कहते तो संभवत: आप उनका विरोध करते। परन्तु जब नन्हें-नन्हें बच्चे अपनी तोतली बोली में उन शिक्षाओं को कहेंगे तो अवश्य ही आप सराहना करेंगे और उन्हें हृदयंगम करेंगे। जिन पाठों के लिए इस नाटक को अभिनीत किया जा रहा है उन्हें आप स्वीकार करें। अभिनय की त्रुटियों पर ध्यान न दें। धैर्यपूर्वक शान्ति से सुनिये। सहानुभूतिपूर्वक देखिए। यदि आप किसी प्रकार उपेक्षा अथवा अन्यमनस्कता का भाव प्रदर्शित करेंगे तो बच्चे घबड़ा सकते हैं। श्रद्धाभाव से अभिनय में बैठकर मेरी कृपा के इस प्रकार का आनन्द लीजिये।

माटुंगा बम्बई
१९-३-६७

—०—

६१

जो कुंजी ऋषियों ने प्राप्त की

हाथियों का एक यूथपति, जो अपने दल का अधिपति था और वन में आनन्द पूर्वक रहता था, जब पकड़ कर पालतू बनाया गया तो वह उसी वन में लकड़ी ढोने के कार्य में लगा दिया और अपने पूर्व जीवन के शौर्य, आधिपत्य और शान को भूल गया। आज भारत की भी वही दशा है। वह भी अपने आध्यात्मिक वैभव और आधिपत्य को भूल गया है। वह भौतिक पदार्थों के अप्रयोजनीय भंडार का संचय करने और बन्धन में पड़े रहने को ही परम सौभाग्य मान बैठा है। मनुष्य को शेर की तरह रहना चाहिए जो चाहे भूखों मरने की नौबत आ जावे घास नहीं खायेगा। कुछ काम तो ऐसे होते हैं जिन्हें मनुष्य को किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए चाहे कितना ही प्रलोभन अथवा उत्तेजना दी जावे। तभी उसका मानव नाम सार्थक होता है। आधुनिक वर्षों में इस देश में जहां पहले त्याग और सेवा का युगलपथ जीवन के पूर्णत्व का द्योतक था वहां अब लोभ और स्वार्थ का बोल-बाला है। यह तो समस्त मानव जाति के लिये दुखान्तकारी घटना है।

मैं इस बात को आज इतना जोर देकर इसलिए कह रहा हूँ कि इस विशाल जन समूह में अधिकांश स्कूल कालेजों के छात्र हैं। इन बीमारियों से यहाँ के छात्र वर्ग पर भी भीषण दुष्प्रभाव पड़ रहा है। छात्र तो राष्ट्र की नींव होते हैं। वे लोग राष्ट्र के आदर्श को पोषण, देने तथा स्थिति बनाये रखने वाली जड़ों की तरह हैं। अतः इनकी वृद्धि श्रद्धा और विनम्रता के वातावरण में होनी चाहिए, नकि दलबन्दी

और उत्तेजक मनोभावों के धधकते वातावरण में। अग्रणी लोगों को घर में, ग्रामों में, नगरों में, संस्थाओं में और नागरिक प्रशासन तथा विधान मण्डलों और समग्र जन-जीवन में ऐसे उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करके उसे बनाये रखना चाहिए। चूंकि तरुण सदैव बड़ों के अनुकरण को शीघ्र अपना लेते हैं अतः उन्हें उत्तम आदर्श वाला उदाहरण अपने चरित्र द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। जो लोग स्कूलों और कालेजों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करते हैं उनमें राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए, हमारी राष्ट्रीय संस्कृति तो विशुद्ध आत्मभावपरक विश्व संस्कृति या अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति है। तभी हमारे छात्र भारत के सपूत और सुपुत्रियाँ हो सकेंगे। यह उत्तरदायित्व विधायकों और शासकों का है जिनके प्रतिनिधि स्वरूप कुछ लोग इसी प्लेट फार्म (मंच) पर विराजमान हैं। इसी से मैं यह सब कह रहा हूँ।

अब तो छात्र लोगों ने भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल सोचना और शंका करना प्रारम्भ कर दिया है। "ईश्वर है, कि नहीं? नैतिकता की क्या आवश्यकता है? त्याग और बलिदान की कोई उपयोगिता भी है?" यह तो घर, विद्यालय, समाज और नेतृत्व के संयुक्त प्रभाव का फल है। यदि इस पर विजय प्राप्त कर ली जाती है, तो इस देश का छात्र वर्ग इस राष्ट्र को भविष्य में अभूतपूर्व उच्चता के शिखर पर आसीन कर देगा।

एक उत्तम चरित्र प्रज्वलित दीपक की तरह शांति और आनन्द के मार्ग को यात्रियों के लिए आलोकित करता है। यह उन ऋषियों, तपस्वियों के उपदेशों का सार है जिन्होंने मानवता के कल्याण की भावना से स्वयं कष्टमय जीवन बिता कर जन-कल्याण की कुंजी को खोजा था। इन प्राचीन अन्वेषणकर्ताओं की शिक्षाओं से औरंगज़ेब के बन्धु दाराशिकोह जैसे मनुष्य और ज़ेबुन्निसा बेगम जैसी रमणियां भी

आकर्षित हुई थीं। दारा ने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया और उन्हें मानव की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाप्रसून मानकर सम्मानित और पूजित किया। ज़ेबुन्निसा भी उसी संस्कृति की उत्साही छात्रा थी। एक दिन स्नान के बाद केशों को स्वच्छ और व्यवस्थित करते समय उसकी दासी उसे दर्पण दिखा रही थी। उसके फिसलने से शीशा गिर कर टूट गया। दासी मरणतुल्य भय से राजकुमारी के निकट काँपने लगी कि अब न जाने उसकी स्वामिनी उसे क्या दण्ड देगी। परन्तु राजकुमारी ने उसे यह कहकर सान्त्वना दी कि "शीशे की हानि की चिन्ता क्यों करती हो ? इन सब प्रसाधनों और अलंकारों से युक्त यह शरीर ही नाशवान् है।" जैसे एक पक्षी दूर पर पड़े मांस खण्ड को तो देखकर उस पर गिरता है परन्तु बहेलिये के जाल को नहीं देख पाता है, उसी प्रकार मानव भी भौतिक पदार्थों के आकर्षण से प्रभावित होता है परन्तु उससे उत्पन्न होने वाले बन्धनों को नहीं विचारता है। मानव चन्द्रतल के खड्ढो, ज्वालामुखियों के छिद्रों को नापने का प्रयत्न करता है परन्तु अपने हृदय में स्थित छिद्रों की उपेक्षा करता है, फिर उसे शांति कैसे और क्यों प्राप्त होवे ? मनुष्य अपने वित्त धन (धन) की रक्षा के लिए तो बड़े-बड़े कष्टों को सह लेता है परंतु अपने च्त्ति (अन्तरात्मा) की रक्षा के लिए रंचमात्र शक्ति नहीं लगाता है।

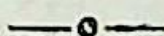
आप कहते हैं "देखने से ही विश्वास करना होता है। मैं तो ईश्वर को देखूंगा तभी विश्वास करूँगा।" परंतु क्या सब पदार्थ देखने, सुनने, चखने और स्पर्श करने से उतने ही वास्तविक और सत्य प्रतीत होते हैं, जैसे कि ऊपर से मालूम होते हैं ? क्या आँख देखती है ? आपकी आँख खुली होती है और एक दिशा में लगी होने पर भी जब आपका चित्त कहीं और लगा होता है वह उधर का दृश्य नहीं देख पाती है आपको उधर की कुछ भी प्रतीति नहीं होती है। आप वस्तुओं

को आत्मा के प्रकाश में देखते हो। आप प्रेम करते हैं क्योंकि आत्मा प्रेममय होती है, आप ज़ानते हो क्योंकि आत्मा ज्ञानमय है। आपको शाँति प्राप्त होती है क्योंकि आत्मा ही शाँति का आधार है। वेदों में वर्णित मंत्रों का अथवा रहस्यपूर्ण वाक्यांशों का सूक्ष्म प्रभाव इंद्रियों के द्वारा नहीं देखा-सुना जा सकता है। इसे तो अंतःकरण या आंतरिक चेतना द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है।

इन मंत्रों के स्वरों और ध्वनि में भावों और प्रवृत्तियों को बदल देने की शक्ति होती है। 'मंत्र' का शाब्दिक अर्थ ही 'रक्षा करने वाला' होता है जबकि मन से उसका संयोग हो जावे। मंत्र जाप मन में चलता रहने से आप व्यर्थ की उद्देश्य हीन बात-चीत पर निन्दा और गप-शप से बच सकते हैं। बात सदा कोमलता से, बिना घुमाव-फिराव के, स्पष्टतः करनी चाहिए। वेद शास्त्रों के इन अमूल्य उपदेशों को छात्र हृदय में अंकित करलें। मुझे प्रसन्नता है कि सत्य साई सेवा समिति द्वारा इस ज्ञान को उन लोगों में प्रसारित किया जा रहा है। वृद्ध और सयाने लोगों द्वारा तो श्रेष्ठतर और कुछ नहीं किया जा सकता है। उनके विचार और कार्य-प्रणाली दृढ़ हो चुके होते हैं उन्हें मोड़ना और नये सांचे में ढालना आसान नहीं है। नवयुवकों और नवयुवतियों को हृदय और मस्तिष्क के उत्तम गुणों के विकास का प्रयत्न करना ही चाहिए। उन्हें आध्यात्मिक बैठकों, सत्संग में अवश्य भाग लेना चाहिए और अपना पराया कल्याण करना चाहिए। पूजा के इस स्वरूप को तो आप सरलता से, सम्पूर्ण हार्दिकता से, ग्रहण कर सकते हैं। आज ही से क्यों न प्रारम्भ कर दो। जब आपके माता-पिता आपके कर्मों से दुखी हों तो आप कैसे आशा करते हैं कि भगवान् आपकी प्रार्थना सुनेगा और स्वीकृत भी करेगा? महाराष्ट्र तो अनेक सन्तों का क्षेत्र रहा है जिन्होंने अपने उपदेशों से भक्ति की धारा प्रवाहित की है। इसी के कारण यह भारतवर्ष का हृदय है। उनके

उपदेशों को हृदयंगम कर तदनुकूल आचरण करते हुए महाराष्ट्र की सुयोग्य संतान बनो।

सरदार पटेल क्रीड़ागण
बम्बई २१-३-६७



६१

प्रभावशाली महावाक्य

ऐसे युग में जबकि घृणा की काली घटाएँ एक राज्य से दूसरे राज्य तक फैलती जा रही हैं और मानवों के पारस्परिक सम्बन्ध विषाक्त होते जा रहे हैं केवल आध्यात्मिक अनुशासन और आध्यात्मिक आलोक ही लोगों के लिए प्रकाश-स्तंभ का कार्य कर सकते हैं। लोग असत्य, अन्याय और हिंसा की बाढ़ में असहाय सा अनुभव कर रहे हैं। उनकी रक्षा सत्य धर्म, प्रेम और शान्ति के चतुस्तरीय शरण-गृह में हो सकती है। मानव में इनका उद्रेक धार्मिक शास्त्रों और पुराणों में वर्णित ऋषियों की कहानियों से, जिनमें उनकी भगवत् जिज्ञासा, प्रयास और आत्म साक्षात्कार का वर्णन है, हो सकती है। इनके अध्ययन से जो उत्साह जगे उसे फिर स्टोव पर उबलते हुए दूध की तरह मत बैठ जाने दो। दूध तो दो मिनट भाग उठकर, ठंडा होते ही पुनः नीचे बैठ जाता है। प्रवचन सुनकर जहाँ घर पहुँचे कि प्रवचन से उत्पन्न उत्साह ठंडा पड़ने लगता है और शीघ्र ही पुरानी दिनचर्या पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इसे पुराण-वैराग्य कहते हैं; पुराण के सुनने से वैराग्य का एक झोंका आया और शीघ्र ही उपेक्षा के क्षेत्र में निकल जाता है। साधक को तो और अधिक गंभीर प्रभाव के लिए आकांक्षा करनी चाहिए। महावाक्यों को सुनने, दृश्यमान अनुभवों को प्राप्त करने का प्रभाव सीधे हृदय पर अंकित हो जाना चाहिए। सभी नियमों, संयमों और अनुशासन, निर्देशन विधि-निषेधों का एक यही उद्देश्य होता है कि जीवात्मा और परमात्मा एकाकार हो जावें। शास्त्र, यम, नियम, प्राणायाम्, प्रत्याहार, आसन, ध्यान, धारण और समाधि को निर्धारित

करते हैं। इनके अतिरिक्त जप, श्रवण, मनन, निदिध्यासन की योजना भी इसी उद्देश्य से की जाती है। आध्यात्मिक साधना तो माया रूपी सिंह से द्वंद-युद्ध करने की होती है; अथवा माया रूपी अग्नि से खिलवाड़ के समान है। दुख, सुख हथौड़े की उन चोटों के समान हैं जिनसे लोहे के तख्ते को कूट-पीट कर उपयोगी जलयान का निर्माण किया जाता है जो खोखला हो और माया-रूपी समुद्र के पार ले जा सकने वाला हो।

समुद्र के खारे पानी में शहद ही क्यों न घोल दो, मिश्रण अपेय, अरुचिकर ही रहता है। इसी प्रकार भगवान् की अमृतमयी कृपा को ऐंद्रिक भोगेच्छाओं से मत संयुक्त करो। प्रज्ञाकी, निर्मल ऋजुतायुक्त बुद्धि, को विकसित करो। तब आप उस एक के जो इस नानात्व में प्रतिभासित है, दर्शन कर सकोगे। वेद कहते हैं "प्रज्ञानम् ब्रह्म" निर्मल विवेचनकारी उत्तम मेधा ही ब्रह्म है। यह वही है जिससे बुद्धि संयोग करती है, जिसके द्वारा इन्द्रियाँ आपस में सहयोग और सामंजस्य करके काम चलाऊ व्यवस्था बनाये रखती हैं। भौतिक शरीर और 'प्रज्ञा', बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा संबंधित होकर कार्य करते हैं जब मानव और ईश्वर सहयोग करते हैं जैसे कि ऋणात्मक और घनात्मक विद्युत तारों का संयोग या संपर्क होता है तो 'प्रज्ञा' धारा प्रवाहित होने लगती है। इस प्रज्ञा के ही द्वारा आप में "अहं ब्रह्मास्मि" की धारणा उत्पन्न होती है और अहं तथा ब्रह्म द्वित्व की प्रतीति जाती रहती है। जैसे शरबत में जल और शकर घुलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार अहं भी ब्रह्म में लय होकर केवल अद्वैत ब्रह्म की सत्ता रहती है।

सामवेद का एक महान् उद्घोष है—"तत्त्वमसि" 'वह तू है' अर्थात् नाम रूप से परे तुम्हीं हो जो कि इस दयनीय प्रकार से भिन्नत्व या पृथकत्व का अनुभव कर रहे हो और नाम-रूप के बन्धन में पड़कर, जो

कि अस्थाई व्यक्तित्व बोधक विशेषण है, अपने को अन्यों से पृथक एक अलग सत्ता मान बैठे हो। इस महान सत्य पर विचार करने से एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है। इससे और इसकी मधुरता से अपरिचित रहने के कारण मनुष्य उस महान अवसर को खो देता है। क्योंकि प्रत्येक को ही इस दुनियाँ में इसे प्राप्त करने का अधिकार है प्रशान्ति विद्वान् महासभा इस सन्देश को विश्व के घर घर पहुँचाने का उद्देश्य रखती है। न केवल ये बल्कि गीता, रामायण, महाभारत और भगवत् इन सब में भगवान् का सन्देश भरा है। इन्हें भी प्रत्येक मनुष्य के द्वार तक पहुँचा देना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को इनका आस्वादन कराना चाहिये जिससे उसका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य उन्नत हो, शक्ति, साहस, विश्वास में वृद्धि हो, क्योंकि यह ऐसी वस्तु है कि जिसे एक बार भी आप प्राप्त कर पावे तो फिर खो नहीं सकते हैं, वह है ज्ञान। एक ऐसी भी वस्तु है जिसे यदि एक बार आपने खो दिया वो पुनः कभी प्राप्त नहीं कर सकते वह है माया। एक तीसरी वस्तु है जिसे आप कभी भी नहीं पा सकते क्योंकि वह आप स्वयं हो। उसे आप कभी खो भी नहीं सकते हो क्योंकि वह तो आप खुद हैं। वह ब्रह्म है इसीलिये न।

अपनी बुद्धि का प्रयोग करो। आप विश्व के नानात्व के सही अर्थों को, उसके तात्पर्य को समझ जावेंगे। विज्ञान बड़ी शीघ्रता से इसी निष्कर्ष की ओर आ रहा है कि विश्व एक ही तत्व है। केवल बुद्धि को पूर्वाग्रहों और चतुरता से रहित होकर निर्मल होना है। एक संन्यासी ने एक रीछ पाला था। उसे सदा अपने साथ इधर उधर घूमने भी ले जाता था। एक दिन घने जंगल में उसने रीछ को अपनी रक्षा के लिये नियुक्त करके स्वयं प्रगाढ़ निद्रा में सो गया। रीछ ने देखा कि एक मक्खी स्वामी जी की नाक पर बैठ गयी। उसने उसे बार-बार उड़ाया। परन्तु वह बार-बार पुनः आकर बैठ जाती थी। उस मक्खी की उद्दण्डता पर

रीछ को क्रोध आ गया उसने एक बड़ा सा पत्थर उठाकर नाक पर बैठी मक्खी पर दे मारा। यह बताना बेकार है कि मक्खी तो साफ उड़ गयी परन्तु स्वामी की हत्या हो गई। व्यक्ति को विचारों के साथ विवेक भी रखना चाहिये।

वक्ता ने, जो कि प्रेजिडेन्ट हैं, उन महात्माओं और धार्मिक व्यक्तियों के उद्धरण दिये हैं जिन्हें समस्त विश्व के लिये समदृष्टि प्राप्त थी। परन्तु सर्व साधारण की बुद्धि के लिये उनके रहस्य और अर्थों को समझ पाना कठिन है। प्रत्येक का अपना उद्देश्य, कार्य-क्षेत्र, स्तर, कार्यप्रणाली और भाव भिन्न था। उन्होंने कहा है कि सत्य साई बाबा वह सब जानते हैं जो सब में घटित हो रहा है। ऐसा इसलिये है कि मैं तो सभी में हूँ, "ईश्वरासर्वभूतानाम् हृदि देशेतिष्ठति" शास्त्र यही कहते हैं। एक ही विद्युत्धारा से सभी बल्ब आलोकित हो रहे हैं; कुछ अल्प वाल्टेज के हैं जबकि कुछ का वाल्टेज ऊंचा है। जीवात्मा और परमात्मा में कोई तात्त्विक और मौलिक अन्तर नहीं होता है। उपाधियों या बल्वों की शक्ति में अन्तर है जो उनके अन्दर के तन्तुओं तथा उनकी शक्ति के ऊपर निर्भर करता है। गाय घास खाती है, शूकर विष्ठा खाता है, सिंह मांस खाता है। यह उपाधि के कारण भिन्नता है, इनमें आपस में कोई तुलना या प्रतियोगिता कैसे की जा सकती है।

एक हठयोगी ने चमत्कारों की अनेक सिद्धियाँ प्राप्त करली थीं, उसने देखाकि एक अन्य व्यक्ति के पास लोगों की अनेकों की संख्या में भीड़ उपस्थित रहती है वह इसके कारण को नहीं समझ पाता था। उस व्यक्ति की जो विशेषतायें थीं वह किसी चतुराई अथवा चमत्कारिक सिद्धि का प्रभाव नहीं था। उसमें शान्ति, सत्य और प्रेम की प्रचुर मात्रा थी। यदि किसी व्यक्ति के उद्वेग और मनोविकार उसके वशीभूत हो जाते हैं तो भगवान् उसकी आध्यात्मिक उन्नति का, भगवान् की ओर अग्रसर होने

का दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। अन्यथा उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसके लिये आपको दुखी होने की आवश्यकता नहीं है कि आपका कोई 'नाथ' या अभिभावक नहीं है। भगवान् सदा मनुष्य के साथ ही रहता है, उसके अन्दर उसकी आत्मा के रूप में रहता है और उसके बाहर व्यक्ति के साथी और पथप्रदर्शक के रूप में रहता है।

सरदार पटेल स्टेडियम, बम्बई
२४-३-६७

—o—

६२

आपका आवश्यक प्रोत्साहन

इस संसार में तीन तत्त्व हैं जिनसे मनुष्य का वास्ता पड़ता है, परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। इनमें से परमात्मा की मनुष्य को उपासना करनी है और प्रकृति में ही उसका साक्षात्कार करना है। उन सभी पदार्थों और क्रियाओं और भावों का नाम प्रकृति है जो मनुष्य के मस्तिष्क पर भगवान् की महिमा का प्रभाव डालते हैं, उसकी महानता दिव्यता, ऐश्वर्य को प्रकट करते हैं। इसे माया भी कहा जाता है। माया भगवान् की अभिव्यक्ति और विस्तार है जो भगवान् के वैभव, महिमा, शौर्य को व्यक्त भी करती हैं और जो उनका आवरण, छिपाने का साधन भी बनी हुई है। मनुष्य को माया का उपयोग सीखना चाहिए वह माया को अपने सुख और बन्धन के लिये न प्रयोग करें जिससे कि वह भगवान् को ही भूल जावे जो कि प्राप्त होने वाले आनन्द का दाता है। बल्कि माया को उस महान् बुद्धि के लिये जाने और समझे कि जिससे यह विश्व संचालित होता है। एक वृक्ष कैसे उगता है अथवा पुष्प कैसे खिलता है, मनुष्य अंतरिक्ष और तारों के संबंध कैसे जान पाता है सिवाय इसके कि इससे उसे आनन्द प्राप्त होता है और उसके हृदय में स्थित अन्तर्यामी भगवान् उसे जैसी बुद्धि देते हैं उसी के अनुसार वह क्रिया करता है ? प्रकृति के समीप प्रार्थना का भाव लेकर नम्रता और श्रद्धा से जाओ तो आपका भविष्य सुरक्षित है। सीता जो कि प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती थी रावण उन्हें पाने को लालायित था और चोरी से ले भी गया। परन्तु उसकी स्वार्थ भावना और लोभवृत्ति से उसका विनाश हो गया। यदि वह प्रकृति के परे भगवान् राम के लिये लालायित होता तो उसे शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती।

आज के युग की सभी पीड़ाओं और कष्टों का मूल मानव के भ्रमित मूल्यांकन के कारण है। प्रथम वस्तुओं को प्रथम स्थान देना ही चाहिये। पहले आतमा, फिर परोपकार। आजकल लोग पहले स्वयं उस मार्ग पर न चला कर दूसरों को आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर सहायता करना प्रारंभ कर देते हैं। इसीलिये गुरु और शिष्य दोनों को पतन के गहरे गर्त में गिरना पड़ता है। पहले अपनी सेवा तो करो, अर्थात् जानो कि तुम कौन हो, कहाँ जा रहे हो, कहाँ से आये हो और क्यों यात्री बने हो। शास्त्रों से इन प्रश्नों का उत्तर जान कर, ऋषियों से और आत्मानुभव से सीखकर मनुष्य दूसरों का पथ-प्रदर्शन करने का साहस कर सकता है। लोगों में भी सद्असद् का विवेचन करने की शिक्षा नहीं होती है। वे स्थायी, अस्थायी, उचित अनुचित, कल्याणकारी और अकल्याणकारी की पहिचान नहीं कर पाते हैं। वे सभी प्राचीन परम्पराओं को, प्राचीन शास्त्रों को, कृत्यों को, केवल प्राचीन होने के कारण व्यर्थ और त्याज्य मानने लगते हैं। वे नई परम्पराओं को, नये फैशन को केवल नवीन होने के नाते अपनाते हैं। समय ही श्रेष्ठ परीक्षक होता है। जो वस्तुयें शताब्दियों की आलोचना के बाद भी जीवित है, जो विदेशी संस्कृतियों के प्रहारों के बाद भी बनी हुई हैं, विचित्र कल्पनाओं के आकर्षण के बावजूद अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं उनमें अवश्य ही कुछ सार सत्य और माननीय है।

मन का तो निरन्तर परिवर्तन शीलता के प्रति आकर्षित होने का स्वभाव होता है। इसीलिये गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम किसी न किसी 'योग' के शीर्षक के साथ दिया गया है। "विषाद योग" से प्रारम्भ करके "मोक्ष संन्यासयोग" अनेक प्रकार के योगों की चर्चा की गयी है। 'योग' शब्द का प्रयोग "चित्त-वृत्ति-निरोध" के महत्त्व को प्रदर्शित करता है। मानसिक क्षोभों की शान्ति मुख्य आधार है। मानसरोवर का अर्थात् मानस का सरोवर का, जल कभी स्थिर नहीं रह पाता है।

वायु का हल्के से हल्का झोंका भी कुछ तरंगे उठा ही देता है। जिनकी शान्ति पर्याप्त समय के पश्चात् ही हो पाती है। मन भी बाह्य पदार्थों के आकर्षण और उनके द्वारा अंतःकरण पर पड़ने वाले प्रभाव से हलचल में आ जाता है। या तो घृणा से भर कर दूर भागता है अथवा उन पदार्थों की ओर आकर्षित होता है। इससे मानसिक प्रशान्ति भंग होती है। द्वित्व हीतो शोक और दुःख का सदा रहने वाला आधार है। आनन्द का अस्थाई अभाव ही शोक होता है; और आनन्द दुख का अस्थायी अभाव होता है। दोनों ही शाश्वत नहीं होते हैं। सिवाय उस दशा के कि जब आध्यात्मिक साधना के द्वारा आनन्द प्राप्त होता है। तो वह स्थायी होता है।

योग की यह स्थिति कैसे प्राप्त हो ? इसी की शिक्षा तो गीता में दी गयी है। गीता का प्रथम शब्द 'धर्म' और अंतिम शब्द 'मम', मेरा है। जो इसका अध्ययन करता है उसे 'मम धर्म' 'मेरा कर्तव्य', 'मेरे प्रति मेरा उत्तरदायित्व' की शिक्षा प्राप्त होती है। और वह क्या है ? योग, यह योग कैसे प्राप्त होवे ? प्रत्येक मनसा, शब्द और क्रिया को भगवान् के प्रति अर्पण करना, अपनी स्वेच्छा का त्याग कर भगवदेच्छा का वरण करना, भगवान् की प्रेरणा से ही कार्य में संलग्न होना, सभी कार्यों को प्रभु के निर्देशन से सम्पन्न करना और सभी परिणामों, फलों को प्रभु के अर्पण कर देना। "सभी उचित अनुचित को त्याग कर अपनी इच्छा को मेरे अर्पण कर दो। मैं तुम्हें पतन से बचाऊंगा मैं शोक से तुम्हारी रक्षा करूंगा" यही आश्वासन गीता देती है और इसी प्रोत्साहन की आपको आवश्यकता भी है।

ऐन्द्रिक भोगों से पूर्ण विरक्ति होने पर ही शरणागत हुआ जा सकता है साथ ही वास्तविक और मिथ्या का भी विवेक होना चाहिये। अध्यवसायपूर्वक साधना के द्वारा 'मैं' और 'मेरा' का लेश भी शेष न

रहे। आध्यात्मिक अनुशासन में प्रमुख नामस्मरण है। क्योंकि जब आप भगवान् के नामों की महिमा, अर्थ, गुणों और भगवत्कृपा, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता का स्मरण करते हो तो क्रिया के निरंतर होने के फलस्वरूप व्यक्ति के चैतन्य में इनका प्रभाव अंकित हो जाता है और उसका निजी व्यक्तित्व और क्षमता दैवी गुणों से आवृत, अभिभूत हो जाती है। अतः विनम्रता बढ़ती जाती है और शरणागति संभव हो जाती है, वह भी सरलता से। मानव जीवन का उद्देश्य ही यह है कि भगवान् का साक्षात्कार करे और उसकी महिमा में लीन हो जावे। अन्य सभी प्रकार की विजय इसके सामने तुच्छ हैं, निरर्थक हैं। वेदों ने मनुष्य का अंतिम लक्ष्य यही घोषित किया है। उपनिषद इसी मार्ग का दिग्दर्शन कराते हैं। गीता इसे आलोकित करती है। सन्तों और ऋषियों ने इसकी महानता का विशद वर्णन किया है। जब इस मार्ग से लोग भटक जाते हैं, रेगिस्तानों और जंगलों में खोजते हैं तो अवतार का प्रादुर्भाव होता है।

जामनगर
२७-३-६७

—०—

६३

विश्व का प्रशिक्षण विद्यालय

जब-जब धर्म और नैतिकता का ह्रास होता है और अनाचार अनैतिकता का उत्कर्ष होता है मैं यहाँ प्रकट होता हूँ क्योंकि विश्व की आध्यात्मिक स्थिति को यथावत् बनाये रखने का आदि संकल्प विश्व के सृजन से पूर्व ही उससे संयुक्त है। मैं अपनी निर्गुण स्थिति से पृथक होकर नाम रूप धारण कर समय और परिस्थितियों के अनुसार उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए आता हूँ। जब आसुरी शक्तियाँ दैवी शक्ति को पराभूत करने की स्थिति तक उठ जाती हैं तो दैवी शक्तियों की विजय और पुनरस्थापना के हेतु मुझे आना ही पड़ता है। भगवान् सभी से एक ही मार्ग का अनुसरण करने का आग्रह नहीं करते हैं और न एक अनुशासन का पालन करवाना चाहते हैं। उसके भवन के अनेकों द्वार हैं। मुख्य द्वार 'मोहक्षय' का है, आसक्ति रहित होने का है। कृष्ण ने अर्जुन को इसी की प्राप्ति के लिए उत्साहित किया था। अर्जुन तो हिम्मत छोड़ बैठे थे, उनके हाथ से गांडीव भी गिर पड़ा था क्योंकि वे एक भ्रामक आसक्ति के वशीभूत हो चुके थे।

कृष्ण ने अर्जुन को प्रत्यक्ष करा दिया था कि वे सम्बन्धी लोग जिन्हें अर्जुन प्रेम करते थे और उनका बध करने से भयभीत हो रहे थे, वे गुरुजन जिन्हें अर्जुन जीवित रखना चाहते थे अथवा वे लोग जिन्हें वह घृणा करते थे, ये सभी लोग उसी भगवान् के हाथ में यंत्रवत् हैं, उसके हाथ की कठपुतलियाँ हैं। इससे उनका मोह दूर हो

गया और वे पुनः कर्तव्यारूढ़ हो गये और उनमें फल के प्रति कोई आसक्ति न रही।

इससे वे इतिहास की सर्वोत्तम शिक्षा के उपयुक्त पात्र हो गये। यह उपदेश आस्तिक-नास्तिक सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है, क्योंकि दोनों को ही कर्म के फल की आकांक्षा बनी रहती है। इससे उनकी उत्सुकता प्रभावित होती है और निराश होने से दोहरा दुख होता है। स्थायी आनन्द की प्राप्ति के लिए आस्तिक-नास्तिक दोनों के लिए 'मोह क्षय' आवश्यक होता है। इस लोक में अर्जित संपत्ति से दोनों ही रंचमात्र अपने साथ नहीं ले जा पाते हैं। केवल प्यार और बलिदान से ही मानवों की कृतज्ञता जीती जा सकती है। गज़नी में सुलतान महमूद ने अपार धन सम्पत्ति का भंडार संग्रह किया था और देशों से ला-लाकर लूट का माल एकत्रित किया था, वह ज्वर से पीड़ित होकर चल बसा। उसने अपने मंत्रियों को मरने के पूर्व ही आदेश दे दिया था कि जब उसके शव को दफनाने कब्रिस्तान ले जाया जाये तो उसके हाथ बाहर निकाल दिये जावें ताकि लोग देख सकें कि वह परलोक को खाली हाथ ही जा रहा है। यद्यपि उसने संपत्ति का एक अविश्वसनीय विशाल भंडार एकत्रित किया था पर साथ कुछ भी न ले जा सका। लोग देख लें कि भौतिक वस्तुओं से प्राप्त आनन्द अस्थाई होता है। "हर कोई जान ले कि इस दुनियां का वैभव और संपत्ति विस्तार कितने क्षणस्थाई और विनाशवान् होते हैं।" यही उसके अंतिम क्षणों के शब्द और भाव थे। जब जीवन वृक्ष की जड़ें आत्मिक वास्तविकता में गहराई तक, जोकि शाश्वत अपरिवर्तनशील और स्थाई तत्व है जिसका एक अणु व्यक्ति में प्रकाशित हुआ है, जाती हैं; तो वह वृक्ष पल्लवित होकर प्रेम-मय सेवा के सौरभयुक्त पुष्प खिलाता है और तब उसमें सभी के लिए कल्याणकारी मधुर गुणकारी फल उत्पन्न होते हैं जो कि हर ग्रास में अलौकिक आनन्द देते हैं।

इस का अर्थ यह नहीं है कि आप घर-द्वार छोड़ कर जंगलों की ओर भागें। जंगल के एकान्त और नीरवता में पहुँच कर आपका घर-द्वार से पीछा छूट ही जावेगा इसका क्या भरोसा या गारंटी है? क्योंकि यदि आपका मन पार्थिव सुखों और आकर्षणों से चिपका हुआ है, कामनाओं के झोंको में झूल रहा है, तो आप अपने में और उन आसक्ति वाले पदार्थों में कुछ मीलों का अंतर बढ़ा लेने से भी नहीं बच सकते। आपका शरीर जंगल की कुटियों में और मन बाजारों में भटक रहा होगा। इसी प्रकार यदि आप बाजार के सबसे अधिक भीड़ वाले चौराहे पर हों तब भी साधना के उ म अभ्यास से अपने हृदय में एक शान्त नीरव स्थान की सृष्टि कर सकते हैं। मन चाहे तो शान्ति कुटीर का निर्माण कर सकता है अथवा आपको, सांसारिकता में जकड़े रख सकता है। यही बन्धन और मोक्ष की स्थितियों में डालने वाला होता है। यदि आपकी नौका में, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के छिद्र नहीं हैं तो आप इस भवसागर से सुरक्षित पार चले जा सकते हैं; अन्यथा इन्हीं छिद्रों से सांसारिकता का जल नौका में भर जाने से आप नाव के साथ ही जल समाधि पा जावेंगे, उस गहराई में कि जहां से उद्धार होना अत्यन्त दुस्तर कार्य हो जावेगा। सभी छिद्रों को बंद कर दो जिससे नौका में जल न भरने पावे। फिर आपको भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर तो संसार की प्रत्येक परिस्थिति और अवसर आपको इन्द्रियों के प्रशिक्षण का एक अवसर होगा। आपके प्रेम का प्रसार बढ़ता जावेगा, अनुभवों में गंभीरता आवेगी और वैराग्य की नूतन शक्ति प्राप्ति होती रहेगी।

'दुनियाँ कैसी पागल और मूर्ख है' इसे जानने के लिए आपको समाचार पत्र पढ़ने होते हैं। साहसिकता कितनी व्यर्थ होती है, वैभव कैसा क्षणभंगुर होता है, और अन्य ऐसी ही सूचनायें पढ़ कर आप इसे एक ओर रख देते हैं और वह आपके लिए 'निस्वाद-रद्दी, हो जाती

है। इसी प्रकार केवल एक बार जीवन धारण करो, ऐसे जियो कि बार-बार जन्म न लेना पड़े। दुनियाँ की आसक्ति और प्रेम में इतना मत बंधों कि झूठी आसक्ति के कारण ही आपको यहाँ के सुख-दुख के भ्रामक जाल में पुनः फँसना पड़े। इससे कुछ फासले पर ही रहो। इसके बंधनों से दूर रहते हुए समझो यह तो सब नाटक चल रहा है जिसका निर्देशक भगवान् है, यदि इस ज्ञान को विस्मृत करोगे तो भय है कि आप इसकी जकड़ से कस लिये जावेंगे। इस दुनिया को सेवा, बलिदान, हृदय विस्तार और भावों को शुद्धि प्रदान करने वाला प्रशिक्षण विद्यालय मानकर व्यवहार करो। इसकी यही उपयोगिता है भजन गाते हुए गीतों के अर्थों और भगवान् के प्रत्येक नाम रूप के सन्देशों का भी मनन करते रहो। 'राम' शब्द के साथ ही आप में धर्म का उद्रेक हो। उन्होंने धर्म को अपने आचरण और व्यवहार में साकार मूर्तिमान किया था। 'राधा' कहते ही आपको मन बुद्धि से परे उस अलौकिक दिव्य प्रेम का भाव होवे जो कि गोपियों में प्रधान होने से उनके हृदय में हिलोरें मार रहा था। 'शिव' कहने से आपको उस चरम बलिदान का स्मरण होवे जिससे प्रेरित होकर उन्होंने सुरासुर मानव जीवधारियों के प्रति करुणा के कारण हलाहल का पान किया था। जिनसे कृपा की शीतलता की अजस्र धारा गंगा के रूप में निरंतर प्रवाहित होती रहती है और द्वितीय के चन्द्र से ज्ञान का आलोक विकीर्ण होता रहता है। समय का एक क्षण भी निरुद्देश्य रहकर मत खोओ, प्रतिक्षण भजन चलता रहे। भजन अथवा नामस्मरण का उद्देश्य जान लो और सम्पूर्ण हार्दिकता से इसमें लग जाओ। जीवन की जो अवधि आपको निर्धारित की गयी है उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करो।

भावनगर
२८-३-६७

६४

दैवी शरीर के अंग-प्रत्यंग

सेवा में लगे होने के कारण ही तो आप सेवक कहे जाते हो। यह सेवा वास्तव में है क्या ? क्या भक्ति-भाव को प्रकट करने के ढंग को सेवा कहते हैं, अथवा भक्ति के परिणाम को सेवा कहते हैं ? अथवा भक्ति का कारण सेवा है, जिस प्रकार भक्ति व्यक्त की जाती है, अथवा विकसित की जाती है ? इनमें से यह कुछ नहीं है। न तो यह पूर्णतया भक्ति से रहित ही है और न भक्ति का परिणाम है। यह तो भक्ति का सार रूप है, भक्त का स्वभाव उसकी प्रत्येक श्वाँस ही सेवा है। भक्त जानता है कि सभी प्राणी उसी परम पिता की सन्तानें हैं, इसी विश्वास के कारण यह सेवा भाव भक्त में उत्पन्न होता है। भक्त के लिए सभी प्राणी भगवान् की वेदी के समान हैं जहाँ भगवान् स्थापित हैं और सर्वत्र उसी का निवास स्थान है।

सेवा को आध्यात्मिक अनुशासन की, साधना की सर्वश्रेष्ठ विधि समझना चाहिए यह आपको महान सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस विशाल जन समूह की सेवा आपके लिए कई दिनों के जप, ध्यान से अधिक आध्यात्मिक कल्याण करने वाली है। परन्तु यह मत सोचो कि तुम सेवा के द्वारा संसार का. पुनर्निर्माण, सुधार अथवा नवनिर्माण कर सकोगे। चाहे तुम कर सको अथवा न कर सको इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। सेवा का वास्तविक मूल्य, जो स्पष्ट और दिखाई देनें वाला है वह है तुम्हारा निज का सुधार। सेवा को साधना के रूप में स्वीकार करो। तभी आप विनम्र और प्रसन्न रहोगे। इस विचार से इधर-उधर चहल

कदमी न करो कि तुम दूसरों को सुधार रहे हो। स्वयं को ही सुधारो। अपने जप ध्यान को विस्तार देकर सेवा को स्वीकारो, अर्थात् जप और ध्यान को व्यावहारिक रूप प्रदान करो। जो भगवान् दीन-दुखियों को प्यार करता है उस भगवान् का चिन्तन करते हुए कौन ऐसा होगा जो दीन दुखियों से घिरा होने पर पत्थर की तरह कठोर या बर्फ की तरह ठंडे हृदय का बना रहेगा।

किवाड़ें बन्द कर कमरे में बैठकर किये जाने वाले जप को मैं कोई महत्त्व नहीं प्रदान करता हूँ; हाथों से माला के दानों को आगे पीछे करने से क्या फल मिलता है? जिस ध्यान से आप दूसरों की करुण वेदनापूर्ण पुकार को न सुन सकें उसकी मैं सराहना नहीं करूँगा। ध्यान से हृदय पथरा न जावे। बल्कि नवनीत के समान कोमल हो जावे जोकि हल्की आंच से ही द्रवित हो जाता है। सभी के हृदयों में स्थित ब्रह्म के दर्शन का उद्योग ही सेवा है, यह महान अवसर है। राम तो सीता का उद्धार अकेले ही कर सकते थे, परन्तु उन्होंने बानर सेना को सेवा का अवसर प्रदान किया क्योंकि वह तो इसी आकांक्षा को लेकर अवतरित देव समुदाय ही था।

जब आप सेवक बनकर खड़े होते हो, ऐसा आप ने इन दिनों अनुभव किया होगा, आपका वास्ता सभी प्रकार के लोगों से पड़ता है, कुछेक में सहयोग की भावना बड़ी प्रबल होती है, कुछ सदा विरोध ही करते रहते हैं, कुछ बाधक बन कर सामने आते हैं, कुछ तर्क करने लगते हैं, कुछ धमकाने पर उतर आते हैं, कुछ लोग आपके अधिकार को चुनौती देते हैं अथवा आपके उद्देश्य पर ही सन्देह करने लगते हैं। ऐसे लोगों से सम्पर्क करने में सीखने का अवसर प्राप्त होता है। वे आपके चरित्र में दृढ़ता लाते हैं और आपको निन्दा स्तुति का समान भाव से स्वागत करना सिखाते हैं। अच्छा मैं पूछता हूँ, आपको

सबसे अधिक आकांक्षा किस एक वस्तु के पाने की है ? प्रभु-कृपा, है न यही ? भगवान् का अनुग्रह, ठीक है न ? जहाँ तक आपके बचनों और कार्यों की संगति धर्म और सत्य से है, जब तक आपकी वाणी प्रेम की मधुरता से मधुर और शान्ति से आलोकित है, आपको किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। आपको प्रचुर मात्रा में प्रभु कृपा प्राप्त है।

लोगों की, दर्शन पाने में, सहायता करना, जिस दर्शन की तीव्र उत्कंठा लेकर वे यहाँ आये है, एक प्रशंसनीय सेवा कार्य है। आप स्वयं सेवक हो अतः आपको इतने बहुसंख्यक लोगों को दर्शन प्राप्त करने की व्यवस्था में सहायता करना है, न कि लोगों को दर्शनों से वंचित करना। तुम्हें देखना है कि लोग कहीं एकत्रित न होने पावें, आगे बढ़ने के लिए धक्का-मुक्की न करें और न वृद्धों तथा दुर्बलों को कष्ट दें। व्यवस्था करो कि ऐसे लोग शान्त पंक्ति बद्ध होकर बैठें जिससे कि उन्हें मेरे आने पर पूरा दर्शन प्राप्त होवे। आपको दुर्बलों, बीमारों और वृद्ध जनों को निरापद ढंग से प्रवेश पाने और बैठ जाने में सहायता करना है। स्वयं दर्शनों के लिए उतावले होकर मत भागो। अपने को सौंपे गये कर्तव्य का वहीं पर पालन करने के लिए तत्पर रहो। क्रोध को न आने दो। शिष्ट और मृदुभाषी बने रहो, चाहे जितना कोई आपको उत्तेजना दे पर आप शान्त रहें। आपके मुखमण्डल पर मन्द मुस्कान सदा बनी रहे। मेरे और दर्शनार्थियों के बीच में बाधा बन कर मत खड़े होओ। वे चाहे आपको दुखी होकर एक ओर धक्का ही देकर क्यों न हटादें फिर भी आपको बदला लेने का कोई अधिकार नहीं है। आपको मुस्कराते हुए क्षमायाचना ही करनी है, एक नम्र विवशता, यदि कोई हो गयी हो, नमस्ते के साथ हाथ जोड़कर कह दो।

मैं जानता हूँ कि आप लोगों में से कुछ को, जिन्हें बाहरी फाटक,

या भजन मंडप, बगीचे में, अथवा जूते उतारने के स्थान पर नियुक्त किया गया है, अवश्य ही उन लोगों से जिन्हें अन्दर बंगले में नियुक्त किया गया है, ईर्ष्या हो रही होगी। मुझे आप लोगों में से कुछ को कार्यवश नगर भेजना पड़ता है और वे भजन आदि के कार्यक्रम से वंचित रह जाते हैं। इतना मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि जिन्हें मेरी सन्निकटता में कार्य करना पड़ता है उसके लिए कोई विशेष श्रेणी की कृपा नहीं होती है और जिन्हें दूर रहकर फाटक पर सेवा कार्य करना पड़ता है वे भी उपेक्षित नहीं होते हैं। वास्तव में मेरी "निकटता" या "दूरी" भौगोलिक निकटता या दूरी से भिन्न है, इसे मीलों और गजों में नहीं नापा जा सकता है। मेरी निकटता भौतिक निकटता से प्राप्त भी नहीं होती। चाहे आप मुझ से सटकर ही क्यों न आसीन हों फिर भी आप मुझसे दूर, अत्यन्त दूर हो सकते हैं और दूर होने पर भी आप मेरे अत्यंत निकट और प्रिय हो सकते हैं। यदि आप सत्य, धर्म, प्रेम और शान्ति के मार्ग पर हैं तो आप मेरे समीप हैं, मैं आपके साथ हूँ। मुझ तक ले जाने वाले पथ की दूरी इन्हीं के 'मीलों' में नापी जाती है।

जब आपके नेत्र किसी आम्र वृक्ष पर पके फल को देखते हैं, जिह्वा को सुस्वादु की स्मृति आ जाती है, मन में उसे प्राप्त करने की उत्कंठा होती है। पीठ झुकती है, कंधे उठते हैं, और हाथ किसी पत्थर को खोजते हैं, उंगलियां उसे पकड़ती हैं और भुजा उस पत्थर को फल की ओर फेंकती हैं। जब फल नीचे आ जाता है तो हाथ उठाकर मुंह तक खाने को पहुंचाता है। दांत उसे काटते हैं; गला रस को नीचे पेट तक पहुंचाता है आमाशय में जाकर उस रस का परिपाक होकर जीवनदायक रस बनकर उपर्युक्त सभी अंगों को समस्त शरीर को पौष्टिकता और मन को तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार जब आप लोग सहयोग करके

मुझे आनन्द प्रदान करते हैं, तो इसका पुरस्कार कृपा के रूप में अनि-
वार्य रूप से आपको पहुँचेगा ही ।

आप सभी मेरे अंग हो जिनका मैं पोषण करता हूँ । आप सभी
से मिलकर "साई शरीर" निर्मित होता है । आप चाहे जहाँ हो साई
अवश्य ही आपको जीवनाधार रस संबल पहुँचावेगा । आपका
कार्य कुछ भी हो; शर्त केवल यही है कि आप साई को वह वस्तु दीजिए
जो उन्हें सुस्वादु और अभीप्सित हो; जैसे सद्गुण, विश्वास, अनुशासन,
विनम्रता आदि । इसके लिए शिकायत न हो कि मुझे तो पैरों का काम
दिया जिन्हें ऊबड़ खाबड़ और कंटकाकीर्ण भूमि पर, कठोर पत्थरों पर
चलना होता है । साई शरीर के अभिन्न अंग, किसी भी अंग के रूप में
सही, होकर प्रसन्नता का अनुभव करते रहो । और इस बात के
लिए भी गर्व न करो कि आपको 'मस्तिष्क' का कार्य मिला है, अतः
आप समस्त शरीर के ऊपरी खण्ड में स्थित हो । सभी अंगों में एक ही
रक्त धारा, प्रेम की धारा, प्रवाहित हो रही है । प्रत्येक अंग का कार्य
उतना ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है जितना किसी अंग का है । प्रत्येक
अंग का कार्यबेजोड़ है । इसे याद रखो । इसीलिए निराशा और ईर्ष्या
की कतई गुंजाइश नहीं है । आपका कर्त्तव्य ऐसा है जिसे आप ही करते
हैं; कोई दूसरा अन्य नहीं कर पाता है । आप मस्तक के बल होकर तो
चल ही नहीं सकते और न पैरों से सोचने का काम ले सकते हो । आप
की कुछ भी स्थिति हो, अपने गुणों से आशीर्वाद को प्राप्त करो, यही
सर्वोपरि लाभ है ।

संतोष से बढ़कर कोई धन संतुष्ट नहीं कर पाता है । पूर्ण तृप्ति
तक भोजन कर चुकने के बाद फिर आप नहीं खा सकते । यदि इसके
बाद आपको बाध्य करके खिलाया जावे तो तृप्ति के स्थान पर आपको
उत्पीड़न का अनुभव होता है । एक सीमा होती है जिसे आप बिना

अपने को हानि और कष्ट दिए लांघ नहीं सकते। अपनी सीमा, शक्ति और सामर्थ्य को स्वयं ही जान लो तब कार्य करो। दूसरों से ईर्ष्या मत करो, चाहे उनकी सीमा और सामर्थ्य आपसे बढ़कर हो, अथवा घट कर हो। साधना में जो कदम आपने उठाया है, उसपर दृढ़ता से शरीर का भार संभालते हुए अगला कदम बढ़ाओ। संतुलन न बिगड़े अगले कदम पर लक्ष्य रक्खो और अपने अंतिम ध्येय पर आंख जमाये रहो। आगे बढ़ते जाओ।

साई की सेवा और साई भक्तों की सेवा एक ही बात है। जब आप साई भक्तों को साई भक्त मान कर सेवा करते हैं तो आप साई की सेवा करते हैं, आपको उनमें साईके दर्शन होते हैं, आप उन्हें साई मानकर ही संतुष्ट करते हो, आप उन्हें साई मानकर सम्मान देते हो। यह तो उसी मंदिर की सेवा में, जिसमें साई मूर्ति की स्थापना की गई है; एक ऐसा कमरा या भवन है। जिसमें साई के चित्र की पूजा की जाती है। इस पूरे सेवाकाल में आपके मन में साई का चिन्तन चलता रहता है। इस प्रशिक्षण से आपके आन्तरिक मनोभावों का शोधन होता है, अपने विचारों को भी दिव्य बना डालो, अपनी भक्ति की धारा को एक प्रवाह दो, अपने प्रेम का विस्तार करो। साधना के यह बड़े-बड़े कदम हैं। यही प्रशंसनीय विजयों के माप हैं। सुई में धागा डालने जैसे क्षुद्र कार्य में भी कितनी एकाग्रता और दत्तचित्तता की आवश्यकता होती है! तब कहीं सफलता के दर्शन होते हैं। उंगलियों को साधकर दृष्टि से टक-टकी लगाकर डोरे के सिरे को ऐंठ कर नोक बनाकर सुई के छिद्र को बिना हिलाये पिरोना पड़ता है। अन्य किसी क्रिया को सफलतापूर्वक करने के लिए उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होती है। भगवन्नाम रूपी धनुष को उठाकर उसपर मन के बाण को जमाकर अर्थात् ब्रह्म पर लक्ष्य करके एकाग्रता से संधान करो। तभी उद्देश्य को प्राप्त कर सकोगे।

मुझे यहाँ बहुत से नवयुवकों को देखकर प्रसन्नता होती है कि सेवा समिति ने उन्हें मूल्यवान अनुभव प्रदान किया है। चूंकि यहाँ स्त्री स्वयं-सेविकायें और पुरुष स्वयंसेवक दोनों ही हैं, अतः जिस एक बात में मैं बड़ा सावधान रखना चाहता हूँ वह यह है आप एक दूसरों को भाई और बहिनें समझें। मैं निरर्थक वार्तालाप, हल्की फुल्की गपशप, और बातूनीपन तथा स्त्री पुरुषों को दृष्टि मिलाकर आपने सामने होना ना पसंद करता हूँ; साधारणतया प्रत्येक अवसर पर और विशेष रूप से आध्यात्मिक बैठकों और ऐसे ही अवसरों पर। आपको तो सरल स्वच्छ व्यवहार और आचरण का आदर्श उपस्थित करना है। आप भले हों और दूसरों को भी भले जँचें। बाह्य सौंदर्य और आकर्षण थोथे होते हैं वे निसत्व हैं। वास्तविक सौंदर्य सद्गुणी होने में है, निस्वार्थ और आत्म-संयमी होने में है। सत्यं से शिवं और शिवं से सुन्दरम् का विकास होता है। इसी नियम् से मार्गदर्शन प्राप्त करो। ऐसा सुझाव आया है कि स्थायी स्वयंसेवक दल की स्थापना की जावे। जब मैं यहाँ आऊँ तो उनको सहायता के लिए बुला लिया जाया करे जिससे कि उन सभाओं में जहाँ मैं वार्ता करूँ अथवा भजन की बैठकों में किसी को असुविधा न होवे इसका प्रबंध वे लोग कर लिया करें। मेरा सुझाव है इससे अधिक विस्तृत उद्देश्य रखते हुए विस्तृत आधार पर संगठन बनाया जावे अन्य सभी नगरों के लिए सत्य साई दल को आदर्श मानकर संग-ठन करना चाहिए। सदस्यगण भगवान और मानव के प्रति भक्ति भाव से संयुक्त होवें। उनमें बेहतर यंत्र बनने की दक्षता और चतुरता होनी चाहिए।

मैं चाहता हूँ कि वे लोग सभी जगह और सदैव स्वयंसेवक भावना से पूर्ण रहें नकि केवल उतने काल के लिए कि जब मैं यहाँ आऊँ, अथवा कभी कहीं और वार्ता कर रहा होऊँ। क्या वे अपनी सेवा को इस बहाने से रोक रखेंगे कि मैं तो बम्बई में मौजूद ही नहीं हूँ तो स्वयंसेवकों

की भी कोई आवश्यकता नहीं है ? संसार में कहीं भी किसी संकटग्रस्त व्यक्ति की कोई सेवा सहानुभूति और सावधानी से की जावे तो वह सत्य साई की सेवा ही मानी जावेगी। यदि सत्य साई दल के किसी सदस्य को किसी सड़क पर कोई व्यक्ति मूर्छित होते हुए अथवा अन्य किसी प्रकार से अचानक दुर्घटना में फंसा दिखाई देता है तो वह चाहे कालेज या कार्यालय किसी भी कार्य से जा रहा हो तो संकटग्रस्त या पीड़ित व्यक्ति की सभी संभव सेवा करना दल के व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है कि उसका कष्ट दूर करे। उपेक्षाभाव से देखकर चले जाना उचित नहीं है। जो लोग मेरा नाम लेते हैं उन्हें बुद्धिमानी और ईमानदारी से इस बात का प्रशिक्षण लेना चाहिए कि जब कभी ऐसी सेवा का अवसर मिले तो वे उत्सुकतापूर्वक सेवा करें। दल के सदस्यों का यही कर्तव्य है।

सेवक को कभी भी न तो निराशावादी और न हर्ष मनाने वाला होना चाहिये उसे मध्यमार्गी होना चाहिये जब राम ने हनुमान से रास्ते के संकटों का वर्णन करते हुए दक्षिण दिशा में जाने के लिए कहा तो वे निराश या हतोत्साहित नहीं हुये और जब सीता को देने के लिए अंगूठी दी तो बहुत प्रसन्न नहीं हुये कि उन्हें ही इस सेवा का गौरव प्राप्त हुआ है, जो औरों को नहीं मिला था। उन्होंने आज्ञा पालन किया। उनके लिए तो स्वामी की आज्ञा "जाओ" पर्याप्त थी। हनुमान एक आदर्श स्वयं सेवक थे वे दक्ष, विनम्र, शान्त, सेवाभावापन्न, बुद्धिमान, उत्सुक और जीवन अर्पण करने वाले थे।

नाम-स्मरण और जप के द्वारा भक्ति और साधना की वृद्धि करो। शान्ति और मृदुता का अभ्यास करो। सभी को साई का प्रतीक मान

कर सेवा करो। अपने में साई का साक्षात्कार करने का यही सर्वोत्तम प्रकार है।

बम्बई अन्धेरी
२९-३-६६

—०—

६५

उपदेश और आचरण

भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है इसीलिए विद्यालयों के छात्रों को किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक ज्ञान प्रशिक्षण अथवा सनातन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों से वंचित रखा जाता है। यह एक दुखान्तकारी नाटक है। बच्चों का अपने पूर्वजों की आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करने का उत्ताराधिकार है; परन्तु इस देश के बच्चों को अपने पूर्वजों की संस्कृति और आध्यात्मिक ज्ञान तक पहुँचने के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये गये हैं। सनातन धर्म के ही कारण, भारत भारत वर्ष बना हुआ है। इसी ने अनेक झंझावातों और क्रांतियों में देश को जीवित रखा है। देश की सांस्कृतिक एकता को इसी ने अक्षुण्ण बनाये रखा है; यद्यपि देश में भाषा, वेष और भोजन संबंधी विविधता प्रचुर मात्रा में है। हिमालय से कन्या कुमारी तक रामायण, महाभारत और भगवद्गीता का सभी जगह समान रूप सें आदर होता है। सत्य, धर्म, प्रेम और शान्ति के आदर्श जिनका इन ग्रन्थों में वर्णन और चित्रण है। सभी को एकता के सूत्र में बाँधे हुए हैं और व्यक्तिगत रूप से और सामाजिक रूप से भी, लोगों को एक ही मार्ग पर, जो सबके लिए कल्याणकारी है, ले जाने का उपदेश देते हैं। सनातन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो यह घोषणा करता है कि ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे "एक और केवल यही" कहा जा सके। सभी धर्म एक ही सत्य के पार्श्वमात्र हैं, सभी नाम उसी एक भगवान् के नाम हैं, सभी रूप उसी एक भगवान् के रूप हैं। कोई भी धर्म 'विश्वजनीन शाश्वत सत्य' का प्रतिनिधित्व करने का दावा नहीं कर सकता यही सनातन धर्म की शिक्षा है। इस

लिए यदि कोई किसी के धर्म की खण्डन या आक्षेप युक्त चर्चा करता है तो वह इस कार्य से अपने ही धर्म और विश्वास को कलंकित करता है। यदि कोई किसी अन्य धर्म की निन्दा करता है, तो वह अपने ही धर्म विषयक अज्ञान को प्रकट करता है और भगवान की महिमा को नहीं जानता है।

शिक्षा में, मनुष्य के मस्तिष्क को घृणा, अनुचित संचय, निन्दा और झगड़े की प्रवृत्ति से दूर रहने का प्रशिक्षण अवश्य शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षा का इतना ही उद्देश्य नहीं हो कि भौतिक जगत में प्राप्त पदार्थों को जोड़-तोड़कर उपयोगी वस्तुओं का निर्माण कर रोजी-रोटी की समस्या का हल कर लेना पर्याप्त समझा जावे; न मस्तिष्क को केवल विश्व ज्ञानकोष की तरह सूचनाओं का भंडार बना देना है कि कैसे-कैसे भौतिक सिद्धांत किस प्रकार प्रकृति में व्याप्त हैं। शिक्षा तो मानव की आन्तरिक शक्तियों और क्षमताओं की पूर्ण सर्वोत्तम अभिव्यक्ति के लिए प्रशिक्षण है और वह अपनी आत्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होवे ऐसा ज्ञान देना है। यह तो उसकी अन्तरात्मा के ज्ञान चक्षुओं को खोलना है नकि केवल भौतिक चक्षुओं की दृष्टि को ठीक रखना ही पर्याप्त है। बाह्य चक्षु भगवान की महिमा को प्रकट करने के लिए और आँतरिक चक्षु भगवान को अंतःकरण में प्रत्यक्ष करने के लिए हैं; भोजन मस्तिष्क के पोषण के लिए होता है और यह मस्तिष्क का कार्य है कि वह सर्वत्र भगवान् के अस्तित्व, व्यापकता का, अन्वेषण, अनुभव और साक्षात्कार करे।

इस विषय में इस देश के शास्त्रों का महान उत्तरदायित्व है। वे इस देश की संतानों को न केवल अच्छे यांत्रिक, कारीगर दक्ष लकड़हारे या जल भारवाहक ही बनाकर संतुष्ट हों बल्कि इन बच्चों को सत्य, धर्म, प्रेम और शान्ति से सुसज्जित करके सुयोग्य नागरिक बनावें

जिससे कि वे सभी परिस्थितियों से सफलतापूर्वक निकल सकें और अपने अंतःकरण में धीरता, सौम्यता को प्रत्येक दशा में बनाये रख सकें। छात्रों को अच्छे सधे हुये स्वयंसेवक और साधक बनने का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये। उन्हें केवल श्वास रोकने के प्राणायाम की अपेक्षा मन को संयमित करने वाले योग की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये क्योंकि अयोग्य शिक्षकों के हाथ में पड़कर प्राणायाम की शिक्षा से स्वास्थ्य भी बिगड़ सकता है। मेरा अभिप्राय इस विषय की शिक्षा से है उसका नाम कुछ भी रखा जावे।

बच्चों का विकास ऐसा हो कि वे मानव समाज को भ्रातृत्व और भगवान् को मित्रत्व की भावना के साथ स्मरण रखें। यदि इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जाती है तो हम बच्चों को उनके प्राप्य से वंचित कर रहे हैं। मनुष्य में विश्वास रखने से ही भगवान् में विश्वास जगता है और भगवान में विश्वास रखना ही मानव में विश्वास की आधारशिला है। बिना विश्वास के मानव जड़ रहित बेल की तरह है जो शीघ्र ही मुरझा कर सूख जाती है, क्योंकि वह पोषण प्राप्त करने में असमर्थ होती है। अपने अन्तर्यामी भगवान् में विश्वास के ही कारण तो मनुष्य मैं, मैं, करके बोलता है तब उसी की ओर संकेत रहता है क्योंकि वही अन्दर से वैसा बोलने, सोचने और करने को प्रेरित करता है, जैसा कि मनुष्य करता है। विश्वास ही तो वह आधार है जिसमें प्रेम, साहस, संतोष और आनन्द उगते हैं। बच्चों को इस अन्तरात्मा 'मैं' से सहज ही परिचित कराया जा सकता है कि शरीर जिसका आवरण या वस्त्र है। वे पारस्परिक प्रेम से विकसित होते हैं और सभी देशों के मानवों से सहयोग करने वाले होंगे। वे सहयोगियों की भाषा, वेष और वर्ण, जाति के व्यवधान को ऊपरी और नगण्य भेद मानने वाले होंगे क्योंकि ये सतही अन्तर वास्तविक नहीं होता है।

निस्संदेह बच्चों के कोमल मस्तिष्क में प्रार्थना विनम्रता, प्रेम पूर्ण सेवा की भावना भरने से पूर्व हमें उनकी घरेलू परिस्थितियों पर भी दृष्टि डालना होगा। वास्तव में घर में बच्चे की प्रथम पाठशाला के उपयुक्त वातावरण रखना होगा। धर्म के सार्वभौम मौलिक सिद्धान्तों में माता पिता की दृढ़ आस्था जगना चाहिये। बच्चों को वे घर में प्रार्थना पूजा ध्यान करते हुये दिखाई दें, दूसरों की त्रुटियों को, भूलों को, क्षमा करते हुये, शोक दुख से पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुये दिखाई दें। बच्चे उन्हें कभी चिन्तित, असहाय, असन्तुष्ट, संकटग्रस्त (मानों कि उन्हें ईश्वर का सहारा ही न हो) न दिखाई पड़ें। बच्चों को यह मत अनुभव करने दो कि उनके माता-पिता को अपनी अन्तरात्मा या भगवान् से संकटों में सहायता प्राप्ति की आशा नहीं है।

अध्यापकों को सरल, हार्दिक, आनन्द और प्रेम को विकीर्ण करने वाले साधक की तरह स्पष्टवादी होना चाहिये। जीवन स्तर को महत्त्व देने, आय और व्यय, मूल्यों का हिसाब रुपया और पैसों के रूप में करने वाले कभी अच्छे अध्यापक बन ही नहीं सकते। अध्यापक को प्राचीन ऋषियों की भाँति संतुलित, संतुष्ट, शान्त और गंभीर विद्वान् होना चाहिये तथा उन्हें आत्मसंयम और मानसिक शान्ति सौम्यावस्था का वातावरण अपने चारों ओर बनाये रखने में समर्थ होना चाहिये।

उन मित्रों का भी, जो बच्चा अपने विद्यालय या मोहल्ले में बनाता है, बड़ा कल्याणकारी अथवा अधोगामी प्रभाव बच्चे के विकास पर पड़ता है। प्रहसन, आंतकपूर्ण कहानियाँ, अत्याचार, बन्दूकधारी और सिनेमा के पोस्टर जो मानव के हाड़ मास के अस्तित्व को प्रमुखता देते हैं भावी शूर को शून्य में पतित कर देते हैं। बच्चा धन को, और धन से क्रय की जा सकने वाली वस्तुओं को अनुचित महत्त्व देने लगता है। वह प्रेम और सहानुभूति से अधिक धूर्तता और निर्दयता को सराहने लगता

है। इसलिए घर, विद्यालय और समाज तीनों को ही सावधान और संगठित होकर इस चुनौती को स्वीकार करके इस महान देश के भविष्य को महान और उज्ज्वल बनाना है।

छात्रावासी विद्यालयों और छात्रावासों में, जहाँ अध्यापक और छात्र इकट्ठे होकर रहते हैं, यदि अध्यापक भावी पीढ़ी के उत्थान और समुचित शिक्षण में वास्तविक रुचि रखते हैं तो वहाँ अनेक घरों से और अधिकांश विद्यालयों से अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। परन्तु वहाँ पर भी बच्चों को एक पूर्व निर्धारित साँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सनातन धर्म का ऐसा कोई निश्चित साँचा या 'पाटन' नहीं है। उसमें अनंत विविधताओं, जो भूतकाल के संस्कारों और वर्तमान की योग्यताओं पर आधारित हों, की सम्भावना स्वीकार की गई है, ऐसा कहा गया है कि बुरे बच्चों को, वास्तव में बुरे बच्चे होते ही नहीं, वे तो कुटेवों और कुसंगति से दूषित स्वभाव वाले होते हैं जिनका पालन पोषण अच्छी तरह से नहीं हो सका है, अलग रखकर, विशेष ध्यान देकर, सुधार कर उनकी कुप्रवृत्तियों को दूर किया जा सकता है। परन्तु मैं नहीं पसंद करता कि किसी को इस प्रकार समाज की धारा से पृथक रखा जावे, और अन्य लोग ऐसे बच्चों को विचित्र और बिगड़े हुये मानकर उन्हें विशेष दृष्टि से देखें। ऐसा करना न तो छात्रों के हित में होगा और न अन्य किसी के। आप चाहें तो शेष अन्य बच्चों के बिना जाने ही कुछ बच्चों पर अधिक सावधानी से ध्यान दे सकते हैं क्योंकि संभवत. वे ऐसे परिवारों से आये हुये होते हैं जहाँ कोई पारिवारिक प्रार्थना या आध्यात्मिक चिन्तन की कोई परम्परा नहीं होती है। परामर्श तो इतना ही है। एक अच्छा अध्यापक या अध्यापिका, यदि वह बुद्धिमान और विश्वास रखने वाला है तो वह, इस कार्य को दक्षतापूर्ण ढंग से कर सकता है।

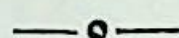
मेरे विचार से अलग से नैतिक शिक्षा या धर्म-शिक्षा की पाठ्यक्रम में कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक विषय का अध्ययन इस प्रकार किया जावे कि एक पाठ अगले पाठ से नैतिक शिक्षा के सूत्र द्वारा संयुक्त हो; अध्यापन कक्षा से लेकर क्रीड़ांगन तक सर्वत्र उपदेश और आचरण का सामंजस्य बुद्धिमत्तापूर्ण सहयोग, टोली के हित में आत्म-बलिदान, अल्पगुणों या मन्दबुद्धि वालों के लिए सहानुभूति, दुर्बल, विचारों से निर्धनों की सेवा, प्रेम और आत्मविश्वास की भावना, शान्ति और प्रार्थना की भावनाओं को महत्त्व देकर विकसित करना है। पाठ्य-पुस्तकों और पाठों के माध्यम की अपेक्षा इनका अप्रत्यक्ष रूप से प्रशिक्षण अधिक प्रभावशाली और लाभकारी होगा। उपनिषद् बाइबिल, भागवत, रामायण और महाभारत की कहानियाँ, सभी युगों और सभी देशों के संतों के जीवन चरित्रों का संदर्भ देते हुए पाठों को पढ़ाना चाहिये, चाहे वह पाठ किसी भी विषय के क्यों न हों। यहाँ तक कि गणित और विज्ञान को भी नैतिक अथवा अनैतिक ढंग से पढ़ाया जा सकता है। आप नैतिक ढंग को ही वरीयता दें।

इस नैतिक पुनरुत्थान के कार्यक्रम को अपनाने से आपको एक लाभ यह होगा कि बच्चों के माध्यम से एक सूक्ष्म प्रभाव उन घरों के वातावरण को भी स्वच्छ करने लगेगा कि जहाँ से बच्चे आते हैं। जब बच्चा अपने ही घर में शान्ति से बैठकर सृष्टा का ध्यान करते हैं उसकी अद्भुत महिमा का चिन्तवन करते हैं तो माता-पिता पर भी समुचित प्रतिक्रिया होती है और घर का वातावरण प्रेम और विनम्रता से भर जाता है।

यदि योग और ध्यान के प्रशिक्षण के लिए, विद्यालयों के छात्रों को उपयुक्त नेतृत्व प्रदान करने के लिए कोई संस्था चलाई जाती है तो इससे बड़ा कल्याण होगा। वरिष्ठ छात्र और कुछ अध्यापक ऐसी

संस्थाओं में कुछ सप्ताह तक भगवान् से संयुक्त जीवन के अभ्यास के पश्चात अपने-अपने विद्यालयों या कार्यक्षेत्रों को मानव और भगवान् में विश्वास वृद्धि के पश्चात लौटेंगे तो वहां के वातावरण में भी सुखद परिवर्तन आवेगा। तब आज के भारत के दृष्टिकोण में भी नवजीवन का सुप्रभात उदय होगा।

प्रधानाध्यापकों की सभा
पूना ३-४-६७



६६

यात्रा का पड़ाव

जिस समय सचिव प्राचीन वेदों के उद्धरण का सस्वर पाठ कर रहे थे तब जो आनन्द प्राप्त हुआ उस पर विचार कीजिए। उन उद्धरणों के अर्थों का मनन करने से उससे भी बढ़कर आनन्द की अनुभूति होगी। परन्तु हमारी राष्ट्रीय चेतना में जीवन के मूल्यों का दुखद ह्रास होने के कारण धोती, चौटी, तिलक जो प्राचीन सभ्यता के चिह्न थे अदृश्य हो गये हैं, बल्कि वेदों की शिक्षा में सन्निहित सत्य के प्रति श्रद्धा भी अदृश्य हो गई है। यह भीषण दुखान्त घटना है।

मानव संसार में एक अदम्य पिपासा, एक गंभीर वुभुक्षा—(आनन्द के लिए) के साथ उत्पन्न होता है। वह यह जानता है कि इसकी तृप्ति हो सकती है, परन्तु 'कैसे और कहां से' यह नहीं जानता है, आनन्द के राज्य के उत्तराधिकारी होने की उसे क्षीण स्मृति रहती है; परन्तु वह नहीं जानता है कि इस उत्तराधिकार पर अपना दावा कैसे प्रकट करे। इसीलिए जब उसे मृत्यु, कष्ट या घृणा प्राप्त होती है तो वह इनका प्रतिरोध करता है। लोग उसके कान में धीरे से चेताते हैं कि वह तो 'अमृत-पुत्र' आनन्द और प्रेम का पात्र है। परन्तु मानव इन चेतावनियों की उपेक्षा करता है, और उसकी तरह, जो हीरों को काँच से बदल लेता है, क्षुद्र सुखों और पार्थिव सुविधाओं की ओर दौड़ पड़ता है। मनुष्य चाहे जितना बड़ा विद्वान क्यों न हो, यदि उसे मानकों का ठीक-ठीक मूल्य लगाने का ज्ञान नहीं है तो उसका अवश्य पतन होता है। रावण एक विशाल साम्राज्य का शासक था; उसके

पास अपार सम्पत्ति भी थी; उसके दूत सर्वत्र पहुँच सकने में समर्थ थे; उसे प्राचीन शास्त्रों का भी अच्छा ज्ञान था। वास्तव में, यह कहा जाता है कि उसके दश सिर चार वेद छः शास्त्रों के पाण्डित्य के प्रतीक थे, फिर भी उसकी बुद्धि दुष्ट विचारों की ओर दौड़ती थी, इसी से उसे, पतन और बुरी प्रकार से मृत्यु, प्राप्त हुए।

बुद्धि एक दोहरे धार-दार शस्त्रकी तरह होती है। यह आपके बन्धनों को नष्ट करके मुक्ति दिला सकती है, इसके कुपथगामिनी होने पर घातक व्रण होकर मृत्यु भी हो जाती है। इसीलिए वह महामंत्र जिसे साधक जपते हैं, गायत्री (चूँकि यह जापक का रक्षक है) कहा जाता है। इस मंत्र में भगवान् से बुद्धि की अध्यक्षता करने की प्रार्थना की की गई है जिससे व्यष्टि और समष्टि दोनों का कल्याण हो। रामायण में वर्णित सभी कष्ट और यातनायें दो चरित्र शूर्पणखा और मंथरा जो काम और क्रोध की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करतीं हैं, के कारण घटित होती हैं। वे रावण और कैकेयी के मस्तिष्क को विषाक्त बनाकर दुखान्तकारी घटनाओं का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। मनोभावों का संयम और विकारों का शमन योग की परिभाषा में ही सन्निहित है। योग की क्रियायें वह आध्यात्मिक अनुशासन है जो मानव की बुद्धि को पवित्र और शुद्ध बना देता है। अज्ञान द्वारा फैलाये गये प्रगाढ़ कोहरे को, जो सत्य को ढके हुए हैं, भेदन करने के लिए पुण्य और सद्‌गुणों के आधार पर अधिष्ठित बुद्धि ही समर्थ होती है। जब समर्पित होकर कर्म किया जाता है और जीवन के लिए आवश्यक मानकर उपासना की जाती है, तो बुद्धि इतनी निर्मल हो जाती है कि कोहरा अदृश्य हो जाता है। जब ईश्वर को अर्पण करके कर्म किया जाता है तो वह बन्धन-हीन होता है क्योंकि कर्त्ता उसके फल को पहले ही भगवान को अर्पण किये होता है। इसके अतिरिक्त वह तो प्रत्येक कार्य पूजा मानकर करता है, और अपनी सम्पूर्ण योग्यता और सामर्थ्य से करता है।

इस प्रकार किया गया कर्म उपासना की कोटि में आता है। उपासना तो किसी ठोस मूर्ति चित्र या नाम, रूप के सहारे सम्पन्न की जाती है। तब जैसे-जैसे नाम-रूप चेतना के अन्दर व्याप्त होता जाता है, सभी नाम भगवान के नाम प्रतीत होने लगते हैं और सभी रूप भगवान् के रूप भासते हैं। शनैः शनैः यह सत्य कि स्वयं भक्त भी वही तत्व है परन्तु उसे अपने पार्थक्य की अनुभूति होती है अपने नाम और रूप के कारण, जोकि उसपर अध्यारोपित हैं, यह सत्य उसे ज्ञात हो जाता है। यही ज्ञान का प्रभात है ।

अहंभाव ही कोहरा है जोकि सार्वभौमिकता को आवृत कर व्यष्टि का बोध कराता है। यह धूधूलि का बादल है जो सत्य को मिल किये हुए है। लोग कोहरे और बादल को ही प्रेम करते हैं, वे उन्हें उच्छिन्न करने का कोई प्रयत्न ही नहीं करते। जब आप किसी दूकान में जाकर पैंट या बुश-शर्ट का कपड़ा काले रंग में मांगते हैं तो इसीलिए न, कि काला रंग वस्त्र की मलिनता को अधिक काल तक प्रकट नहीं होने देता है ? मैल को हटाने की इच्छा नहीं होती बल्कि उसे लोगों की दृष्टि से बचा जाने, छिपा लेने की होती है। यह दुर्बलता तो अब सभी में व्याप्त हो गई है। लोग गंदगी से लज्जित नहीं होते, वे दिल की स्वच्छता चाहते ही नहीं हैं। वह तो प्रेम, सत्य, गुरु के दिये हुए मंत्र का जाप करने और नियमित रूप से विश्वासपूर्वक और साधना करने से होती है।

आन्ध्र एसोसियेशन इस कार्य को शनिवार, रविवार और बृहस्पति-वार को आन्तरिक स्वच्छता के लिए सत्संग के द्वारा अच्छी तरह सम्पन्न कर सकती है। वृद्ध जन स्वयं विचार करें कि किस प्रकार वे तरुण स्त्री-पुरुषों को, जो उनकी देख-रेख में है, इन बातों की व्याख्या समझा सकते हैं और उन्हें मार्ग-दर्शन दे सकते हैं; वे किस

प्रकार उनके लिए अनुकरणीय आदर्श बने ? वे स्वयं जप, ध्यान जैसे साधना के कार्यों को करने लगें। उन्हें इसके लिए उत्साह और सन्तोष प्रकट करना चाहिए। विपत्ति में साहस बनाये रक्खें और सुख दुख को समान भाव से भगवान का दिया हुआ प्रसाद मान कर ग्रहण करें; तभी उनकी देख-रेख में आये हुए बच्चे प्रसन्नता और शान्ति से रहना सीख पावेंगे। माता-पिता अपने बच्चों को महाराज मान कर उनके ए. डी. सी. (कर्तव्य व्यवस्थापक सहायक) मानकर आचरण करें। ए. डी. सी. का कार्य तब समाप्त नहीं हो जाता है जब कि बच्चा साफ सुथरे वस्त्र पहन कर इधर-उधर चहल कदमी करने लगे। उसे तो सौंपे हुए बच्चे की सतत रक्षा करनी है। यदि ये दोनों ए. डी. सी. अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करें, वह उपेक्षा चाहे कितने ही छोटे दर्जे की क्यों न हो, अथवा वे सावधान और चौकन्ने न रहें तो बड़ा संकट आ सकता है। इसलिए अपनी संतति के हित में माता-पिता को अवश्य ही सुधरना है। उपदेश देने की उपेक्षा आचरण के द्वारा प्रभावित करना कहीं अधिक अच्छा है। जबकि माता-पिता ही में भगवान के प्रति श्रद्धा नहीं है, जब घर की दीवालों को हिटलर, स्टालिन, चर्चिल के चित्र सुशोभित करते हैं। जबकि बच्चे को निन्दा, कलह और लोभ के वातावरण में रहना पड़े तो वह प्रसन्न, स्वस्थ, संतुलित और सदाचारी कैसे हो सकता है ? जिन फिल्मों को बच्चे देखते हैं उनमें हिन्सा, असत्य, छलकपट और षड्यन्त्र के दृश्य होते हैं, इनसे सहानुभूति और प्रेम के स्रोत दूषित हो जाते हैं। ऐसे भी माता-पिता हैं जो अपनी संतान द्वारा अपने मद्यपान और द्यूतक्रीड़ा में योगदान देने में समर्थ होने पर गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसे भी माता-पिता हैं कि जो अपने बच्चों को धार्मिक साहित्य का अनुशीलन करते देखकर अप्रसन्न होते हैं मंदिरों में जाने, पूजा कार्य देखने और शान्तिपूर्वक कुछ क्षण सृष्टा की महिमा का ध्यान करते पाकर अरुचि प्रकट करते हैं। ऐसे माता-पिता अपनी संतान के शुभ चिन्तक होने का दावा किस

प्रकार कर सकते हैं ? वे तो उनकी उन्नति के महानतम शत्रु हैं। वे अपनी संतान को जीवन संग्राम में विजयी होने के लिए उचित अस्त्र शस्त्रों से नहीं सुसज्जित कर रहे हैं। वे अपने बच्चों को 'भारतीय' कहे जाने के योग्य नहीं बनाते हैं; क्योंकि उन्हें राम, कृष्ण, गीता और भागवत के विषय में कोई ज्ञान ही नहीं होता है। वे अपनी संतान के लिए धन-सम्पत्ति का भंडार तो इकट्ठा करने के लिए परिश्रम करते हैं, परन्तु वे बच्चों को वह शिक्षा नहीं दे पाते हैं कि जिससे बच्चे इन पार्थिव ऐश्वर्यों के वास्तविक मूल्य को समझ सकें कि यह कितने क्षुद्र हैं अथवा उस प्राप्त धन-सम्पत्ति का अपने वास्तविक कल्याण के लिए किस प्रकार सर्वोत्तम ढंग से प्रयोग करें। उन्हें संसार जल में कमल की भाँति रहने की शिक्षा दी जानी चाहिए कि वह जल में निरंतर डूबा रहकर भी उससे अलिप्त रहता है। वह जल के बिना जीवित ही नहीं रह सकता है फिर भी आश्चर्य है कि वह जल से भीगता भी नहीं है। आप संसार में रहें, परन्तु संसार आप में प्रवेश न कर पावे। सफल जीवन का यही रहस्य है, यह शिक्षण वे अपनी संतानों को नहीं दे पाते हैं।

वह धन-सम्पत्ति, जिसे संग्रह करने का प्रयत्न आपको करना है, यह खेत, फैक्ट्री, बंगले या बैंकों के खाते में धन, नहीं है बल्कि उस शक्ति से एकत्व प्राप्त करने की प्रेरणा, अनुभव और ज्ञान है कि जो महान शक्ति इस ब्रह्माण्ड को नियंत्रित, संचालित कर रही है और जिसके कार्य बिना किसी अवरोध, व्यवधान और त्रुटि के सदा से सम्पन्न होते आ रहे हैं। कृष्ण अर्जुन को 'धनञ्जय' कहकर संबोधन करते हैं क्योंकि अर्जुन ने उस उपर्युक्त धन को जीत लिया था जोकि मनुष्यों का त्राण करता है, जिस पर टैक्स लगाया नहीं जा सकता, चुराया नहीं जा सकता और न दूसरे को हस्तान्तरण किया जा सकता है। इन सम्पत्तियों को प्राप्त करने का उपाय साधना है। लोग साधना

के क्षेत्र में पदार्पण करने से सकुचाते हैं यद्यपि वे साधना से प्राप्त होने वाले ग्रानन्द के लिए लालायित हैं। वे एक पैसा खर्च नहीं करना चाहते, एक तिनका भी टालना नहीं चाहते, फिर भी चाहते हैं कि ग्रासमान से मोक्ष उनकी गोद में ग्रा गिरे। वे कल्पना करते हैं कि बिना किसी कष्ट उठाये ही भगवान की झांकी उनके मस्तिष्क में ग्रंकित हो जावे। जब याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को स्वर्ण, पशुधन के रूप में विशाल सम्पत्ति सौंप कर ग्रपनी ग्राध्यात्मिक जिज्ञासा की तृप्ति के लिए घर द्वार छोड़ कर जाने लगे तो मैत्रेयी ने पूछा कि ये सब सम्पत्ति उसकी जिज्ञासा को तृप्ति दे सकेगी, तो उसके पति ने बतलाया कि यह सब क्षण स्थायी ग्रौर उस धन की तुलना में ग्रत्यन्त ग्रल्पमूल्यवान है कि जो ग्राध्यात्मिक साधना द्वारा अनुभव से प्राप्त होता है। उसने भी इन सबका त्याग कर दिया ग्रौर तपस्या श्रद्धा की सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहा। उसने इनके द्वारा शाश्वत ग्रानन्द को प्राप्त किया।

ग्राप प्रकृति को भगवान् से व्याप्त, भगवान् द्वारा रचित, उन ग्राकृतियों ग्रौर ध्वनियों के रूप में भगवान ही समझो। हम दर्पण में प्रतिबिम्ब इसी लिए देख पाते हैं कि दर्पण की चिकनी सतह से किरणें प्रत्यावर्तित होती है। प्रकृति रूपी दर्पण में ग्राप भगवान् के प्रतिबिम्ब हो। यदि प्रकृति का दर्पण न हो तो जीव प्रतिबिम्ब की कोई स्वतंत्र स्थिति हो ही नहीं सकती। दर्पण को हठाने से प्रतिबिम्ब, जो 'तुम हो' उस ब्रह्म में ही लीन हो जावेगा ग्रौर संयुक्त रूप से "हम" की स्थिति में होगे। प्रकृति ही ग्रापको 'देह' के रूप में अध्यास देती है, ग्राप भी यही मान लेते हो कि प्रकृति की तरह ग्राप भी नाम रूप की उपाधि से युक्त हो। इस प्रकार के मिथ्या ज्ञान से ग्रभिभूत होने के कारण ग्राप शरीर पर ग्रसाधारण ध्यान देने लगते हैं, ग्रासक्त हो जाते हैं। फलतः ग्रापको चिन्ता ग्रौर कष्ट ग्रा घेरते हैं। 'भोजन तो बुभुक्षा की ग्रौषधि है, इस सत्य को भूल कर ग्राप जिह्वा के स्वाद के

लिए खाने लगते हैं। चौबीस घन्टे इसी शरीर की देख-भाल, सेवा, रोग मुक्ति, स्वास्थ्य की उन्नति, मांशपेशियों के सुडौलगठन इत्यादि के लिए व्यतीय किये जाते हैं। देही (जीवात्मा) की कोई चिन्ता नहीं की जाती है; वही तो इस भौतिक कोठरी में निवास करने वाला भगवान् है जिसकी मान्यता, पूजा की जानी चाहिए। वह तुला, जिस पर आप खड़े होकर अपना भार ज्ञात कर गर्व करते हो, आप की इस मूर्खतापूर्ण प्रसन्नता पर हँसती है। भौतिक विजय और वृद्धि का यह उपहास करती है वह तो आपको इन क्षुद्र लाभों के विरुद्ध चेतावनी देती है। वह जानती है कि मृत्यु आपको झपट्टा मार कर दबोच लेने की प्रतीक्षा में है, तुम चाहे जैसे भारी भरकम और बलशाली क्यों न बन जाओ। दृष्टि को व्यापक बनाओ न कि देह को पुष्ट करो। सृष्टि रचना पर नहीं, बल्कि सृष्टा और रचयिता पर ध्यान केन्द्रित करो।

राक्षसों की सेना से लंका के युद्ध में एक राक्षसी की कमर पर बैठा बालक एक विष के वाण से घायल हो गया। बालक को गिराकर मां भाग गई। लक्ष्मण ने उसको संकेत कर राम से कहा, "देखिए यह राक्षसियाँ कैसी पाषाण हृदया हैं; उनके हृदय में अपनी संतान के प्रति भी प्रेम नहीं है।" राम ने उत्तर दिया "भाई ! इतनी जल्दी सभी की निन्दा मत करो। वह किसी अन्य कारणों से भाग गई हो तो।" राम ने उनसे इसका पता लगाने को कहा। उसने लक्ष्मण को बतलाया कि, "सभी राक्षसियां ऐसी कठोर हृदया नहीं होती हैं। क्या आप विभीषण को नहीं जानते हैं, जो राम की सेवा इतनी सच्चाई भक्तिभाव से कर रहा है ? क्या आप मानवों में राक्षस नहीं हैं ? एक तरफ से सभी की निन्दा मत करो। सुनो। मैं जानती हूँ कि जब मुक्ति का प्रसंग हो तो एक-एक का प्रश्न अलग-अलग विचारा जाता है। माँ और बच्चा भिन्न-भिन्न मार्गों से जाकर भी आगे पीछे उसी लक्ष्य पर पहुंचते हैं। दोनों की

पहुँच का समय भिन्न हो सकता है। मुझे अपने कल्याण की स्वयं चिन्ता करनी चाहिए। मुझे लगा कि यदि मैं भाग कर जान बचा पाती हूँ तो राम मुझे कैद करके अयोध्या ले जावेंगे और मुझे दर्शन देकर इस आवा-गमन के बन्धन से मुक्ति मिल जावेगी।" उसे राम के परमात्मा होने में विश्वास था और अपने अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का भी अटल विश्वास था।

जब आप किसी दूकान में जाकर सौदा पसंद कर लेते हैं तो आपको उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। जब आप परीक्षा देते हैं तो आपको परीक्षक के प्रश्नों का ऐसा उत्तर देना होता है जिससे कि परीक्षक को संतोष हो। यदि आपको तैरना सीखना है तो आपको पानी में घुसकर हाथ पैर चलाना होता है। जब 'भस्म' या विभूति दी जाती है तो कुछ लोगों को यह संदेह होता है कि स्वामी जी की इच्छा है कि भस्म को प्राप्त करने वाला शैव हो जावे। यह तो वह अविनाशी तत्त्व है कि जिससे प्रत्येक स्थूल पदार्थ और प्राणी शरीर धारण किये हुए है। अंत में सभी वस्तुयें राख या भस्म बन कर रह जाती हैं परन्तु भस्म तो सदा भस्म ही रहती है उसके आगे तो कुछ और जलकर नया पदार्थ नहीं बनती। यह तो त्याग, बलिदान, ज्ञान, जोकि सभी कर्मों के फलों को निःशेष कर भस्म कर देता है, का प्रतीक है। यह तो ऐश्वर्य का चिह्न है जिसे मैं आपके मस्तक पर लगाता हूँ केवल इस स्मरण को दिलाने के लिए कि आप भी दैवत्व का अंश ही हो। आपके तत्व के संबंध में यह अमूल्य उपदेश है। इससे आपको यह भी चेतावनी मिलती है कि आपका शरीर किसी भी क्षण एक मुट्ठी राख में परिणत हो सकता है। भस्म इस प्रकार वैराग्य और त्याग के लिए एक वस्तु पाठ है।

मानव को अपना पूर्ण जीवन निराशा रहित और असीम इच्छा से जीना चाहिए। आपको सदा सम दृष्टि से रहना चाहिए। भाग्य अनुकूल

होने पर प्रसन्नता से मत फूलो और दुर्भाग्य आने पर उदास मत होओ। अपनी संतान को भी इस कठोर पाठ को पढ़ा दो। अपने पिता की अवज्ञा करने पर जब प्रह्लाद को दण्डित किया गया तो उन्होंने कहा, "पिता की हैसियत से केवल उसी की आज्ञा माननीय है जो 'हरि' को मस्तक झुकाने को कहता है, 'हरि' की सेवा करने की आज्ञा देता है और अंत में 'हरि' में लीन होने को कहता है; नकि कहीं और।" यदि कोई पिता अपने को भगवान् मानने के लिए पुत्र को आज्ञा देता है, तो वह घोर शत्रु है पिता नहीं है। बच्चे ही तो वह यंत्र हैं जिनकी सहायता से भारत का उत्थान किया जा सकता है। इसीलिए आज पूना के विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से मैंने बच्चों के नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा के विषय में वार्ता की है। पूना में एक संस्था की स्थापना होगी जहाँ माता-पिता, अध्यापक और वरिष्ठ छात्र नेताओं को छात्रों को उचित मार्ग पर चलाने का प्रशिक्षण दिया जावेगा। जहाँ छात्रों को आध्यात्मिक साधना की शिक्षा दी जावेगी जिससे वे सरल, सुदृढ़ और निर्भीक बन सकें।

शास्त्रों और धार्मिक साहित्य का अध्ययन, जिस पर अमल न किया जावे, सदा अस्वास्थ्यकर होता है। मानव जो कहे यदि उसपर आचरण न करे तो वह स्वयं अपनी दृष्टि में ही पतित हो जाता है और आत्म-सम्मान खो बैठता है और स्वयं अपने से लज्जित होने लगता है। इस-लिए आचरण करने का अभ्यास करो, पचाने के लिए खाओ। आज आप लोगों को मेरा यही परामर्श है।

आन्ध्र एशोसियेशन
पूना ३-४-१९६७

— ० —